

GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY
CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY

CLASS _____

CALL No. 950 Var _____

D.G.A. 79.





2/-

१४९

15535-

पुरानी दुनिया

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव
(सुधा-संपादक)

VOL. II

Purānī duryojā
Varma, Ramachandra

ऐतिहासिक अन्य ग्रंथ-रक्त

टाइ-राजस्थान	२४)	मध्यकालीन भारत की
राजस्थान	३)	सामाजिक अवस्था १।।
अकबरी दरबार	२।।	सुशासन-साम्राज्य का जय
भारतवर्ष का इतिहास	२।।, ३)	और डसके कारण ३।।
मेवाड़ का इतिहास	१।।	राजपूतों का इतिहास
जापान का इतिहास	१।।=), १।।=)	(६ माग) ६।।
स्पेन का इतिहास	१।।=), १।।=)	सन् १७ का शदर
चीन का इतिहास	१।।, १।।	(दो माग) ८।।
तिब्बत में तीन वर्ष	२।।), ३।।	सिंहगढ़-विजय १।।
हैगबैठ का इतिहास	३।।), ४।।	मराठों का उल्कर्ष १।।।
फ्रांस का इतिहास	४।।	योरप का इतिहास ८।।, ९।।
बीकानेर-राज्य का इतिहास	१।।।	रोम का इतिहास ३।।, १।।।
हृदौर-राज्य का इतिहास	१।।	शाकोपयोगी भारतवर्ष २।।।
भारत-भूमि और डसके		तरुण भारत १।।
निवासी	२।।, २।।	मौर्य-साम्राज्य का इतिहास ५।।
मध्यकालीन भारतीय		वर्तमान पश्चिमा ८।।
संस्कृति	३।।।	वर्तमान रूप १।।।, २।।
		हिंदू भारत का उल्कर्ष ३।।।

हिंदुस्थान-भर की हिंदी-पुस्तकों मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार, ३६ लालूश रोड, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला का १४१वाँ पुस्तक

पुरानी दुनिया

[द चित्रों-सहित]

लेखक

श्रीरामचंद्र वर्मा

[मूर्ख, भारतीय छियाँ आदि के रचयिता]

3323

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६ लालूश रोड

लखनऊ

930
Var

संजिका संस्कृत संस्थान
सं० १५६१ वि० [सं० १५६१]

१५६१

CENTRAL LIBRARY

१९८३

२४. १०. १९५८

१३० / Vas

Call No.

प्रकाशक

श्रीदुलारेखाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ

हमारी शाखाएँ—

गंगा-प्रथागार सिविल लाइंस, अजमेर

गंगा-प्रथागार १६५१९, हरीसन रोड, कलकत्ता

गंगा-प्रथागार सराफा बाजार, सागर

सुदक

श्रीदुलारेखाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-काइनआर्ट-प्रेस

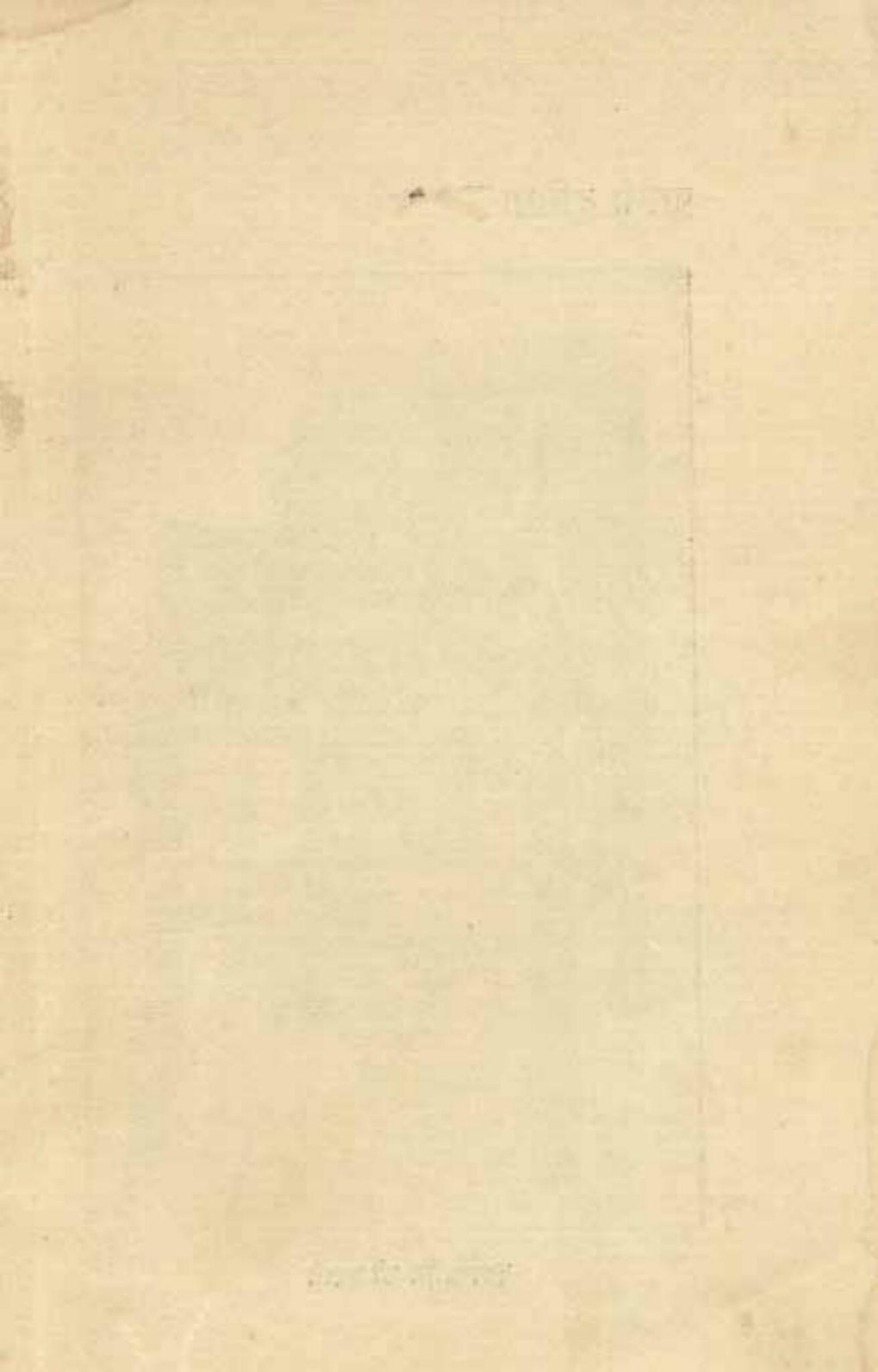
लखनऊ

भूमिका

इस ग्रंथ में संसार के प्राचीन कालों और निवासियों के संबंध की मुख्य-मुख्य बातें बहुत ही सरल रूप में बतलाने का प्रयत्न किया गया है। इसके लिखने का ढंग ऐसा रखा गया है कि सामरिक और राजनीतिक विवरण तो जहाँ तक हो सका है, बहुत ही कम दिए गए हैं; और विशेषतः यही बतलाने का प्रयत्न किया गया है कि प्राचीन काल के निवासियों की क्या-क्या विशेषताएँ थीं, उनकी संस्कृति कैसी थी, और हम लोगों पर उनका जो अध्ययन है, उसका स्वरूप कैसा है। यह पुस्तक विशेष रूप से ऐसे लोगों के लिये लिखी गई है, जो प्राचीन इतिहास का अध्ययन आरंभ करना चाहते और यह जानना चाहते हैं कि संसार की सम्यता के निर्माण में प्राचीन जातियों ने क्या सहायता की थी। यद्यपि यह कहानी बहुत ही सीधी-सादी भाषा में कही गई है, और इसमें केवल मोटी-मोटी बातें बतलाई गई हैं, तो भी मैं आशा करता हूँ, इसमें जो विवरण दिए गए हैं, वे लोगों को बहुत ही ठीक और प्रामाणिक मिलेंगे, और वे समझ लेंगे कि इसमें मानव-जीवन के भिन्न-भिन्न अंगों के संबंध में जो बातें कही गई हैं, वे न कहाँ बहुत ज़्यादा हैं और न बहुत कम।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
पहला भाग—प्राचीन पूर्व	
१. वैविज्ञोन का साम्राज्य	१
२. मित्र का साम्राज्य	१६
३. असीरिया का साम्राज्य ...	२६
४. खालिडया और पारस के साम्राज्य	४८
दूसरा भाग—यूनान	
५. यूनान का आरंभिक युग	४१
६. यूनान का उच्चति-काल	६८
७. हेल्लास का अवनति-काल	८७
८. मकदूनिया का युग ...	१०५
९. संसार पर यूनानियों का जहाँ	१२०
तीसरा भाग—रोम	
१०. रोम का उदय	१४८
११. रोमन-प्रजातंत्र	१६४
१२. आयस्टन-युग	१८१
१३. रोमन-साम्राज्य	२०८
१४. वर्दों के आक्रमण ...	२२२



पुरानी दुनिया



वतान्वामेन की कुरसी

पुरानी दुनिया

पहला भाग

प्राचीन पूर्व

१. ऐविलोन का साम्राज्य

हम लोग यह नहीं जानते कि संसार के किस भाग अथवा किन भागों में पहलेपहल मनुष्यों का निवास था। ही, इतना हम अबश्य जानते हैं कि उनकी बीवमच्चर्या पशुओं से कुछ ही अच्छी रही होगी। हमें आदिम निवासियों की और कोई वस्तु तो मिलती नहीं, केवल कहीं उनकी खोयदी और कहीं हड्डी पड़ी हुई मिलती है, और उसी से हम लोग अनुमान कर सकते हैं कि वे लोग कैसे थे।

धोरे-धीरे मनुष्य अधिक चतुर और कार्य-कुशल होते गए। उन्होंने आग जलाना सीखा, पत्थरों के टुकड़ों को एक दूसरे से रगड़कर कुकड़ाई और भाजे के फलों के आकार के हथियार बनाने आरंभ किए, और उन्हें जड़वी के दस्तों पर जड़ना शुरू किया। इन सब हथियारों का प्रयोग वे लोग लड़ाई और शिकार आदि में करते थे। यह काज प्रस्तर-युग कहलाता है, और हज़ारों वर्षों तक चलता रहा। पर सदा से यही बात चली आती है कि मनुष्य दिन-पर-दिन अधिक चतुर होता गया, और उसका पशुत्व दिन-पर-दिन बढ़ता और मनुष्यत्व दिन-पर-दिन बढ़ता गया। इसके

कुछ और आगे चलकर हम यह देखते हैं कि उन्होंने चट्टानों पर और गुफाओं में चिह्न तथा चित्र आदि अंकित करना और सोदना सीखा। इस काल के उपरान्त वे बहुत ही जल्दी-जल्दी उचिति करने लगे, और शीघ्र ही ऐसी अवस्था में पहुँच गए कि हम कह सकते हैं कि वे सभ्य हो गए। अब उन लोगों ने जंगलियों की तरह जांचन-निर्वाह करना छोड़ दिया, और उनके यहाँ शासन-प्रणालियाँ, नियम और विधान आदि स्थापित हो गए, उनमें तरह-तरह के शिल्पों का प्रचार हुआ, और परम्पर नियमित रूप से संबंध और व्यवहार होने लगे। अब वे लोग सुप्रतिष्ठित 'समाज' में अर्थात् आपस में प्रत्यक्ष दूसरे के साथ मिलकर रहने लगे।

पश्चिया की ओर तो मनुष्य सभ्यता की इस अवस्था तक बहुत जल्दी पहुँच गए, पर योरप में अपेक्षाकृत अधिक देर से पहुँचे। यही कारण है कि सभ्य मनुष्यों का इतिहास पश्चिया से ही आरंभ होता है। जिस स्थान से यह इतिहास आरंभ होता है, उस स्थान पर, हम देखते हैं, मनुष्य पहले से ही तीन बड़े-बड़े विभागों में विभक्त थे। वे विभाग सेमिटिक, हैमिटिक और आर्य अथवा ईडो-योरपियन कहलाते हैं। बाह्यिक में ये लोग कम से कम, हैम और जेफेय की संतान कहे गए हैं। पूर्व में और आगे बढ़ने पर अर्थात् चीन में इसी प्रकार के और भी बड़े-बड़े विभाग या दल थे। पर जहाँ तक इम जानते हैं, पूर्वीय पश्चिया के नियासियों का उस सभ्य परिचयी पश्चिया के निवासियों के साथ कोई संबंध नहीं स्थापित हुआ था। उनमें जो संबंध स्थापित हुआ था, वह इसके हजारों वर्ष बाद हुआ था। इस पुस्तक में उन्हीं तीनों विभागों का वर्णन है, जिनके नाम ऊपर दिए गए हैं। पहले विभाग से वे लोग निकले, जो बैंबिलोनियन, असीरियन और हिब्रू कहलाते हैं। दूसरे विभाग से मिल के आदिम निवासी निकले,

और तीसरे विभाग से वे लोग निकले, जिनकी संतान आजकल एक और तो सारे योरप में फैली हुई है, और दूसरी ओर कारस तथा भारत में बसती है। जिस समय से हमारा इतिहास आरंभ होता है, उस समय इन विभागों के लोग किसी एक स्थान पर या एक देश में बसकर नहीं बसे थे, वर्कि संसार के भिज्ज-भिज्ज भागों में रहते थे। सेमाइट लोग अब भी बसे हुए थे, हेमाइटों ने आश्फ़िका को अपना निवास-स्थान बनाया था, और हँडो योरपियन लोग कैस्पियन समुद्र के चारों ओर फैले हुए थे। अब तक हन लोगों में से अनेक नई-नई शाखाएँ निकलती हैं, और हनके नए-नए विभाग बनते हैं, जो अपनी जन-संख्या के दिन-पर-दिन बढ़ते रहने के कारण भोजन और निवास-स्थान आदि की तलाश में भिज्ज-भिज्ज दिशाओं में इटने-बढ़ते रहते हैं, और संसार के भिज्ज-भिज्ज भागों में जिस स्थान पर उन्हें अपना आवश्यक बस्तुएँ मिलती हैं, उस स्थान पर वे अंत में बस जाते हैं।

परंतु पूर्वक में रहनेवाले लोग संस्कृति और सभ्यता आदि में सबसे आगे बढ़ गए थे, और पूर्व के एक विशिष्ट भाग में सभ्यता का सबसे अधिक शीघ्रता से विकास हुआ था। यदि हम उत्तर से दक्षिण की ओर ऐसी दो साधों रेखाएँ खींचें, जिनमें से एक तो पश्चिमा माइनर के तट और मिज्ज की परिचमी सीमा पर से ढोकी हुई जाय, और दूसरों कैस्पियन समुद्र के पूर्वी तट से होकी

* आजकल परिचम ही सभ्यता और विद्या का केंद्र हो रहा है, इसलिये योरप के लेखक अपने देश में बैठकर भौगोलिक दृष्टि से परिषिया को 'पूर्व' कहते हैं। पर जिसे योरपवाले 'निकट पूर्व' कहते हैं, वह हम लोगों की दृष्टि से निकट परिचम और फ्रूंस, जरमनी तथा ईंग्लैंड आदि 'सुदूर परिचम' कहे जाने चाहिए।

हुईं क्रारस की खाड़ी के निम्न भाग तक जाय, और पूर्व से परिचम की ओर दो ऐसी सीधी रेखाएँ खींचें, जो पहलेवाली दोनों रेखाओं से मिलती हों, और उनमें से एक रेखा तो बालकन-पर्वत से होती हुईं कैस्पियन समुद्र के ऊपरी भाग तक जाय, और दूसरी जाक समुद्र के दक्षिणी भाग से होती हुईं अरब के दक्षिणी तट तक जाय, तो हमको एक प्रकार का चौकोर चेत्र-पा मिलेगा। यही चौकोर चेत्र (योरपाय इटिकोण से) 'निकट पूर्व' कहलाता है, और पश्चिया के इसी भाग में सबसे पहले बहुत बड़ी-बड़ी सम्पत्तियों का उत्थान हुआ था।

यदि हम इस चेत्र में और भी अधिक ध्यान से देखें, तो हमें सम्पत्ति के कुछ विशिष्ट केंद्र भी मिल जायेंगे। यदि हम निकट पूर्व का आनंदित्र देखें, तो हमें एक अद्वितीय भूमि या पट्टा-पा मिलेगा। यह भूमि क्रारस की खाड़ी के ऊपरी भाग से आरंभ होती है, और उत्तर की ओर बढ़ती हुई याहू-नदी के उद्गम के पास तक चली जाती है। वहाँ से वह परिचम की तरफ सुइकर यूफ्रेटीस या क्रात-नदी तक पहुँचती है, और तब वहाँ से दक्षिण की ओर सुदकर सीरिया और पैलेस्टाइन में से होती हुई सिनाई के रेगिस्तान तक चली जाती है। यह अद्वितीय भूमि या भूमि का बहुत ही उपगाँठ भूमि की है, और पूर्व की समस्त आरंभिक सम्पत्तियों का आरंभ तथा विकास इसी स्थान से हुआ है।

इस भूमि में दो बड़े और बहुत उपजाऊ मैदान हैं, और वे दोनों इसके दोनों ओरों पर हैं। इनमें से एक मैदान तो मिस्र में है, और दूसरा याहू-नदी के उपरी भूमि के मुहानों के पास है। यह दूसरा मैदान किसी समय शिनार का मैदान कहलाता था। इसके बाद वह बैकिलोनिया कहलाने लगा, और आजकल लोग प्रायः इसे मेसोपोटामिया कहते हैं, जिसका अर्थ है नदियों के

बीच का प्रदेश। इस मेलखां के शेष भागों में भी मैदान हैं; पर या तो वे उतने अधिक उपजाऊ नहीं हैं, और या उनमें बीच-बीच में पहाड़ियाँ और तराइयाँ आदि पड़ती हैं, जिनके कारण हम उन्हें मैदान कह ही नहीं सकते। पर उपर जिन दो मैदानों का हमने ज़िक्र किया है, वे बहुत बड़े और उपजाऊ हैं। उनमें सिंचाई आदि के किये नदियाँ भी यथेष्ट हैं, और वे इस योग्य भी हैं कि उनमें बहुत-से लोग एक साथ मिलकर सुख से रह सकें, और सब प्रकार की उत्तरति कर सकें।

पर एक बात और है। इस मेलबां में रहनेवालों पर भीतरी और बाहरी दोनों ही प्रकार की बहुत-सी विपत्तियाँ भी आ सकती हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि वे आपस में ही बहुत कुछ लड़-भगड़ सकते हैं; और विशेषतः दोनों बड़े-बड़े मैदानों के निवासी एक दूसरे के साथ बहुत कुछ हैरान-द्वेष भी कर सकते हैं। व्यापारियों के दबों के आने-जाने का मार्ग भी इसी मेलबां पर से होकर है, क्योंकि इसके दोनों ओर या तो पड़ाइ है या रेशिस्टान; और उनमें से होकर यात्रियों आदि का आना-जाना बहुत ही कठिन है। इसलिये इन दोनों ही स्थानों के निवासी, जहाँ तक हो सकेगा, इस मेलबां के अधिकांश भाग को अपने अधिकार में रखने और उससे जाम डाने का प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार अधिकार-प्राप्ति के लिये वे आपस में लड़-भिड़ भी सकते हैं।

इसके सिवा यहाँ के निवासियों पर बाहर से भी विपत्तियों के आने की संभावना होती है। इस मेखला के किनारों पर समुद्र, पर्वत और रेगिस्तान हैं, और इनमें से हरएक के कारण इनके निवासियों पर आपत्तियाँ आ सकती हैं। इस प्रकार यही विपत्तियों पर हम यहाँ सचेष में आपने कुछ विचार प्रकट कर देना चाहते हैं।

(क) समुद्र की ओर से तो कोई बहुत बड़ी विपत्ति आने

की विशेष संभावना नहीं थी। प्राचीन काल में जहाज बहुत ही छोटे-छोटे होते थे, और उन पर बड़ी-बड़ी सेनाएँ नहीं जा सकती थीं। फिर प्राचीन काल में दिग्दर्शक यंत्र भी नहीं दोते थे, इसलिये नाविक लोग बड़े-बड़े समुद्रों को पार करने और अपने तट से समुद्र में बहुत अधिक दूर जाने का साहस भी नहीं कर सकते थे। अतः यदि कोई शत्रु पश्चिम को ओर से इस मेलखाप पर चढ़ाइ करता, तो उसे स्थल के मार्ग से यहाँ आना पड़ता। पर बस्तुतः इस मेलखाप के पश्चिम में बहुत दिनों तक कोई ऐसी बड़ी शक्ति ही नहीं उत्पन्न हुई, जो इस पर आक्रमण कर सकती। यदि ऐसी कोई शक्ति उत्पन्न हुई थी, तो वह विजयी सिंहदर की थी, और उसका समय हैस्त्री चौथी शताब्दी का दूसरा चरण है।

(च) एशिया माझनर से लेकर पूलम (फ्रास की खाड़ी के सिरे का पूर्वी भाग) तक इस मेलखाप के ऊपरी भाग में पहाड़ और ऊंचा-ऊंची अधित्यकाएँ हैं। इन स्थानों पर बहुत आरंभिक काल से ही इंडो-योरिपियन वर्गों का निवास था। इन वर्गों के संवंध में यही समझ जाता है कि ये दक्षिणी रूस और कैस्पियन समुद्र के आस-पास के प्रांतों से यहाँ आए थे। इन वर्गों में पुरुषों, छियों और बालकों के बहुत बड़े-बड़े दल होते थे, जो बराबर भोजन और निवास-स्थान की चिता में इधर-उधर घूमा करते थे; और जब दक्षिणी रूस से इस प्रकार के और जप दल आते थे, तब पहले के दलों के लोग और आगे बढ़ते चलते थे। इनमें से कुछ दल बहुत पहले ही पूलम में बस गए थे। इसके उपरांत जो और दब आए, उन्होंने एशिया माझनर और आरमेनिया में अपने राज्य स्थापित किए। इन सब लोगों का समूह एक ऐसी यहाँ लहर के समान था, जो इस उपजाऊ मेलखाप पर सदा फैलने का प्रयत्न करती रहती थी। बारी-बारी से वैविलानिया, असी-

रिया और खालिदया के साम्राज्यों का जो अंत हुआ था, वह इसी प्रकार से ।

(ग) मिस्त्र के दचिंग और पश्चिम में आम्फ्रिका के रेगिस्तान थे, जहाँ से रेगिस्तानी वर्गों के लोग नील-नदी के तट पर रहनेवाले लोगों पर आक्रमण कर सकते थे । उधर मेखला की मोड़ में अरब का वक्ता रेगिस्तान पढ़ता था, जहाँ सेमिटिक वर्गों के लोग बराबर इधर-उधर घूमते रहते थे । वे लोग झानाबदोश या बड़ू कहलाते हैं, जिसका अर्थ है बराबर इधर-उधर घूमते रहनेवाले लोग । वे लोग स्वयं अपने लिये जल और भोजन तथा अपने पशुओं के लिये घास आदि की तलाश में एक शाद्वक्ष से दूसरे शाद्वक्ष में चूमा करते थे । साधारणतः उन लोगों की बहुत ही छोटी-छोटी ढुकियाँ हुआ करती थीं, क्योंकि रेगिस्तान में कहीं किसी एक स्थान पर इतने अधिक मनुष्यों के लिये भोजन आदि नहीं होता । बीच-बीच में ऐसा भी होता था कि छुचा की निवृत्ति के लिये अथवा सभ्य जीवन के सुख-भोग की जालसा से ये लोग बहुत बड़े-बड़े दबल बाँधकर इस उपजाऊ भूमि पर ढूट पड़ते थे । मिस्त्र पर तो इस प्रकार के आक्रमण कई बार हुए थे । वैविज्ञोनिया, असीरिया और खालिदया के साम्राज्य तथा किनीशियन, सोरियन और हिम्मू राज्य इसी प्रकार स्थापित हुए थे ।

निकट पूर्व या पश्चिमी पश्चिया के प्राचीन इतिहास में सुख्यतः यही बात देखने में आती है कि इस उपजाऊ मेखला के विवासियों पर रेगिस्तानों, पहाड़ों और समुद्रों का ही विशेष प्रभाव पड़ा था, और इन्हीं के कारण उनमें अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहते थे । अब ज्ञान इतिहास के संबंध की कुछ बातें जीविष्य ।

इस से प्रायः पाँच हजार वर्ष पूर्व की बात है कि एक जाति के लोग, जो सुमेरियन कहलाते हैं (संभवतः मध्य एशिया से), आकर

शिनार के मैदान में और विशेषतः उसके दक्षिणी भाग में, जो सुमेर कहलाता था, बस गए थे। इस मैदान का उत्तरी भाग आकृद् कहलाता है (उसका यह नाम या तो उसी समय पड़ा था, या, संभव है, पहले से भी रहा हो)। अभी तक इस बात का पता नहीं चला है कि सुमेर में आकर वसने से पहले वे लोग कहाँ तक सम्भव थे। पर सुमेर में जिस समय उन लोगों का पहले-पहल पता चलता है, उन समय उन लोगों ने वहाँ कहूँ बढ़े-बढ़े नगर-राज्य स्थापित कर लिए थे, जिनके प्रधान अधिकारी और शावक उनके चर्म-पुरोहित हुआ करते थे। वे लोग सदा आपस में एक दूसरे से जड़ा करते थे। इसे यह भी पता चलता है कि वे लोग बहुत बड़े व्यापारी होते थे। वे बाहर से और बहुत-सी चीज़ों तो अपने यहाँ लाया ही करते थे, और शायद सिनाई या पश्चिया माइनर से बहुत-सा ताँचा भी लाया करते थे। उन्होंने ज़मीन को जोतना और सीधना, पत्थरों को काटना और उनमें नकाशी करना और धातुओं को चोड़े तैयार करना सीखा था। उन्होंने कोखन-कला का भी ज्ञान प्राप्त किया था। उनके पास किसी प्रकार का कागज़ सो होता नहीं था, पर वे गोली मुलायम मिट्टी के चौकोर टुकड़ों पर एक प्रकार की नुकीली कलम से गाबदुम चिह्न अंकित करते थे, और तब मिट्टी की उन इंटों को पकाकर इस रूप में ले आते थे कि उन पर अंकित चिह्न स्थायी हो जाते थे। सुमेरियन लोग समय या काल की गणना भी अच्छी तरह करते थे। वर्ष को उन्होंने बारह मासों में विभक्त किया था, और चांद गणना के अनुसार उनके मास अद्वाहस विवरों के होते थे। पर इस प्रकार की गणना के कारण उनका वर्ष कुछ छोटा यड़ता था, और उसमें सब अनुरूप ठीक तरह से नहीं आ सकती थीं, अतः इस श्रुटि की पूर्ति करने के लिये वे बीच-बीच में अपने वर्ष में एक और मास मिला

दिया करते थे। वे गीली मिट्ठी की हँटें बनाकर धूप में सुखा लिया करते थे, और तब उन्हीं हँटों से मकान बनाकर उनमें रहते थे (मेसोपोटामिया में पत्थर नहीं होता)। इसी प्रकार की हँटों से वे अपने देवता के मंदिर भी बनाते थे। उनके मंदिरों का आकार ऐसे गुंधद का-सा होता था, जो ऊपर की ओर चराचर पतला होता जाता था ॥

इस से प्रायः तीन हजार वर्ष पहले सभित्रिक वर्ष के कुछ बहुत रेगिस्तान में से निकल पड़े, और उन्होंने असीरिया (शिनार के मैदान के ढक्कर में) और अक्षद पर अधिकार कर लिया। एक बार अक्षद के सारगोन-नामक उरबाद की अधीनता में (इस से पूर्व जगभग २,७५०) सेमाइट लोगों ने सारे मैदान पर विजय प्राप्त कर ली। ऐसा जान पड़ता है, इसके कुछ दिनों बाद सुमेर और अक्षद ने मिलकर एक ही राजा की अधीनता में एक युग्म राज्य स्थापित किया था। यह राज्य शायद बहुत कुछ उसी तरह का था, जैसा इधर कुछ दिनों तक आस्त्रिया और हंगरी में था। अर्थात् वे दोनों दो अलग-अलग राज्य थे, और उनको शासन-प्रणाली और नियम आदि भी एक दूसरे से भिन्न थे, पर उन पर अधिकार एक ही राजा का था। फिर संभवतः एक ऐसा समय आया (है० प० २३५०-२१२०), जब प्रज्ञमवालों ने आकर दोनों दलों पर अधिकार कर लिया। पर सेमाइट लोगों की नई-नई दुकियाँ चराचर आती रहीं, जिसमें आक्रमणकारियों की संख्या बढ़ती गई, और

* बहुत-से बड़े-बड़े विद्वान् मेसोपोटामिया के प्राचीन लग्नों की सुदाइं कर रहे हैं, और सुनियनों के संबंध में बहुत-सी नई-नई बातों का पता लगा रहे हैं। अतः, संभव है, शीघ्र ही हम लोगों को उनके संबंध में और भी बहुत-सी नई और काम की बातें मालूम हो जायें।

अंत में यहाँ तक नौबत आई कि एजम्बाके बहाँ से भगा दिए गए। सुमेरियन लोगों ने उब पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली, और एक सेमिटिक साम्राज्य की स्थापना की। उस साम्राज्य का केंद्र बैबिलोन में था, और अब यह नगर सारे मैदान में सुख और सर्व-प्रधान हो गया था।

पर सुमेरियन लोगों ने जो बातें सीखी थीं, उनका सेमाइट लोगों ने नाश नहीं किया था। उन्होंने उन सब बातों को अहम कर लिया, उनका उपयोग किया, और उनमें नष्ट-नए सुधार किए। यों तो वे सुमेरियनों के साथ कई सौ वर्षों तक बराबर जड़ते-झगड़ते रहे, पर साथ ही वे उनसे बहुत-सी बातें सीखते भी रहे। वे भी धूर में सुखाई हुई इंटों के मकान आदि बनाने लगे, गावदुम अचर लिखने लगे, पत्थरों पर नकाशी करने और मृतियाँ बनाने लगे, और सुमेरियन लोगों के निश्चित किए हुए सिद्धांतों आदि के अनुसार काल तथा दूसरे पदार्थों का गणना और नाप-जोख आदि करने लगे। कुछ समय के उपरान्त उन्होंने तीव्र और टीन के योग से काँसा बनाना भी सीख लिया। उन्होंने सुमेरियन लोगों के घर्म की बहुत-सी बातें भी अपने घर्म में समिलित कर लीं, और दोनों के योग से एक नए बड़े घर्म की स्थापना की, जिसमें बहुत-से देवता और बहुत बड़े-बड़े मंदिर होते थे, और बहुत-से ऐसे पुरोहित भी होते थे, जिनका समाज तथा नाय पर बहुत कुछ अधिकार तथा प्रभाव ढोता था। वे लक्षणों और शक्तियों आदि की सहायता से देवतों की हस्तापें जानने का भी ढोग रचने लगे। पञ्चियों के उड़ने आदि से वे अपनेक प्रकार के अनुमान करते थे, और अपने देवतों के आगे बलि भी चढ़ाते थे। अपने मंदिरों में उन्होंने विचालय भी स्थापित किए थे। उन्होंने व्यापार-संबंधी भी बहुत-सी नई बातें

निकाली थीं। इस प्रकार उनकी कृपा से निकट पूर्व में वैविज्ञोन अध्यापक का एक बहुत बड़ा केंद्र बन गया।

वैविज्ञोन के शासकों में सबसे अधिक प्रसिद्ध हम्मूर्खी है, जिसका समय हँसा से प्रायः २१०० वर्ष पूर्व माना जाता है। उसने अपने राज्य के लिये बहुत-से नप्रनियम और क्रान्ति बनाए थे, और वे सब नियम आदि परथर के एक खंभे पर खुदवा दिए थे। यह खंभा भी मिल गया है, और अब विद्वान् लोग हम्मूर्खी के बनाए हुए क्रान्ति आदि पढ़ सकते और यह जान सकते हैं कि उसके समय में न्याय के संबंध में लोगों के कैसे ढंगे विचार थे (चाहे वे विचार आरंभिक प्रकार के ही क्यों न हों)। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि अब तक संसार में कितने नियमों और विधानों या धर्मशास्त्रों का पता चला है, उनमें हम्मूर्खी के ये नियम आदि सबसे पुराने हैं। यह भी माना जाता है कि हिन्दू लोगों का जो क्रान्ति 'मूसा का क्रान्ति' कहलाता है, उस पर भी इन नियमों का बहुत कुछ प्रभाव था, अर्थात् उस क्रान्ति के बनाने में इन नियमों से बहुत कुछ सहायता मिली थी। मिट्टी की वाटिकाओं पर लिखे हुए हम्मूर्खी के पचपन पत्र भी मिले हैं। ये सब पत्र उसने अपने राजकर्मचारियों और शक्तिसरों को लिखे थे, और इनमें उन्हें यह बताया गया था कि पश्चिमों के भुंडों आदि की रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए, खेतों को सीधनेवाली नहरों की रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए, न्याय-पूर्वक और ठोक समय पर कर आदि का संग्रह किस प्रकार होना चाहिए, इत्यादि। इन पत्रों से हमें पता चक्रता है कि उन दिनों भी किसी राजा या शासक को कितने अधिक काम करने पड़ते थे, और कितनों तरह की बातें उसके सामने विचार और नियंत्रण आदि करने के लिये आती थीं।

जिन आकमणों के कारण सेमाइट लोगों ने असीरिया और ऐविक्सोनिया पर अधिकार कर लिया था, उनका आरंभ तो इंसा से प्रायः तीन हजार वर्ष पूर्व ही हो गया था, पर सेमाइट लोगों को पूर्ण विजय लाकर है० प० २१०० के खगभग हुई थी। खगभग इसी समय पूर्व की भाँति पश्चिम की ओर के रेगिस्तान से भी सेमाइट लोगों के नए-नए दल बहाँ आने लगे गए थे। इस प्रकार उस उपजाऊ मेस्कला पर दोनों ओर से आकमण हुए थे। अब हम वह बतलाना चाहते हैं कि ये आकमणकारों कौन थे।

(१) पहले आकमणकारी तो फ़िनीशियन थे, जो सीरिया के तट पर बस गए थे। इन के "द्रायर और लिडोन" में थे। कुछ दिनों बाद ये लोग संसार के सबसे बड़े नाविक बन गए थे। मूमध्य सागर के परिचम में इन लोगों ने प्रायः सभी स्थानों में अपने उपनिवेश स्थापित कर लिए थे, जिनमें से कारबेल सबसे अधिक ग्रसिद्ध था। वे लोग बिब्राइटर के जलाहमरूमध्य से विकलकर पक ओर स्पेन, फ्रांस और ब्रिटेन तक और दूसरी ओर आफ्रिका के तटों पर बहुत दूर तक आया करते थे। इन लोगों की पक बहुत बड़ी नाविक या जल-शक्ति बन गई थी। पर एशिया में इन लोगों ने दूसरों के आकमणों से अपनी रक्षा करने के सिवा और कुछ भी नहीं किया। उनका मुख्य उद्देश्य युद्ध नहीं, बल्कि व्यापार था। वे अपने जहाज़ों पर पश्चिम के सामान पूर्व में लाते थे, और पूर्व के सामान पश्चिम ले जाते थे। इस प्रकार ये लोग आरंभिक संसार के बनिए या व्यापारी बन गए थे।

(२) आरामो या आरामियन है० प० ३,००० और २५०० के मध्य में आरामियों के कुछ सेमेटिक दल प्रारात-मद्दी से वैक्स-स्टाइन में आ-आकर रेगिस्तान के सारे किनारे पर जमा होने लगे,

और जहाँ-जहाँ उन्हें उपयुक्त स्थान तथा अवसर मिला, वहाँ-वहाँ वे अपनी वस्तियाँ बसाकर रहने लगे। आगे चलकर इनमें से कुछ वस्तियों के निवासी विशेष शक्तिशाली हो गए। उनमें से दमिश्कवाली वस्ती का महस्व और सब वस्तियों से कहीं अधिक या, और उसका यह महस्व बहुत दिनों तक बना रहा। पर उस समय तक (जिस समय का हम बताएँ कर रहे हैं, और जिस समय वे आकर रेगिस्तान के किनारे-किनारे बसे थे।) आरामी लोग बहुत कुछ ज्ञानावदोशी की ही हालत में थे, और उससे आगे नहीं बढ़े थे। तब तक उनमें सभ्यता का कोई विशेष प्रकार नहीं हुआ था।

(३) अंत में (रायद इ० ४० २५०० के लगभग) पैलेस्टाइन में कनासानी लोगों के दल आए। ये दल भी मूलतः सेमेटिक वर्ग के ही थे। ये लोग जिस स्थान पर आकर बसे थे, वह कनासान कहलाने लगा। इन लोगों ने शीघ्र ही अपने पहाड़ों क़स्ते बनाने आरंभ कर दिए। वैविलोन और मिस्र के साथ इनका व्यापार भी आरंभ हो गया, और ये धारे-धारे अधिक सभ्य होने लगे। उन्होंने सभ्यता की अधिकांश वार्ते वैविलोनवालों से ही सीखी थीं, और वे लिखने में भी वैविलोनियन अचरों और सकेतों आदि का ही व्यवहार करते थे। पर वे लोग कभी मिलकर अपना एक राष्ट्र नहीं बना सके। ये अपने-अपने छोटे और स्वतंत्र नगर-राज्यों में रहा करते थे, और प्रत्येक नगर का एक अलग राजा हुआ करता था। यह भी कहा जा सकता है कि वे लोग एक प्रकार से कुछ अंशों में वैविलोनियन-शासन के अधीन थे। यदि वास्तविक इष्टि से देखा जाय, तो इस समस्त उपजाऊ मेलजाप पर परिचमी समुद्र तक वैविलोन का ही साम्राज्य था।

उस समय तक तो यही अवस्था रही कि रेगिस्तान के निवासी

उस उपजाऊ मेलखला में जो कुछ चाहते थे, वही करते थे । पर इ० १००० २००० के लगभग पहाड़ों पर रहनेवाले लोगों की बाती आई । इसमें यों की सृष्टि के थोड़े ही दिनों बाद वैविज्ञोनिया के साम्राज्य का बल घटने लगा । उस समय पश्चिया माइनर में कुछ इंद्रो-योरपियन दल, जो हिटाइट कहलाते थे, मिलकर अपना एक स्वतंत्र राज्य बना रहे थे । वैज्ञाणिक और पूर्व की ओर उनकी शक्ति का विस्तार हो रहा था; और कनायान सथा पश्चिम के साथ वैविज्ञोनिया का जो संबंध था, उसे वे धीरे-धीरे तोड़ने का प्रयत्न कर रहे थे । इ० १२२५ में तो हिटाइट लोगों ने वैविज्ञोनिया पर आक्रमण करके उसे घट्टो उत्तर लूटा भी था । इसके थोड़े ही दिनों बाद कुछ और दल, जो कस्ताइट कहलाते थे, उच्च की ओर से आने लगे । धीरे-धीरे उन्होंने वैविज्ञोनिया पर अपना शासन लिया, जो ग्राय: ६०० वर्षों तक बना रहा । वैविज्ञोनिया में ये ही लोग सबसे पहले अपने साथ थोड़े लाए थे । इससे पहले वैविज्ञोनियावालों ने कभी घाका देखा भी नहीं था । ऐसा जान पवता है कि वैविज्ञोनिया पर अपना शासन लिया कर ये लोग बहुत ही निर्वित और अकमंगल होकर शांति-पूर्वक समय व्यतीत करने लगे थे । इसका परिणाम यही हुआ कि वैविज्ञोन बराबर दिन-पर-दिन बढ़-हीन ही होता गया । अब तक असीरिया एक प्रकार से वैविज्ञोन के अधीन ही था, पर अब वह भी धीरे-धीरे स्वतंत्र होने लगा । हिटाइट लोगों की शक्ति भी अभी तक बराबर बढ़ती चली जा रही थी । उन्होंने अपना एक साम्राज्य स्थापित कर लिया, जिसका केंद्र हेजिस-नदी के पूर्व में हड्डी-नामक नगर में था । ह० १४०० के लगभग पश्चिमी पश्चिया में इनका राज्य सबसे अधिक शक्तिशाली था । इससे कुछ ही पहले (लगभग १५०० इ० १०) एक और नया छोटा, पर

रह राज्य बना था, जो मिट्ठी कइलाता था। यह राज्य हिटाइटो और प्रशात-नदी के बीच में पड़ता था। यद्यपि यह कभी प्रथम अंगों का राज्य न बन सका, तो भी इतना ठोस अवश्य था कि अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रह सका; और परिचम के साथ वैविलोन का जो कुछ थोका-बहुत संबंध बच रहा था, उसका भी इसने छंत कर द्याता।

इस प्रकार ३०००-२००० से १५०० तक परिचमी पृथिया में बसनेवाले सेमेटिक लोगों पर बराबर पहाड़ी दलों के आक्रमण होते रहे, जिससे सेमेटिक लोगों की शांति में बाधा पड़ती रही, और पढ़ावी दल आ-आकर उष्णजात मेलजा में बसने गए। जिस प्रकार एक बड़ी लहर उठने के कारण किनारे तक का पानी हिक जाता है, उसी तरह हन नप आक्रमणकारियों का प्रभाव मिल तक पहुँचा था। इसलिये अब हम अगले प्रकरण में मिल के संबंध में कुछ बातें बताएँगे, और उसके आरंभिक हितिहास का वर्णन करके यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि पृथिया की इस खजबली के कारण मिल के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा था।

२. मिस्त्र का साम्राज्य

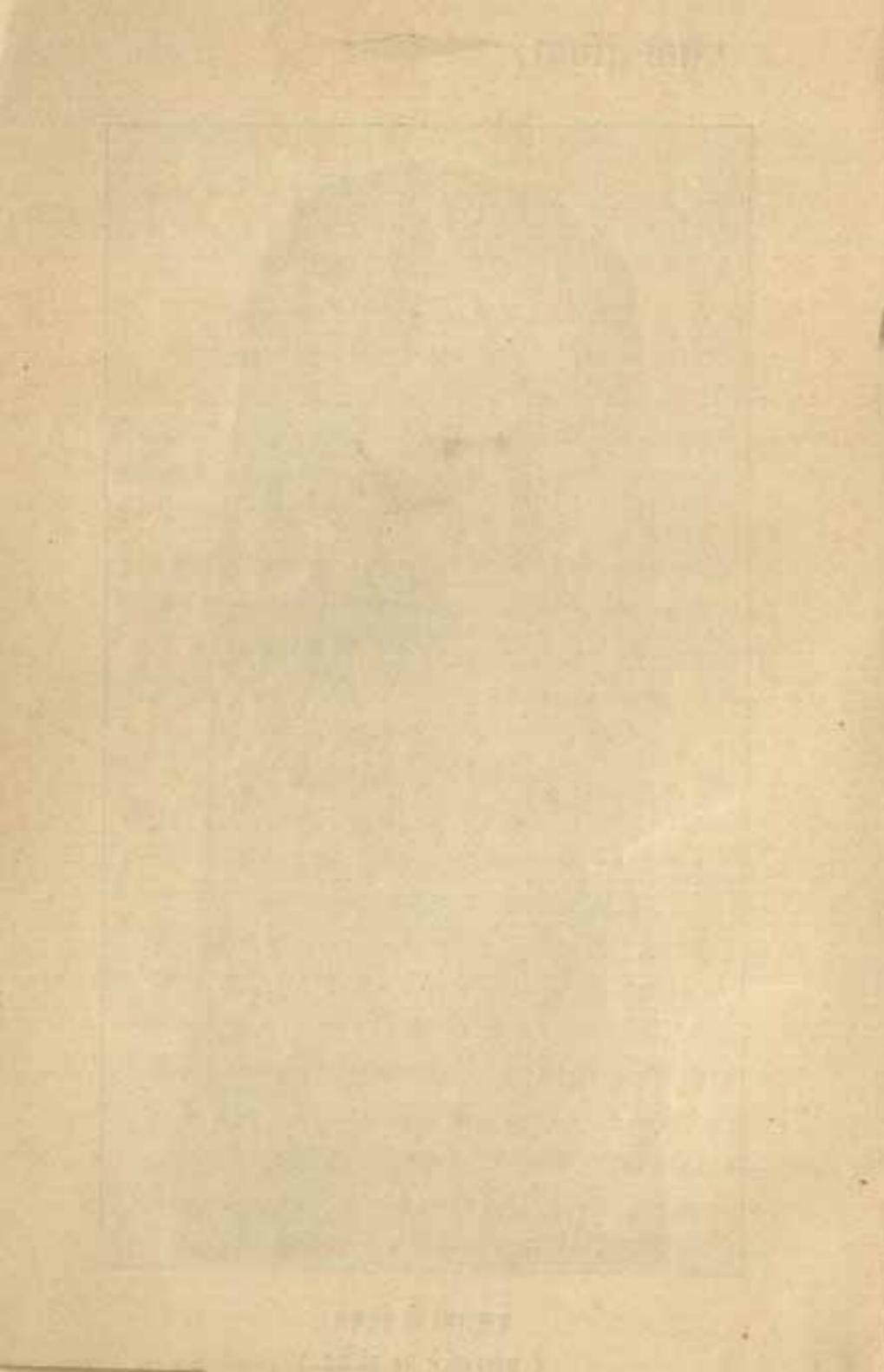
बहाँ तक इम लोग ज्ञानते हैं, मानव-ब्राह्मि में सबसे पहले जीज्ञ-नदी के तट पर रहनेवाले मिस्त्री लोग ही वास्तव में सभ्य हुए थे। ऐसा ज्ञान पढ़ता है कि आरंभ से ही वे लोग बहुत शांत-प्रकृति के थे। वे सदा उद्ध आदि से बचना चाहते थे, और कभी अपना साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा नहीं रखते थे। इन्होंने अपना सारा समय शांति की कलाएँ सीखने में दी विताया था। अपने पवित्र शासकों की अधीनता में रहकर इ० प० ३४०० में अपना एक बड़ा और संघटित राष्ट्र स्थापित किया था; और यही सबसे पहला बड़ा राष्ट्र है, जिसका इतिहास में इम लोगों को पता चलता है। इ० प० ३४०० से भी बहुत पहले ही वे लोग बहुत-सी बातें सीख और ज्ञान उके थे; और उसके उपरांत तो वे बहुत ही शोभ्रता से उत्तरित करने लग गए थे। अब इम यह बतखाना चाहते हैं कि उन्होंने क्या-क्या सीखा था, और उनका ज्ञान कहाँ तक बड़ा हुआ था।

मिस्त्री लोग आरंभ से ही मुक्ष्यतः कृषक थे, और तथ से बराबर खेती-बारी ही करते आए हैं। बहुत ही आरंभिक काल से वे लोग बराबर तरह-तरह के अनाज और सन बोते आए हैं। इसी सन के तारों से उन्होंने बहुत जल्दी कपड़ा बुनना भी सीख लिया, और इसीलिये उनके यहाँ कपड़ों पर बेज-बूटे बनाने की कला भी निकल सकी। जल के लिये उन्हें नीज्ञ-नदी पर निभर रहना

पुरानी दुनिया



हमूरावी के नियम
(प्रगति-नतंभ पर अंकित)



पड़ता था, और वह जब अपने खेतों में आवश्यकतानुसार जाने अथवा उसे रोकने के लिये वे लोग बीच-बीच में बहुत-सी खाइयाँ आदि खोद लिया करते थे। ई० ४० ४००० तक वे लोग तीव्रि का व्यवहार करना भी जान गए थे। और, वे लोग तीव्रि के इथियार, आरियाँ और परधर काटने के तरह-तरह के जौज़ार बनाने लग गए थे। इस प्रकार वे लोग प्रस्तर-युग को पार करके धातु-युग में आ पहुँचे थे। थोड़े ही दिनों में उन्होंने इस बात का भी पता लगा लिया कि तीव्रि और टीन के योग से काँसा बनता है।

वे स्थल और जल दोनों के मार्गों से व्यापार करते थे। वे लोग भूमध्य सागर और जाक सागर के किनारों पर रहते थे, इसलिये शीघ्र ही वे जहाज़ भी बनाने लगे। मिलियाँ के बनाए हुए जहाज़ का जो सबसे पहला चित्र मिला है, वह ई० ४० २७५० का है; पर इससे बहुत पहले से ही वे समुद्र-यात्रा करने लगे थे। उनके ये जहाज़ के बहुत व्यापार के लिये विदेशों में जाते थे। कुछ जहाज़ तो पूर्वी भूमध्य सागर के टापुओं में या जाल सागर के दक्षिणी सिरे पर स्थित पुण्ड-नामक स्थान में जाते थे, और वहाँ से उन देशों की चीज़ें लाते थे, और कुछ जहाज़ जेवनन के पहाड़ों से लकड़ियाँ लाने के लिये सीरिया के तट पर जाते थे। इन लकड़ियों का व्यवहार वे लोग जहाज़ बनाने में करते थे, और इसका कारण यह था कि मिस्त्र में इमारती काम के लिये या जड़ाज़ आदि बनाने जायक लकड़ी नहीं होती थी। उन्होंने जाल सागर से परिचम की ओर नील-नदी तक पृक नहर इसलिये बनाई थी कि विसमें उनके जहाज़ जाल सागर से भूमध्य सागर तक आ-जा सकें। कुछ दिनों बाद उन्हें अपने व्यापारिक जहाज़ों की रक्षा के लिये लखाई के जहाज़ों का बड़ा भी तैयार करना पड़ा था। ऐसा जान पड़ता है कि ई० ४०

२००० से पहले कोट और ईंजियन सागर के टापुओं पर भी उनका कुछ अधिकार हो गया था।

स्थल-मार्ग से उनके यात्रियों के दब या कारबाँ खचारों और ढंगों पर माल लादकर (ज्योंकि तब तक उन्होंने कभी बोडे नहीं देखे थे) रेगिस्टानों को पार करके एक और पश्चिया और दूसरी ओर सूदान तक जाने थे। अपनी हन व्यापारिक यात्राओं में उन्हें रेगिस्टान में बसनेवाली जंगली जातियों से भय रहता था, हस्तियों में इन्हें पढ़ते थे (उदाहरणार्थ सिनाई-प्रांत में उनका एक उपनिवेश रखने पड़ते थे (उदाहरणार्थ सिनाई-प्रांत में उनका एक उपनिवेश था)), जिसमें उनके सैनिक भी रहते थे। यहीं सैनिक सीमाओं की हन जंगली जातियों के आम मरणों से रक्षा करते और व्यापारियों के दबों को भी बचाते थे, और जो लोग उनसे छेड़-छाड़ करते थे, उन्हें वे दंड देते थे। एक स्थान पर हस बात का उल्लेख है कि है० प० २६०० में मिस्त्रियों की एक सेना हसी काम के लिये पैकेस्टाइन गई थी। हसके उपरांत मिस्त्र के राजा सेसोस्ट्रिस प्रथम और सेसोस्ट्रिस तृतीय ने (है० प० ५८८५० और ५८६० में) कहं बार अपनी सेनाएँ कनान और आफ्रिका पर चढ़ाई करने के लिये भेजी थीं, और न्यूविया का बहुत-सा अंश जीता था, और हस प्रकार नाल-नदी के आस-पास का बहुत दूर तक का प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया था।

खेलन-कक्ष में भी मिस्त्रियों ने हसी प्रकार बहुत शीघ्रता से उत्तरि की थी। है० प० ३५०० में ही वे अपना अभिप्राय प्रकट करने के लिये चित्र बनाने लगे थे। हसके उपरांत शीघ्र ही उन्होंने अपनी एक चित्र-जिपि तैयार कर ली थी, जिसमें एक चित्र या चिह्न किसी एक ही शब्द या वस्तु का बोधक होता था। है० प० ३००० से बहुत पहले ही हस चिप्प ने उन्होंने हससे भी और

अधिक उत्तरि कर ली थी, और चौबीस चिह्नों की एक लिपि तैयार कर ली थी, जिसमें एक चिह्न किसी एक अचार का सूचक होता था। अब तक जितनी लिपियों का पता चला है, उनमें सबसे पहली और पुरानी यही है।

मिट्टी की बनी हुई भारी और भद्री चटिकाओं की अपेक्षा उन लोगों ने लिखने के लिये एक दूसरे सुंदर और हल्के उपकरण का आविष्कार किया था। नील-नदी के दलदलों में एक प्रकार का नरकट होता है, जो पेपिरस कहलाता है, और जिससे कागज का इँगरेजी पर्याय पेपर निकला है। मिलियों ने ही इस बात का पता लगाया था कि इसकी पत्तियों को एक पर एक रखकर चिपकाने से एक ऐसी अच्छी चीज़ तैयार होती है, जिस पर मझे मैं लिखा जा सकता है। उन्होंने दीए आदि की कालिक को पानी में घोलकर और उसमें एक प्रकार का गोंद मिला-कर लिखने की स्थाही तैयार की थी। इस प्रकार लिखने का कार्य बहुत सुगम हो गया था। बहुत-सा पेपिरस एक में लपेटकर थोड़े-से स्थान में रखा जा सकता था, इसलिये आब ग्रंथ आदि सहज में लिखे जा सकते थे, और बहुत-से ग्रंथ थोड़े-से स्थान में सुबीते से रखे जा सकते थे। राजाओं और उनके सरदारों (जिनका समय है० १० २१०० से बाद आरंभ होता है) के मकबरों या समाधियों में ऐसे पुस्तकालय मिले हैं, जिनमें संसार की सबसे प्राचीन कथाएँ हमारे लिये रचित हैं। केवल कथाएँ ही नहीं, उनमें सबसे प्राचीन काव्य, प्रार्थनाएँ, धार्मिक नाटक और चिकित्सा तथा गणित-शास्त्रों की सबसे प्राचीन पुस्तकों के अतिरिक्त सबसे प्राचीन मनुष्य-गणना की सूचियाँ और वे बड़ीखाते आदि भी हैं, जिनमें एकत्र किए हुए राजकरों का लेखा रहता था।

मिली लोग शीघ्र ही काल-गणना में भी बहुत दब हो गए थे, और इस काम में वैविलोनवालों से भी बहुत आगे बढ़ गए थे।

वे लोग अपने वर्ष की गणना सूर्य के अनुसार करते थे, चंद्रमा के अनुसार नहीं। उन्होंने वर्ष का विभाग बारह महीनों में किया था, जिनमें से प्रत्येक महीने में तीस दिन होते थे। वर्ष के अंत में वे दत्सव के पाँच दिन और मिला देते थे, और इस प्रकार उनका वर्ष ३६५ दिनों का हो जाता था। उनकी यह काल-गणना ई० प० ४२४१ से चलती है। इतिहास में यही सबसे पहला संबत् है, जो विकुल निश्चित और ठीक तरह से चला था। लौद या अधिमास का वर्ष भी सबसे पहले मिल में ही चला था, पर इसका प्रचार बहुत बाद में आर्थोत् सिंकंदर के समय के बाद से हुआ था।

एनेक प्रकार की कलाओं में भी मिलियों ने आश्चर्य-जनक उत्तरि की थी। बहुत पुराने ज्ञानों की कारीगरी की उनकी जो चीज़ें आवक्ष मिलती हैं, उन्हें देखकर मनुष्य चकित होकर प्रशंसा किए विना नहीं रह सकता। जवाहरात के काम में मोहरों के लिये जगीने काटने में, मिट्टी और शीशे के बत्तन तैयार करने में और सजावट के सामान बनाने और सजाने आदि में प्राचीन मिली लोग बहुत अधिक दृढ़ थे। उनकी पुरानी हमारतें और मूर्तियाँ आदि आकार और कारीगरी के विचार से बहुत ही अद्भुत और सुंदर हैं। मिलियों की तैयार की हुई मूर्तियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध स्फक्ष है, जो गिर्जे का दूसरा पिंगलिङ बनानेवाले राजा खेफरे के सिर की प्रतिकृति है। सारे संसार में चटानों को काटकर जितनी मूर्तियाँ आदि बनाई गई हैं, उनमें यह मूर्ति सबसे बड़ी है।

मिली लोग बहुत-से देवतों की पूजा करते थे। उनमें से मुख्य 'रा' या सूर्य-देवता और ओसिरिस या संसार की जीवनी शक्ति के देवता हैं। ऐसा जान पड़ता है कि मिलियों का यह विश्वास-

या कि ओसिरिस की प्रतिवर्ष मृत्यु हो जाती है, और प्रतिवर्ष नीका-नदी द्वारा उसे फिर से जीवन प्राप्त होता है। अपने इन देवतों के लिये वे परधर के बड़े-बड़े मंदिर बनाते थे, यथापि स्वयं उनके रहने के मकान वैविलोनिया के मकानों की तरह प्रायः धूप में सुखाई हुई हैंटों के ही होते थे। इन मंदिरों में खंभों की वहुत-सी पंक्तियाँ होती थीं। पुराने दंग के चौकोर भड़े खंभों की जगह सबसे पहले मिलियों ने ही गोल और सुंदर खंभे बनाने आरंभ किए थे।

मिलियों के धार्मिक विश्वासों में से एक मुख्य विश्वास यह था कि मृत्यु के उपरांत भी आत्मा जीवित रहता है, और मरने के बाद भी मनुष्य का एक जीवन होता है। वे लोग समझते थे कि मरने के उपरांत भी हम लोग जीवित रहते हैं, और उस दशा में भी हमें अपने शरीर, नौकर-चाकरों तथा उन सब पदार्थों की आवश्यकता होती है, जिनसे इस जीवन में इमारा काम चलता है। इसीलिये वे लोग सदा मृत शरीरों को भी मसाले आदि लगाकर रचित रखते थे, और मृत पुरुषों की समाधियों या मक्कबरों में सब प्रकार की चीज़ें और सजावट आदि के सामान रख दिया करते थे। बहुत प्राचीन काल में तो उनके देश में यहाँ तक होता था कि जब कोई बड़ा आदमी मर जाता था, तब उसके साथ उसके नौकर-चाकर भी यह समझकर मार डाले जाते थे कि अगले जीवन में ये भी उसकी सेवा-शुश्रूपा करेंगे। पर आगे चलकर उन्होंने यह निर्देशता-पूर्ण प्रथा ढाठा दी थी, और मक्कबरों में नौकर-चाकरों की केवल छोटी-छोटी मृतियाँ बनाकर रख दिया जाते थे। कुछ दिनों बाद उनका यह भी विश्वास हो गया था कि ग्रत्येक मनुष्य के मरने पर ओसिरिस उसके पाप-पुण्य आदि का विचार करता है, और जीवन में किए हुए उसके सत्कर्मों या दुष्कर्मों के लिये उसे पुण्यकार या दंड देता है।

मिलियों की बनाई कुहै सबसे बड़ी इमारतें बड़े-बड़े आदमियों की समाधियाँ या मकबरे हैं। मिस्र के प्रसिद्ध पिरामिड भी, जो ३०० पूँ लगभग ३००० से २५०० तक बने थे, बड़े-बड़े राजों की समाधियाँ या मकबरे हैं। उन्हें देखकर सहसा यह विश्वास नहीं होता कि आज से पाँच हजार वर्ष पहले भी ऐसी इमारतें बनती थीं, या बन सकती थीं। गिजे-नामक स्थान में राजा इमहेटेप का जो बहुत बड़ा पिरामिड (३०० पूँ २६२०) है, वह सब मिलाकर तेरह एक जमीन पर है, और उसकी ऊँचाई प्रायः १०० फ़ीट है। उसमें लगभग बीस लाख से ऊपर पर्याप्त के बड़े-बड़े चौकोर टुकड़े हैं, जिनमें से हरएक का बजान साठ-सत्तर मन है। मिलियों के प्राचीन लेखों में कहा गया है कि एक लाख आदमियों ने बीस वर्ष तक मेहनत करके यह पिरामिड तैयार किया था; और उनके हस कथन पर बहुत साहज में विश्वास किया जा सकता है। मिस्र में हस प्रकार का यही एक पिरामिड नहीं है; ऐसे-ऐसे पिरामिड एक क़तार में प्रायः साठ मील तक चले गए हैं। हससे हम लोग हस बात का कुछ अनुमान कर सकते हैं कि उस समय के राजों के पास कितने अधिक लाज-मज़दूर आदि रहा करते थे, और इतने अधिक आदमियों के कामों की ठोक-ठोक व्यवस्था करने के लिये उनकी संघटन-शक्ति कितनी प्रबल थी; और इतनी बड़ी-बड़ी इमारतें तैयार करने के लिये उन्होंने कैसे-कैसे यंत्र बनाए होंगे, तथा पर्यारों के इतने भारी-भारी टुकड़े किस प्रकार इतनी ऊँचाई तक पहुँचाए होंगे !

मिस्र की सम्यता का प्रभाव पूर्व और पश्चिम दोनों पर पड़ा था। उसकी शक्ति, वैभव और संस्कृति इतनी अधिक बड़ी-बड़ी थी कि उसका अनुमान करके आश्चर्य होता है। फिर एक बात यह भी है कि ३०० पूँ २००० तक या हसके और कुछ दिन बाद

तक कोई बाहरी शक्ति उनकी शांति में बाधा ढालने के लिये उनके देश में नहीं पहुँची थी। पर है० प० १९०० के लगभग एशिया में कुछ उपद्रव होने लगे, जिनका वर्णन हम पिछले प्रकारण में कर आए हैं; और उन उपद्रवों के परिणाम-स्वरूप मिस्र के बैमव पर आधात पहुँचने को संभावना होने लगी। रेगिस्तान के बहुलोग सदा मिस्र में पहुँचकर उपद्रव किया करते थे, और वे लोग या तो बहाँ बस जाते या झुजाम बना लिए जाते थे। शायद इबाहीम, यूसुक और याकूब (अँगरेजी नाम अबाहाम, जोजेक और जैकब) तथा उनके लाइके आदि इसी प्रकार मिस्र पहुँचे थे। पर जब हिटाइट लोगों ने सीरिया में उपद्रव मचाना आरंभ किया, तब एशिया के निवासी बहुत अधिक संख्या में मिस्र पहुँचने लगे। मिस्री लोग इन आगंतुकों को हाइक्सोस कहते थे, जिसका अर्थ कदाचित् 'गाइरिया राजा' है। हम निश्चित रूप से यह तो नहीं कह सकते कि ये हाइक्सोस लोग कौन थे, पर बहुत संभव है कि ये लोग कनासान और सीरिया के सभ्य निवासी हों, जो हिटाइट लोगों के आक्रमणों से बचने के लिये दक्षिण का ओर बढ़ आए हों। इसके अतिरिक्त इस बात की भी बहुत कुछ संभावना है कि इन आगंतुकों के साय-साय रेगिस्तान के रहनेवाले बहुत-से जंगली भी चले आए हों। मिस्रवाले इन लोगों को अपने देश में आने से रोक नहीं सके थे, और उन्हें अपने देश से बाहर नहीं रख सके थे। हाइक्सोस लोगों ने वहाँ अपना एक राज्य स्थापित कर लिया, जिसका केंद्र या राजधानी एवरिस-नामक स्थान में थी, जो नील-नदी के डेल्टा या खोलंतर में एक नगर था। मिस्र के सब राजा दक्षिण की ओर भाग गए, और दक्षिणी मिस्र पर ही उन्होंने अपना एक प्रकार का शासन रखा। पर वस्तुतः हाइक्सोस लोग ही सारे देश पर शासन करते थे। आगे

चक्रकर है० प० १५७५ में मिस्त्र में पृक नवा राजवंश उत्पन्न हुआ, और उस राजवंश के पहले राजा अहमोसिस ने बहुत दिनों तक युद्ध करने के उपरान्त हाइक्सोस लोगों को मार भगाया, और उनकी शक्ति तोड़ दी। फिर भी कदाचित् कुछ हाइक्सोस भित्र में गुलामों की माँति रह गए थे। वाकी लोग उत्तर की ओर भगा दिए गए थे, और वे पश्चिया में पहुँचकर फिर कन-आनियों और सोरियों के उन्हीं दक्षों में मिल गए थे, जिनमें से निकलकर वे मिस्त्र पहुँचे थे।

हाइक्सोस लोग अपने साथ मिस्त्र में बोडे और युद्ध करने के रथ भी लेते गए थे, और उन्होंने मिस्त्रियों को यह सिखाया था कि बड़ी-बड़ी लडाईयाँ किस ढंग से जड़ी जाती हैं। जब मिस्त्र ने उन लोगों को निकाल बाहर किया, तब, ऐसा ज्ञान पड़ता है, उन्होंने अपने मन में उन लोगों से बदला लुकाया ठान लिया था। उस समय मिस्त्र पहलोपहल पृक बड़ा बोदा राष्ट्र बना था। इस नए राजवंश के राजा लोग बहुत बड़े विजेता हुए, जिनमें से थ्रटमो-सिस प्रथम और थ्रटमोसिस तृतीय (है० प० १५४० और १४७५) बहुत प्रतिष्ठा हैं। वे हर साल युद्ध ठानते थे, और उत्तर की ओर बढ़ते जाते थे; यहाँ तक कि अंत में वे फ्रान्स-ज़दी के तट पर करकमिश-नामक स्थान पर पहुँच गए थे। उन लोगों ने उपजाऊ मेघला के समस्त परिच्छमी आधे भाग पर मिस्त्री शासन स्थापित और प्रचलित किया था, और कनान अब मिस्त्र का ही पृक सूबा बन गया था। करनाक के विशाल मंदिर में (जो उसी स्थान पर है, जहाँ पहले येवेस-नामक प्राचीन नगर था) हमें पर्थरों पर खोदे हुए अभी तक ऐसे अनेक चित्र मिलते हैं, जिनसे यह सूचित होता है कि इस प्रकार की विजयों के कारण मिस्त्रियों का बैमव और संपदा कितनी अधिक बढ़

गई थी। साथ ही उन चित्रों से यह भी पता चलता है कि बिन मिलियों ने पत्थरों पर ये चित्र खोदे थे, वे इस काम में कितने होशियार और बड़े-बड़े थे।

मिस्री साम्राज्य को सबसे अधिक उच्छिति प्रभेनहोटेप तृतीय के समय में हुई थी (इ० ४० १४११), और यही उसको चरम उच्छिति का काल माना जाता है। इसके बाद ही मिस्र का दास आरंभ हुआ। उसके इस हास के कारण अंतरिक भी ये और बाह्य भी, जिनमें से कुछ कारणों का यहाँ उल्लेख किया जाता है—

(१) राजा थुटमोसिस के बाद मिस्र के सिंहासन पर जो राजा बैठे थे, वे उतने अधिक युद्ध-प्रिय नहीं थे, और वे प्रायः अपने महलों में ही पड़े रहना पसंद करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि मिस्र के सैनिकों का रोज़गार मारा गया, और वे बहुत अधिक असंतुष्ट हो गए। विदेशों में मिस्र की जो प्रजा थी, उसे लोग क्रांति और विद्रोह करने के लिये उत्तेजित करने जागे, क्योंकि अब उन्हें इस बात का तो कोई भय रह ही नहीं गया था कि मिस्र को सेना हमें शांत करने के लिये आवेगी।

इसके अतिरिक्त राजा प्रभेनहोटेप ने, जो इ० ४० १३६० में सिंहासन पर बैठा था, राजनीति की ओर से अपना ध्यान इटाकर धार्मिक विषयों में नहीं-नहीं उद्भावनाएँ और विलक्षणताएँ निकालने का प्रयत्न आरंभ किया। वहुत-से पुराने देवतों की पूजा बंद करके वह इस बात का प्रयत्न करने लगा कि सब लोग केवल सूर्य-देवता की पूजा करें, जिसे वह 'पटन' कहता था। इस पटन की भक्ति के कारण ही उसने अपना नाम तक बदल कर नया नाम 'प्रखनेटन' रखा, और एक नया नगर बसाया, जो आजकल 'अमरना' कहलाता है, और इस नए नगर के लिये

उसने अपनी पुरानी राजधानी येवेस का परिवाग कर दिया। इसमें संदेह नहीं कि धार्मिक विचारों में सुधार करने का उसने जो प्रयत्न किया था, वह बहुत ही महत्व-पूर्ण और मनोरंजक था। पर धार्मिक विषयों में ही वह इतना अधिक व्यस्त रहता था कि साम्राज्य के काम देखने के लिये उसे समय ही न मिलता था। फिर धार्मिक विषयों में भी सुधार करके उसने सब पुरोहितों और पुजारियों तथा भक्तों आदि को अपना विरोधी बना लिया था। इन कारणों से मिलियों की राजमहल जाती रही, और वे लोग राजा की ओर से असंतुष्ट हो गए।

(२) इसी बीच में साम्राज्य पर बाहर से विपत्तियों के आने की संभावना भी बगावर बढ़ती गई।

क—अख्लनेटन के शासन-काल में हिटाहट लोग बराबर दण्डिया की ओर बढ़ते जा रहे थे, और उन्होंने समस्त उत्तरी सीरिया पर अधिकार कर लिया था। इस समय तक उन लोगों ने कृष्ण सागर के पासवाली अपनी खानों से लोहा निकालना भी सीख लिया था। नई शास्त्रा के जो राजा अख्लनेटन के उत्तराधिकारी हुए थे, उन्होंने और उनमें से विशेषतः सेयोस प्रथम (ई० प० १३१३) और रैमेसिस द्वितीय (ई० प० १२६२) ने हिटाहट लोगों को पोछे हटाने के लिये कहं बड़े-बड़े युद्ध किए थे, पर फिर भी वे लोग हिटाहटों को निकाल नहीं सके। उक्ते उनके इस प्रयत्न में मिल की सारी शाँति का अंत हो गया। इस प्रकार पाठकों ने समझ लिया होगा कि पहाड़ी लोग एक ओर से मिस्र-साम्राज्य को दुर्बल करते जा रहे थे।

ख—इसके कुछ ही दिनों बाद हिन्दू लोगों ने, जो पूर्वी रेगिस्तान से आए थे, कनासान पर अधिकार कर लिया (खगमग १२०० ई० प०), उनकी जाति के कुछ दल मिल में गुज़ा म

बना लिए गए थे। अब वे लोग अपनी गुलामी छोड़कर किसी तरह निकल भागे थे, और जाहंन के पश्चिमी भाग में बसने लग गए थे। कुछ तो ज़द-मिलकर और कुछ शांति-पूर्ण ढपायों में उन लोगों ने धीरे-धीरे उस देश पर अपना अधिकार जमा लिया। वे लोग या तो कनानवालों के साथ मिलकर मिलियों से जड़ते थे, अथवा कनानियों में ही पूर्ण रूप से समिलित हो जाते थे। यद्यपि उन लोगों के पूर्ण स्वतंत्र होने में बहुत दिन लग गए थे, तो भी अब कनान किसी प्रकार मिल का अधीनस्थ प्रांत नहीं माना जा सकता था।

ग—प्रायः इसी समय के लगभग समुद्र और रेगिस्तान दोनों की ओर से मिल पर प्रत्यक्ष रूप से आक्रमण होने लगे। है० पू० तेरहवीं शताब्दी के अंत में कीट के राजों की समुद्री शक्ति दूष गई। वहाँ के सैनिक योद्धा अब स्वतंत्र हो गए थे, और उन पर किसी का शासन नहीं रह गया था, इसलिये वे लोग कीट-टापू के आस-पास और पश्चिमा माहानर के तटों पर दक्षिण की ओर और पूर्व की ओर भी लूट-पाट और आक्रमण आदि करने लगे। उनमें से कुछ लोग सीधे आक्रिका में चले आए, और लीविया में रहनेवाली रेगिस्तानी जातियों के साथ मिलकर पश्चिम की ओर से नील-नदी के देखता या त्वरितर पर आक्रमण करने लगे। उनके कुछ दूसरे साथी पश्चिमा के तट पर जा पहुँचे, और वहाँ से बड़े-बड़े दल बाँधकर दक्षिण की ओर बढ़ने लगे। हिटाहट-साम्राज्य उनके मार्ग में पड़ता था। उसे उन्होंने दुर्बल करके तोड़ डाका, और तब वे लोग समुद्र के किनारे-किनारे बढ़ते हुए मिल की सीमा पर जा पहुँचे। इस प्रकार ये दो सेनाएँ प्रायः पचास वर्षों तक (है० पू० १२२६-११७५) बराबर उपद्रव मचाती रहीं, और उच्चरी मिल के निवासियों को

तंग करती रहीं। पर अंत में मित्र के राजों ने किसी प्रकार उन लोगों को परास्त किया, और उन्हें छिप-मिल कर दिया। पर उनमें से कुछ लोग, जो किञ्चित्तीनी कहलाते हैं, किसी प्रकार बचे रहे, और कन्द्रान के समुद्र-उट पर जम गए। वे नाम-मात्र के लिये मित्र की अधीनता में थे, पर कार्य-रूप में उनकी वह अधीनता कहीं दिखाई न पड़ती थी। वे पूर्ण रूप से स्वतंत्र थे।

इस प्रकार एयिया में मित्र के साम्राज्य का अंत हो गया। पर इसका और भी विशेष दुष्परिणाम यह हुआ कि इन सब जड़ाई-भगाड़ों के कारण मित्री लोग पूर्ण रूप से शिविर हो गए, और किसी काम के न रह गए। इन खुदों के अंतिम समय में तो यहाँ तक नौवत आ गई थी कि मित्रवालों को विवश होकर विदेशियों को धन देना और उन्हें अपनी सेना में सम्मिलित करना पड़ा था। मित्र का वास्तविक शक्ति या आत्मा का अंत हो चुका था, और दिन-पर-दिन बराबर उसका पतन ही दोता जाता था। प्रायः दो सौ वर्षों तक तो उसकी दशा बहुत ही शार्चनाय रही। मित्र में आंतरिक ह्रेष और फूट ने घर कर लिया। वहाँ एक दूसरे के विरोधी दो राजवंश स्थापित हो गए थे, जिनमें से एक की राजधाना तो थेवेस में था, और दूसरा राज्य डेलटावाले प्रांत में था। और, ये दोनों ही राज्य बिलकुल दुर्बल और अकमंख्य थे। इसके उपरांत वज्र पहुँचे जीवियावाले और तब इयोपियावाले इस प्रकार दो विदेशी राजों ने आकर मित्र के राजसिंहासन पर अधिकार किया, तब कहीं जाकर मित्रवालों में फिर से जीवन का कुछ संचार होने लगा। पर इस बीच में बहुत दिनों का अंतर पड़ गया था।

३. असीरिया का साम्राज्य

ई० प० ११०० से लेकर प्रायः दो सौ वर्षों* तक इस उपजाऊ मेस्कला के निवासियों पर न तो किसी विशेष व्यक्ति का अधिकार या शासन ही था, और न उन पर बाहर से ही किसी प्रकार की कोई विपत्ति आई। न तो पहाड़ों की ओर से ही, और न रेगिस्तान की ओर से ही उन पर कोई आक्रमण करने आया। आस-पास कोई ऐसा बड़ा राजा भी नहीं था, जिसका उन्हें भय होता। यद्यपि वैविज्ञोन ने ई० प० ११८९ में कास्साई राजों से अपना पीछा कुछ लिया था, पर फिर भी वह ऐसा ही दुर्बल था, जैसा कि मिस्र। हिटाईटों का साम्राज्य बिलकुल नष्ट ही हो चुका था। उच्चारों से ऐसा जान पड़ता है कि ई० प० १२६० और ११०० के मध्य में असीरियालूक अपना स्वतंत्र साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। पर उसी अवसर पर वह शिथिल पड़ गया, और उसकी शक्ति नष्ट हो गई।

इन सब बातों का परिणाम यही हुआ कि मेस्कला में रहनेवालों छोटी-छोटी जातियाँ अचान्य रूप से अपना काम करने लगीं, और ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई कि उस समय यदि वे चाहतीं, तो अपनी शक्ति बहुत-कुछ बड़ा सकती थीं। इस बात का सबसे पहला प्रबल करनेवाले हिन्दू या यहूदी लोग थे।

* इधर कुछ विद्वानों ने नवीन अनुसंधान करके यह सिद्ध किया है कि जिस शब्द का उचारण पहले असीरिया किया जाता था, उसका वास्तविक उचारण असुरिया या असूरिया है, और इसी देश के निवासियों को भारतवासी 'असुर' कहते थे। — अनुवादक

कनामान में पहुँचने के बाद इवरानी या यहूदी लोगों को अपनी स्वतंत्रता के लिये बहुत समय तक युद्ध करना पड़ा। उनका यह युद्ध विशेषतः क्रिलिस्तीनों के विरुद्ध था। पर जैसे-तैसे वे खोग अंत में स्वतंत्र हो गए, और दाउद (डेविड) तथा सुलैमान (सोलोमन) की अधीनता में उन्होंने अपना एक राज्य स्थापित कर लिया। उनका यह राज्य लगभग एक सौ वर्षों तक (इ० ८० १००० से १०० तक) क्रान्ति-नदी के तट से मिस्र की सीमा तक बना रहा। पर सुलैमान की मृत्यु के उपरांत उनका वह राज्य दो भागों में विभक्त हो गया, जिनमें से एक तो उत्तर को और इसराइल का राज्य था, और दूसरा दक्षिण की ओर जुड़ा का राज्य था। इसके उपरांत फिर कभी यहूदी लोग विशेष शक्तिशाली नहीं हुए, और उनकी गणना दूसरी श्रेणी की शक्तियों या राज्यों में ही की जा सकती है। उनका वास्तविक महत्व धार्मिक चेतना में था। यहूदी जाति में ही एक के बाद एक इस मकार से बहुत-से ऐसे महापुरुष हुए, जिन्होंने ईश्वर के संबंध में बहुत ही ऊँचे दरजे के विचार प्रकट किए। इसा के जन्म से पहले यदि संसार में ईश्वर के संबंध में कहीं कोई ऊँचे विचार सुनाई पड़ते थे, तो वह इवरानी या यहूदी लोगों में ही थे। ये लोग पैशंखर कहे जाते हैं, और इनकी शिक्षाओं ने इवरानियों या यहूदियों के धर्म को संसार में तब तक सर्वेषणे बनाए रखा, जब तक इसा का आविर्भाव नहीं हुआ।

* हम नहीं कह सकते कि भारतीय सम्यता और आध्यात्मिक विचारों के संबंध में मूल-रेखक के विचार संकीर्ण क्यों हैं। भारतवासियों ने अध्यात्म विद्या का जितना अधिक विकास किया है, उन्होंने संसार के किसी दूसरे देश ने नहीं किया। — अनुवादक

अब इवरानी या बहूदी लोग दुर्बल हो गए थे, इसलिये आरामियों या सीरियावालों को अपनी शक्ति बढ़ाने का बहुत अच्छा अवसर मिल गया। पैकेस्टाइन के उत्तर में दमिश्क, इमरथ और अरपद आदि स्थानों में इन लोगों ने अपनी कई अच्छी-अच्छी वस्तियाँ बसा ली थीं, जो दिन-पर-दिन बहुत उत्तरि करती जाती थीं, और परिचमी पृशिया में उन दिनों ये लोग बहुत बड़े व्यापारी बन गए थे। उन दिनों स्थल में इनसे बढ़कर व्यापार करनेवाला और कोई नहीं था। इन लोगों ने फिनीशियन लिपि का व्यवहार करना भी सीख लिया था। लिखने में ये लोग मिस्र की स्याही और कलम का व्यवहार करते थे। अब ये लोग बधेष्ट सम्म हो गए थे, और साथ ही इन्होंने अपनी शक्ति भी बहुत बढ़ा ली थी। दमिश्क अब एक राज्य का केंद्र या राजनगर हो गया था, और इं० पू० ३०० से प्रायः पचास वर्ष या इससे कुछ अधिक समय तक परिचमी तट पर सबसे अधिक बलवान् राज्य था। इस राज्य ने यह भी व्यवस्था कर ली थी कि यदि कोई बाहरी बलवान् शक्ति इस पर आक्रमण करे, तो यह अपने पड़ोसियों से भी सहायता ले सकता था।

पर सीरिया में इस बात की एक कमी थी कि वह अपने इन पड़ोसियों को मिलाकर एक नहीं कर सकता था, और उनका एक समिक्षित राज्य स्थापित नहीं कर सकता था। उस समय कुछ ऐसी ही अवस्था थी कि सीरिया, इस्राइल, जूदा, फिलिस्तीन, प्लोम, मोआब, अम्मन तथा और सभी बोटे-बोटे राज्यों ही अवसर पाते थे, त्वं ही आपस में लड़ना-मारना शुरू कर देते थे। यदि उस समय परिचमी पृशिया पर कोई बड़ी और प्रबल शक्ति आकर आक्रमण करती, तो बहुत-

कुछ सम्भावना इसी बात की थी कि सोरिया के ये सब छोटे-छोटे राज्य कभी पृष्ठ साथ मिलकर उसका सुक्रावक्षा न करते। इसके अतिरिक्त पृष्ठ बात यह भी थी कि वे सब राज्य आपस में ही बड़-बड़कर बहुत कुछ बल-हीन हो चुके थे।

पर है० पू० १०० के लगभग असीरिया की एक ऐसी नई शक्ति जड़ी हो गई, जो अपना एक नया साम्राज्य स्थापित करने के लिये विज्ञकृत तैयार हो गई थी। ये असीरियन लोग वस्तुतः सेमाइट थे, जो है० पू० ३००० के लगभग रेगिस्तान से आए थे, और वैविकोनिया के उत्तरी प्रदेश में बस गए थे। सबसे पहले इन लोगों ने असुर-नामक स्थान में अपनी राजधानी बनाई थी, पर पीछे से सारगन-नामक एक राजा ने (है० पू० ७२२) एक दूसरे नगर में राजधानी बनाई, और उसके उत्तराधिकारी सेनाकेरिय (है० पू० ७०१) ने अंत में निवेदा को स्थायी रूप से अपना राजनगर बना लिया। आरंभ में ये असीरियन लोग साधारणतः या तो वैविकोन की अधीनता में और या हिटाइट लोगों की अधीनता में रहते थे। पर ज्यों-ज्यों वे लोग बलवान् होते गए, त्यों-त्यों स्वतंत्र होते गए; और है० पू० ६०० में उनकी स्वतंत्रता तथा शक्ति इतनी बढ़ गई कि वे लोग सारे पश्चिमी प्रशिया पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये तैयार हो गए।

अब हम संचेप में यह बताना देना चाहते हैं कि ये लोग किस प्रकार के थे। इन लोगों का सुख्य उद्यम खेती-बाती था। ये लोग कभी बहुत बड़े व्यापारी नहीं हुए। उन्होंने अपनी अधिकांश सभ्यता सुमेरियन, वैविकोनियन, हिटाइट और फिनीशियन लोगों तथा मिस्रियों से ही ग्रहण की थी। ये लोग वास्तु-विद्या में बहुत अधिक निपुण हुआ करते थे, और बहुत बड़े-बड़े महल, मंदिर और नगर आदि

बनाते थे। वे लोग अपना इतिहास भी ठीक तरह से लिखते चलते थे, और मिट्टी की वे बटिकाएँ भी एकत्र करते चलते थे, जो उन दिनों वहाँ पुस्तकों का काम देती थीं। अब बिहारी ने निनेवा के खंडहरों को खोदना शुरू किया, तब वहाँ के राजा अशुरनीपल के राजमहल में उन्हें मिट्टी की इस प्रकार की २२,००० बटिकाएँ मिली थीं।

पर असीरियन लोग प्रधानतः सैनिक थे। उन्होंने हिटाहट लोगों से लोहे का काम सीखा था, और इसलिये वे लोग अब लोहे के हथियार आदि बना सकते थे। उनकी सेना में शुद्धसवार और रथ भी होते थे, और नगरों पर घेरा ढालकर उन्हें नष्ट करने के अनेक प्रकार के यंत्र आदि भी होते थे। वे लोग बहुधा युद्ध ही करते थे, और उनके सब काम युद्ध से ही चलते थे। उनके बड़े-बड़े राजा यथा अशुरनीरपल, शकमनेसर द्वितीय तथा पंचम, तिगज्ज्य-पछेसर चतुर्थ, सारगन, सेजाकेरीब और प्रसरहेडन बहुत बड़े-बड़े थोदा थे, और उन्होंने अपना अधिकांश समय बड़ी-बड़ी सेनाओं को साथ लेकर लड़ने और दूसरे देशों तथा जातियों पर विजय प्राप्त करने में ही बिताया था। असीरियन जोग जैसी भीषणता और निर्दयता से युद्ध करते थे, वैसी भीषणता और निर्दयता से उससे पहले कभी किसी जाति ने युद्ध नहीं किया था। प्रायः ढाई सौ वर्षों तक उनकी शक्ति बगावर बढ़ती ही गई, और वे उपजाऊ मेखला के स्वामी बने रहे। इसके बाद उनके साम्राज्य का बल घटने लगा, और पचास वर्ष के अंदर ही वह साम्राज्य टूटकर नष्ट हो गया।

यदि असीरियन लोगों के युद्धों का साधारण वर्णन भी किया जाय, तो उसके लिये बहुत-से समय और स्थान की आवश्यकता होगी। अतः हम उन्हें तीन मुख्य भागों में विभक्त करके यहाँ उनका बहुत ही संक्षेप में कुछ वर्णन कर देते हैं—

(१) असीरियन राजों को अपनी सेनाओं का बेतन लुकाना था, इसलिये उनकी दृष्टि दक्षिण-पश्चिम की ओर गई। उन्होंने निश्चय किया कि सीरिया और पैकेस्टाइन को जीत लेना चाहिए, और यदि आवश्यकता हो, तो मिस्र पर भी अधिकार कर लेना चाहिए। उन्होंने सबसे पहले दमिश्क पर चढ़ाई की। दमिश्क के राजों ने अपने सब पड़ोसियों को अपनी सहायता के लिये लुका लिया, और पचास वर्ष से कुछ अधिक समय तक (२० पू० ८५४-८००) असीरिया के राजों का बहुत झगड़दस्त मुक़ाबला किया। पर किर भी असीरियावाले उनकी अपेक्षा बहुत अधिक बज़बान् थे। सीरिया के राज्य धीरे-धीरे निर्बंध होने लगे। २० पू० ७३१ में असीरियावालों ने दमिश्क को जीतकर नष्ट कर डाला। इसके दस वर्ष बाद उन लोगों ने समरिया की भी यही दणा की, और इसराइल के यहूदी-राज्य का अंत हो गया। २० पू० ६८२ के बाद जुड़ाका यहूदी-राज्य भी हार मानकर असीरिया का अधीनस्थ हो गया। इस प्रकार असीरियावालों का राज्य मिस्र की सीमा तक जा पहुँचा।

मिस्रवाले पहले से ही देख रहे थे कि यह विपत्ति दिन-पर-दिन समीप आती जाती है, अतः वे उसे रोकने का प्रयत्न करने लगे। जिस समय मिस्र में इथिओपिया के बंश के राजों का शासन था (२० पू० ७२७ के बाद से), उस समय मिस्रवाले यहूदियों तथा और लोगों को असीरिया के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये भड़का रहे थे; और अपने इस प्रयत्न में उन्हें प्रायः कुछ सफलता भी हो जाया करती थी। इसका परिणाम यह दुम्भा कि असीरिया के राजा अपने मन में यह बात समझने लगे कि अब तक हम लोग स्वर्य मिस्र पर विजय न प्राप्त कर लेंगे, तब तक

परिचम में हमें भी शांति न मिलेगी। हस्तिये ६० प० ६७० में उन्होंने मिस्र पर आक्रमण किया। उन्होंने मेंफिस और थीबस के बड़े नगर नष्ट कर दिए, और मिस्री शासकों या गवर्नरों को असीरिया के नौकर बनाकर उस देश पर शासन करने के लिये नियुक्त किया। परंतु यद्यपि उन लोगों ने उस देश पर विजय प्राप्त कर ली थी, तथापि वे लोग उसे अपने अधिकार में नहीं रख सके। बात यह थी कि असीरिया से मिस्र बहुत दूर पड़ता था, और जब कभी असीरियन सेनाएँ बौटकर अपने घर चली जाती थीं, तब मिस्रवाले विद्रोह खड़ा कर देते थे। अंत में असीरियनों को इस संघर्ष में अपना प्रयत्न छोड़ दी देना पड़ा, और समटिक तथा नीको द्वितीय-नामक राजों के शासन-काल में मिस्र किर स्वतंत्र हो गया।

(२) इधर अपने देश के आस-पास भी असीरियावाले चैन से नहीं रहने पाते थे। एक ओर पूर्वमवाले और दूसरी ओर वैविलोनवाले उन्हें बराबर तंग करते रहते थे। असीरियावालों ने कई बार एजम पर आक्रमण किए, और अंतिम बार (६५० प० ६४७) उन्होंने एजम के निवासियों का पूरी तरह से अंत कर दाला, और वहाँ का राजनगर, जो सूसा कहलाता था, जला दाला। पर वैविलोन को शांत करने में उन्हें अपेक्षाकृत कम सफलता हुई थी। यद्यपि वैविलोन बहुत अधिक बलवान् नहीं था, पर फिर भी वह असीरिया के इतने पास पड़ता था कि यदि वह विद्रोही हो जाता, तो असीरिया को बहुत कुछ तंग कर सकता था। परंतु वैविलोनवालों को असीरियावाले किसी तरह राज-भवति भी नहीं बना सकते थे। उन्हें बार-बार आक्रमण करके वैविलोन पर विजय प्राप्त करनी पड़ती थी। ६५० प० ६२६ में असीरियावालों ने वैविलोन का सारा नगर ही नष्ट कर दाला, और क्रात-नदी का रुद्र इस तरह बदल दिया कि उसकी धारा उसी स्थान से होकर बहने

लगी, जिस स्थान पर वैविलोन-नगर था। इसके बाद असीरिया में जो दूसरा राजा हुआ (ई० प० ६७५), उसने फिर से वैविलोन-बालों के साथ मिश्रता स्थापित करने का प्रयत्न किया, और उनका नगर फिर से बनवा दिया। पर इसका भी कोई शुभ फल नहीं हुआ। वैविलोनियावाले फिर भी पहले की ही तरह सदा विद्रोह करने के लिये तैयार रहते थे।

उनकी इस उद्देश्य के कदाचित् दो मुख्य कारण थे—एक तो यह कि वैविलोनवाले कभी यह बात भूल नहीं सकते थे कि किसी समय हम भी एक बहुत बड़े साम्राज्य के अधिकारी थे, और वे जोग असीरियावालों की सामान्य प्रजा होकर नहीं रह सकते थे। और, दूसरा यह कि एक नई जाति के जोग, जो खालिद्यन कहलाते थे, बराबर वैविलोनिया में आ रहे थे, और वहाँ के निवासियों को असीरियावालों का विरोध और मुकाबला करने के लिये भड़काते रहते थे। वे खालिद्यन जोग भी वस्तुतः सेमाइट ही थे, और रेगिस्तान से आए थे। हघर सैकड़ों वर्षों से वे जोग क्रारस की खाड़ी के ऊपरी भाग में बराबर चारों तरफ फैल रहे थे। क्रारस की खाड़ी के उत्तरी भाग के वे ज़िक्के उन दिनों 'समुद्री प्रदेश' कहलाते थे। उनमें से बहुत-से जोग बराबर वैविलोनिया में भी जाते रहते थे। यद्यपि असीरियावाले उन जोगों पर भी बराबर आक्रमण करते रहते थे, तो भी धीरेधीरे वे खालिद्यन जोग वैविलोनियावालों के नेता बन गए। ई० प० ६२६ में उन्होंने वैविलोन में एक नए राजा को सिंहासन पर बैठाया, जिसका नाम नथोपोलस्सर था, और तब अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। और, जब ई० प० ६१२ में निनेवा-नगर नह कर दिया गया था, तब उसे नष्ट करनेवाली सेनाओं में से एक सेना खालिद्यनों की भी थी।

(३) पर असीरिया के लिये सबसे भारी विपत्ति उत्तर की ओर थी। यदि हम नक्शा देखें, तो हमें मालूम होगा कि असीरिया देश उपजाऊ मेस्खला के ठीक उत्तर में पड़ता है। उसके चारों ओर पहाड़ी ज़मीन का एक प्रकार का अद्वृत्त-सा है। पहाड़ों पर रहनेवाले हृष्टो-योरपियन नूज़ अब फिर वहाँ से निकलकर इधर-उधर बढ़ने लगे। उनमें से कुछ लोगों ने ई० ४० ८५० के लगभग असीरिया के उत्तर-पश्चिम में बान-नामक झील के चारों तरफ एक नया राज्य स्थापित किया, जिसका नाम उररुट या क्विड्या था। यह राज्य उसी स्थान पर था, जिस स्थान पर आजकल आरमेनिया है। असीरिया का यह पड़ोसी राज्य भी उसे सदा तंग किया करता था, और इसका अस्तित्व ई० ४० ७१० तक बराबर बना रहा। पर इनसे भी बढ़कर खानावदोशों के बे दक्ष थे, जो बराबर पश्चिम और पूर्व की ओर फैलते जाते थे, और असीरियावालों को सदा इस बात की आशंका बनी रहती थी कि ये लोग दक्षिण की ओर भी पहुँच जायेंगे, और वहाँ से हमारे देश में प्रवेश भरेंगे। इन दलों के दो मुख्य विभाग थे, जो इस प्रकार थे—

(क) पहले विभाग में तो सिम्मेरियन और सोदियन या शक छोग थे। ये लोग बिल्कुल जंगली थे, और प्रायः अध-नरों रहते थे। ये लोग जंगली घोड़ों की नंगी पीठ पर सवार रहते थे, और उनके पास बड़ी-बड़ी तलवारें रहती थीं, जिनके फल लाये, भारी और पत्ती के आकार के होते थे। ये लोग वहाँ जाते थे, वहाँ लोगों को लूटते-पाटते थे, और उनके घरों आदि को जलाकर नष्ट कर डालते थे। वे लोग बहुत दिनों तक इधर-उधर जूमते रहे। उनके कारण पश्चिमी एशिया के निवासी बहुत ही भयभीत और चक्षु रहते थे। पहले तो असीरियावालों ने जह-मिहकर

उन्हें रोकना चाहा, और जब इसमें उन्हें सफलता नहीं हुई, तब उनके साथ मिश्रता स्थापित करने का प्रयत्न किया। पर चाहे लोग उन्हें अपना शत्रु समझते और चाहे मिश्र, पर वे करते सदा मनमानी ही थे। १००००००००० के लगभग या इससे कुछ पहले ही वे लोग दचिया की ओर आने लगे, और सीरिया तथा पैकेस्टाइन में लूट-पाट करने लगे। इस प्रकार उन्होंने असीरियन साम्राज्य के परिचमी प्रांत नष्ट कर डाके।

(ख) असीरिया के पूर्व और उत्तर-पूर्व में भी कहाँ दब रहते थे, जिनमें से सुख्य मीड और पारसी थे। उस समय तक ये लोग कुछ-कुछ सभ्य हो चुके थे। विशेषतः उनका धर्म कुछ उच्च कोटि का था। १००००००००० के लगभग जो रास्टर-नामक एक व्यक्ति हुआ था, जिसने उन लोगों को यह सिखलाया था कि जीवन और कुछ नहीं, केवल भले और बुरे या सद् और असद् का संघर्ष है। उसका यह भी कहना था कि एक और तो सद् के देवता अहुरमज्द और उनके क्रिश्टे हैं, और दूसरी और असद् के देवता या दुरात्मा अहरिमन हैं, और उन दोनों में सदा लड़ाई होती रहती है; और उसी लड़ाई के कारण जीवन में भी सद् और असद् का संघर्ष चलता रहता है। १००००००० से पहले मीड और कारसवालों का धार्मिक विश्वास सुख्यतः इसी विचार पर निर्भर था, और उनका धर्म इसी सिद्धांत पर आधित था।

ये दब असीरिया और ऐविजोनिया के पूर्व तथा उत्तर-पूर्व की ऊँची पहाड़ी भूमि में रहते थे। वे लोग मिश्र-मिश्र दबों को मिलाकर उनका एक संघ बनाने के प्रयत्न में थे, और धीरे-धीरे दचिया-गिरियम तथा परिचम की ओर फैल रहे थे। असीरिया के कहाँ राजों ने उनकी गति रोकने का यज्ञ किया, पर उनकी गति बीच-बीच में कुछ समय के

लिये रुक जाती थी ; पर पूरी तरह से नहीं रुक सकती थी । असीरिया के पूर्व में जेगरोस-नामक पर्वत को पार करके वे लोग आगे बढ़ आए, और पूर्खम के आस-पास के प्रदेश में भर गए । जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं, असीरियनों ने पहले ही पूर्खमवालों का पूरी तरह से नाश करके उनका देश छाली कर दिया था ; और उस छाली किए हुए प्रदेश में हन दलों को फैलने का बहुत अच्छा अवसर मिल गया । है० प० ६१० में वे इतने पास भी आ गए थे, और इतने बलबान् भी हो गए थे कि निनेवा पर आक्रमण कर सकते थे । एक बार तो वे लोग मार-पीटकर पीछे हटा दिए गए, पर किर भी वे दिन - पर - दिन अधिक प्रबल होते जाते थे, और उनके कारण विपत्ति की आशंका बढ़ती जाती थी । अंत में है० प० ६१४ में उन लोगों ने अपने राजा सायकसरीज को नेतृत्व में फिर निनेवा पर आक्रमण किया, और उसे चारों ओर से घेर लिया ; और दो वर्ष बाद है० प० ६१२ में खालिदयन तथा सीदियन या शक-सेनाओं की सहायता से उन्होंने निनेवा-नगर पर अधिकार करके उसे पूर्ण रूप से नष्ट कर दाला ।

निनेवा का पतन होते ही असीरिया के साम्राज्य का भी अंत हो गया । यहाँ हम संचेप में यह भी बतला देना चाहते हैं कि असीरियन साम्राज्य के नाश के बयान्या कारण थे—

(१) वह साम्राज्य बहुत बड़ा और विस्तृत था ; और असीरियावालों में इतनी शक्ति नहीं थी कि वे सारा साम्राज्य सँभाल सकते और शत्रुओं से उसकी रक्षा कर सकते । असीरिया के राजा बहुत बड़े विजेता तो अवश्य थे, पर वे अपने साम्राज्य की ऐसी व्यवस्था करना नहीं जानते थे, जिससे सब अधीनस्थ प्रदेश मिलकर एक हो जाते, और असीरिया के राजों के प्रति राजमक्त बने रहते । उन अधीनस्थ प्रदेशों की प्रजा सदा विद्रोह करने के लिये प्रस्तुत रहती

थी ; और इन विद्रोहों को दबाने के लिये असीरियावाकों को अपनी बहुत अधिक शक्ति व्यय करनी पड़ती थी ।

(२) असीरियावाके सदा दूसरों के साथ युद्ध ही करते रहते थे, और यद्यपि उन युद्धों में प्रायः उनकी जीत ही होती थी, तो भी उनके आदमी धीरे-धीरे मरते और घटते जाते थे । जिस समय सीरियन साम्राज्य का अंत होने लगा था, उस समय सीरिया में बहुत ही योद्धे असली सीरियन बच रहे द्वांगे, और उन्हें अपनी सेनाओं में दूसरी जातियों के आदमी भरने पड़े होंगे । इसके अतिरिक्त एक बात और थी । सीरियावाकों को सदा युद्ध-चेत्र में ही रहना पड़ता था, इसीलिये उन्हें अपनी खेती-बारी या व्यापार आदि का काम देखने का बहुत ही कम समय मिलता था, और वे ऐसे काम नहीं कर सकते थे, जिनसे कोई राष्ट्र संपन्न और प्रबल हो सकता है । ये सब काम तो उसी समय हो सकते हैं, जब बीच-बीच में शांति-पूर्वक विताने के लिये कुछ समय और इन सब बातों पर विचार करने का अवसर मिलता रहे ।

(३) बहुत अधिक संभावना इसी बात की है कि असीरियावाके उत्तर की ओर से आनेवाके दबों को सदा के लिये कभी रोक नहीं सकते थे । उत्तरी दब बहुत बलवान् भी थे, और उनमें आदमों भी बहुत अधिक होते थे । पर यदि असीरिया ने इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न न किया होता, और उसने अपनी सारी शक्ति युद्ध में ही व्यय न कर ढाकी होती, तो वह उत्तरी दबों नी जद्दी अपने यहाँ न खुसने देता । उस दशा में भी असीरिया में उत्तरी दबों का प्रवेश तो अवश्य होता, पर वे लोग धीरे-धीरे आते, और या तो प्रजा बनकर आते या मिश्र बनकर । पर उस समय असीरिया की परिस्थिति ही ऐसी हो गई थी कि उत्तरी दबों के सामने उनका राज्य उसी

प्रकार नष्ट हो गया, जिस प्रकार लड़कों का ताश का बनाया हुआ
घर दह जाता है, और असीरियन लोगों का संसार से पूरा-पूरा
लोप ही हो गया ।

जिस समय निनेवा का पतन हुआ, उस समय सारा एशिया
मारे आनंद के फूला न समाया । इस संबंध में पैरांवर नहुम
का कथन (तीसरा अध्याय, सातवाँ और उसके आगे के पाँच)
और पैरांवर जेक्कानिया का कथन (दूसरा अध्याय, तेरहवाँ और
उसके आगे के पाँच) देखने-योग्य है । जो बातें इन लोगों के
मुँह से निकली थीं, वही सारे एशिया के मुँह से निकली होंगी ।
अंत में असीरिया का सदा के लिये पूरा-पूरा नाश हो गया,
और वह संसार में कोई ऐसी चीज़ नहीं छोड़ गया, जिसके
कारण लोग उसके लिये कुछ दुःख करते । मिलियों, बैविलोनियों,
फिनीशियनों, आरामियों और इवरानियों या यहूदियों का संसार
पर कुछ-न-कुछ भरण है, और इनमें से कुछ का तो संसार बहुत
अधिक जल्दी है ; पर असीरियावालों ने संसार को एक भी बात
नहीं सिखलाई थी । उनका इतिहास और उनका भास्य उस इसी
बात का बहुत अच्छा उदाहरण था कि जो लोग हाथ में तलवार
उठाते हैं, वे स्वयं भी तलवार के ही घाट उतरते हैं ; और जो
साम्राज्य के बाहर युद्ध करके बहुत बड़ा होता है, उसका अंत भी
युद्ध के ही कारण होता है, और वह अपने, पीछे एक भी काम की
चीज़ नहीं छोड़ जाता ।

४. खालिडया और पारस के साम्राज्य

असीरिया का पतन तो हो ही चुका था, अब उसके साम्राज्य का उत्तराधिकारी कौन होता ? सबसे पहले मिस्रवाङ्गों ने सोचा कि इस लोग उसका कुछ अंश लेने का प्रयत्न करें । है० प० ६०४ में, राजा नीको के नेतृत्व में, मिस्र की एक बड़ी सेना उत्तर की ओर बढ़ती हुई फ़ूरात-नदी तक जा पहुँची । पर वहाँ करकमिश-नामक स्थान में उसे खालिडयनों का मुक़ाबला करना पड़ा, जो नेतुशादनजर के नेतृत्व में उससे लड़ने आए थे । वहाँ मिस्री सेना ढार गई, और भागी हुई सीधी मिस्र में आ पहुँची । अब मिस्रियों में इतना साहस ही नहीं रह गया था कि वे फिर इस प्रकार का कोई प्रयत्न करते ।

इस प्रकार असीरिया का साम्राज्य नष्ट होने पर उन्हीं दोनों शक्तियों में बेट गया, जिन्होंने मुख्यतः उसका नाश किया था । वे दोनों शक्तियाँ मांडों और खालिडयनों की थीं । मीढ़ लोगों ने असीरिया पर अधिकार करके उत्तरी पश्चिया का भी बहुत-सा अंश ले लिया, और वे हेलिस-नदी तक जा पहुँचे, जो खीडिया के राज्य की पूर्वी सीमा थी । उधर उनके चरेरे भाई पारसी पूर्वम के मालिक बन गए । खालिडयन लोगों ने बैविलोनिया भी ले लिया, और असीरिया के समस्त परिचमी प्रांतों पर भी अधिकार कर लिया, और नेतुशादनजर की आधीनता में एक साम्राज्य स्थापित किया, जो प्रायः पचास वर्षों तक रहा । नेतुशादनजर ने परिचमी प्रांतों की शीघ्र ही बहुत अच्छी व्यवस्था कर दी । जू़दावाले

अभी तक कुछ-न-कुछ उपद्रव मचाए चलते थे, इसकिये उसने उनका भी सदा के लिये अंत कर देना निश्चित किया। ई० प० ६८६ में उसने जेरूसलम पर अधिकार करके उसे जला डाका, और वहाँ से वह बहुत-से यहूदियों को कैद करके बैदिलोनिया ले गया।

नेतुशदनजर बहुत बड़ा राजा था। यथापि वह प्रायः सेनाएँ लेकर दूसरे देशों पर चढ़ाइयाँ भी करता था, पर फिर भी वह शांतिकाल की कलाओं को उत्तराधिकार करने में विशेष रूप से दत्तचित्त रहता था। उसके शासन-काल में बैदिलोन-नगर का विस्तार बहुत बढ़ गया था, और उसने वहाँ आनेक विशाल राजभवन तथा मंदिर आदि बनवाकर और उस नगर को बड़ी-बड़ी दीवारों से घिरवाकर तथा उनमें बड़े-बड़े फाटक बनवाकर नगर का सौंदर्य बहुत अधिक बढ़ा दिया था। उसने अपने राजमहल की छत पर बहुत ही आश्चर्य-जनक और सुंदर बाज़ा लगाए थे, जो सीढ़ीनुमा थे, और कई दरबारों में विभक्त थे। यूनानी लोग उन बाज़ों को बैदिलोन के 'मूलना बाज़ा' कहते थे, और उनकी गणना संसार के सात परम आश्चर्य-जनक पदार्थों में की जाती है। उसके समय में वाणिज्य-व्यवसाय और कला-कौशल आदि की बहुत अधिक उत्तराधिकार की जाती है। सब ग्राकार की पुस्तकें और खाते आदि एकत्र भी किए गए थे, और नप भी तैयार कराए गए थे। आकाशीय ग्रहों आदि की गणना और विशेषतः गणित व्योतिष्ठ में खालिदयन लोगों ने बहुत अधिक उत्तराधिकार की थी। यह ठीक है कि तब तक किसी ने यह सिद्धांत स्थिर नहीं किया था कि ग्रह आदि ही सूर्य की परिक्रमा करते हैं, पर फिर भी खालिदयन लोगों ने। ही पहले पहल आकाशीय ग्रहों और नक्शों आदि के नक्शे तैयार किए थे, और उनकी गतिविधि आदि का इतना अधिक निरीचण और अध्ययन कर लिया

या कि वे पहले से ही बतवा देते थे कि किस दिन और किस समय कौन-सा ग्रहण होगा ।

नेबुशादनजर का साम्राज्य बहुत अच्छा और ढक्कत था । पर उसी ही उसकी मृत्यु हुई (ई० ४० ५६२), त्यों ही वह साम्राज्य खंड-खंड होने लगा । उसकी मृत्यु के बाद के कुछ वर्षों का वैकल्पिक का कोई इतिहास इमें नहीं मिलता; पर ऐसा जान पड़ता है कि उन दिनों वहाँ सभी प्रकार के घट्यंत्र आदि आरंभ हो गए थे, क्योंकि उसके बाद जो तीन राजा हुए, उनमें से को तो मार डाले गए, और तीसरा राजा केवल चार वर्ष राज्य करने के बाद मर गया । खालिदया के अंतिम राजा ने, जिसका नाम नबोविदस था, अपना बहुत-सा समय ग्रेय आदि पढ़ने और प्राचीन धर्मों का अध्ययन करने में ही विसाधा था, और वह अपना अधूरा काम अपने लड़के वैकल्पिकर के पूरा करने के लिये छोड़ गया था । इस प्रकार वह राज्य अंदर-ही-अंदर चीण होने लगा ।

इस बीच में दूसरे साम्राज्य पर भी, जो मीडों का था, चारों ओर से अनेक प्रकार की विपत्तियाँ आ रही थीं । अब तक तो मीडों के सुकावजे में पारसवालों का महेत्व बहुत ही कम था, पर अब पारसवालों की शक्ति भी धीरे-धीरे बढ़ने लग गई थी । एकम में अनशन नाम का एक ज़िला था, जिसमें साहरस नाम का एक पारसी राजा राज्य करता था । ई० ४० ५६३ में साहरस इतना बलवान् हो गया कि उसने मीडों के राजा को राजसिंहासन से उतार दिया, और मोडों तथा पारसियों का एक संयुक्त राज्य स्थापित करके वह स्वयं उसका राजा हो गया । साहरस अनेक गुणों से संपन्न था महापुरुष था, इसलिये उसने अपना साम्राज्य बहुत बद्दी बढ़ा लिया । असंरिया के प्राचीन देश के परिचम में जितने ज़िले थे, उन सब पर उसने तुरंत ही अधिकार कर लिया । ई० ४० ५६४ में

उसने हेक्सम-नदी को पार करके छोड़िया में प्रवेश किया, वहाँ के राजा क्रोहसस को परास्त किया, उसकी राजधानी सारादिल पर अधिकार कर लिया, और उसका सारा देश अपने साम्राज्य में मिला लिया। इसके उपरांत वह सुख-पूर्वक आगे बढ़ने लगा, और उयों-उयों अवसर मिलता गया, उयों-स्थों पश्चिया माहनर के तट पर बसे हुए यूनानी नगरों पर अधिकार करने लगा। इस प्रकार वह पूलम से छोकर हैमियन समुद्र तक समस्त उत्तरी पश्चिया का स्वामी बन गया।

इसके बाद उसने वैविकोन की तरफ रुख़ किया, और है० प० ४३८ में उसने उस नगर में विजेता के रूप में प्रवेश किया। इस प्रकार उस खालिद्यन साम्राज्य का, जो पश्चिमी पश्चिया के आरंभिक साम्राज्यों में से अंतिम सेमेटिक साम्राज्य था, अंत हो गया। दृधर हज़ारों वर्षों से पर्वत-निवासियों और रेगिस्तान के रहनेवालों में जो झगड़ा चला आ रहा था, उसमें अंत में पर्वत-निवासियों की जीत हो गई। हैंडो-योरपियन लोगों ने सेमाइट लोगों पर विजय प्राप्त कर ली।

अब साइरस एक पारसी राजा के रूप में बहुत बड़े साम्राज्य पर शासन करने लगा। उसका साम्राज्य एक और तो भारत की सीमा के पास तक पहुंच गया था, और दूसरी ओर पश्चिया माहनर के तट और मिस्र की सीमा तक विस्तृत था। है० प० ४३६ में उसने यहूदियों को फिर से उनका देश दे दिया; पर उस समय तक यहूदियों की संख्या बहुत ही घट गई थी, और वे लोग अब उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं दे सकते थे। है० प० ४३८ में उसका लड़का केविसस और भी आगे बढ़ गया, और उसने जाकर मिस्र पर आक्रमण किया। उस समय तक मिस्र भी फिर से कुछ अधिक बलवान् और संपन्न हो गया था, और उसने फिर से अपना एक

बड़ा समुद्री बेड़ा तैयार कर लिया था । पर फिर भी पारसी सेना के सामने मिस्रवाले नहीं ठहर सके । कैविसेस ने मिस्र पर विजय प्राप्त कर ली, और मिस्र के राजा के रूप में अपना राज्याभिषेक कराया । उस समय पारसी साम्राज्य का जितना अधिक विस्तार था, उतना अधिक विस्तार उससे पहले संसार में और किसी साम्राज्य का नहीं हुआ था ।

पारसी लोग सभी दृष्टियों से बहुत अच्छे होते थे । उस समय उनके सैनिक और विशेषतः तीरंदाज और चुइसवार सारे संसार में सबसे बढ़कर थे । जिन राष्ट्रों को उन्होंने जीता था, उनसे भी उन्होंने बहुत-सी बातें सीखी थीं । बैविकोन और असीरिया से उन्होंने बड़ी-बड़ी इमारतें बनाना सीखा था, और साथ ही आश्चर्य-जनक मूर्तियाँ तथा दरबेवार बाज़ बनाने भी सीखे थे । मिस्रियों से उन्होंने खंभों की श्रेणियाँ बनाना और लुकदार चमकीली इंटों से अपनी इमारतों की दीवारें सजाना सीखा था । वे जो नगर बनाते थे, वे भी बहुत मुंबर होते थे । यद्यपि उनकी राजधानी सूसा-नामक नगर में थी, पर फिर भी उनके बादशाह बैविकोन में भी रहा करते थे । उन्होंने प्रज्ञम में पसरगढ़ और परसेपोलिस आदि कई नए और अच्छे नगर भी बसाए थे । यद्यपि पारसी लोग अपनी पुरानी पारसी-भाषा का भी व्यवहार करते थे, तथापि उनके सारे साम्राज्य में अधिकतर आरामी-भाषा ही बोली जाती थी ।

परंतु पारसियों के लिये सबसे बड़ी और विशेष शोभा की बात यह थी कि वे अपने अधीनस्थ प्रांतों की व्यवस्था बहुत ही अच्छे ढंग से करते थे, और असीरियावालों की तरह उन्हें केवल अपने सैनिक बल से ही अपने अधिकार में नहीं रखते थे । कैविसेस की मृत्यु के उपरांत ही पूर्ण ४२२ में दारा-

नामक प्रसिद्ध बादशाह उसका उत्तराधिकारी हुआ था । दारा ने अपना सारा साम्राज्य बीस प्रांतों में विभक्त किया था । जिन्हें वह 'सत्रपी' (एक सत्रप के अधिकार में रहनेवाला प्रांत) कहता था । प्रत्येक प्रांत में उसका एक गवर्नर या 'सत्रप' (संस्कृत रूप 'चत्रप') रहा करता था । इन प्रांतों में अनेक प्रकार की जातियों के लोग बसते थे, और उन सभी लोगों के साथ बहुत ही न्यायपूर्वक व्यवहार होता था ; और जब तक वे लोग अपना राज-कर ठीक तरह से देते रहते थे, और पारसी सेना के लिये अपने हिस्से के निश्चित सैनिक भेजा करते थे, तब तक पारसी गवर्नर उनके साथ किसी प्रकार की छेड़-छाड़ नहीं करते थे, और उन्हें स्वतंत्रता का बहुत कुछ भोग करने देते थे । पारसियों ने बहुत बड़ी-बड़ी संइकं में बनाई थीं, जो उनके साम्राज्य के भिजा-भिजा भागों में गई थीं । उनके राजों के पास प्रांतों से ढाक ले आने और प्रांतों में खो जाकर ढाक पहुँचाने के लिये हरकारों आदि की भी बहुत अच्छी व्यवस्था थी । इसके अतिरिक्त जब राजा ने अपने समुद्री तटों की रक्षा के लिये एक समुद्री बेड़े की आवश्यकता का अनुभव किया, तब उसने मिली और फिर्नीशियन जहाजों का एक बेड़ा तैयार किया, और उसमें दोनों ही देशों के नाविक रखले (यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि यद्यपि फिर्नीशियनों पर पारसियों ने कभी विजय नहीं पाई थी, तो भी पारसी राजों के साथ उनका मित्रता-पूर्ण व्यवहार रहता था ।) । इस प्रकार उस समय एशिया के एक साम्राज्य ने भूमध्यसागर में पहले पहल अपना एक बहुत बड़ा बेड़ा तैयार किया था, और अपनी समुद्री शक्ति स्थापित की थी ।

पारसी लोगों ने ये सब काम बहुत ही सोच-विचारकर और बहुत ही अच्छे ढंग से किए थे । पर फिर भी इसमें संदेह नहीं कि वह

साक्रांति सदा एक आदमी पर निर्भंत रहता था। उसकी सब बातें एकमात्र राजा पर ही निर्भंत थीं। यदि राजा सचमुच योग्य और अच्छा शासक होता था, तो सब बातें बहुत अच्छी तरह चली चलती थीं, पर यदि वह अकमंथय या मूँख होता, तो फिर साक्रांति का बल भी अवश्य ही बहुत घट जाता। जब ई० प० ४८६ में दारा की मृत्यु हो गई, तब उसके बाद जितने पारसी राजा हुए, वे सब संयोग से प्रायः विज्ञकुल ही अयोग्य सिद्ध हुए। इसका परिणाम यही हुआ कि पारसी सैनिक धीरे-धीरे सुस्त होने लग गए, और उनके सेनापति निकम्मे होते चले गए। प्रांतों के निवासी प्रायः विद्रोह करने लगे, और सत्रप लोग राजद्रोही हो गए। इस प्रकार पारसी साक्रांति धीरे-धीरे चीण होने लगा। यदि उसी समय वह पूर्ण रूप से छिन्न-भिन्न नहीं हो गया, तो इसका कारण यही था कि तब तक कोई ऐसा आदमी तैयार नहीं हुआ था, जो उसे छिन्न-भिन्न कर सकता। परिचमी पश्चिया के निवासी बहुत ही शिथिज हो जुके थे, और पश्चिया एक नए स्वामी की प्रतीक्षा कर रहा था। अभी तक यह निश्चित नहीं हुआ था कि उसका वह नया स्वामी कौन होगा, पर इस बात की बहुत कुछ संभावना थी कि वह स्वामी परिचम की ओर से आयेगा। परिचमी पश्चिया के आधिपत्य के लिये रेगिस्तान के रहनेवाले और पर्वत-निवासी प्रायः ढाई हजार वर्षों से आपस में जड़ते चले आ रहे थे। पर अब वह समय आ गया था, जब कि मसुद्दतटों के निवासी भी इस झगड़े में हाथ ढालते और दोनों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न करते।

जब साहरस ने पश्चिया माहनर के यूनानी नगरों पर आक्रमण किया था, तब उसका संपर्क एक योरपियन जाति के साथ हुआ था। उसी समय सबसे पहले एक योरपियन जाति के साथ एक



रोमन-सेना के प्रकार
(रोम में पटोनप्स के संघ के आघार पर से)



पश्चियाँ शक्ति की सुठमेड हुई थी। अगले प्रकरण में हम किर प्राचीन काल की कुछ बातों का वर्णन करेगे, और पाठकों को यह बतलावेंगे कि यूनानी लोगों का प्राचीन इतिहास क्या था; और तब पाठक लोग यह जानेंगे कि योरप और पश्चिया का संवर्धन किस प्रकार चला था। पर इससे पहले हम यहाँ संज्ञेष में एक बात और बतला देना चाहते हैं, जिससे पाठक लोग अचली भाँति यह समझ लें कि इस प्राचीन इतिहास का, जिसका वर्णन हमने अब तक किया है, यूनान और रोम के इतिहास के साथ क्या और कैसा संबंध था।

यों तो सारा देश यूनान कहलाता है, पर मुख्य यूनान उसका वह प्रदेश है, जो हेल्लास कहलाता है। उस मुख्य यूनान के रहने-वाले यूनानी कभी इतने बलवान् नहीं हुए थे, और न उनमें कभी ऐसा एका ही हुआ था कि वे पारस को कोई भारी जति पहुँचा सकते। जैसा कि पाठकों को आगे चलकर मालूम होगा, वे लोग इतने समर्थ अवश्य थे कि पारसियों को पश्चिम में अधिक दूर तक आगे बढ़ने से रोक सकते थे, और ऐसी बाधा खड़ी कर सकते थे, जिसमें वे हैंजियन-समुद्र के स्वामी न हो सकते। पर वे पारस-वालों को कोई ऐसी चोट नहीं पहुँचा सकते थे, जिससे पारसवालों की शक्ति घट सकती। पर जब उत्तरी यूनान में मेसिडोनिया का राज्य सुप्रसिद्ध बीर और विजयी सिकंदर के हाथ में आया, (ई० ३२६) और उसने समस्त यूनानियों का नेतृत्व ग्रहण किया, तब पश्चिम में कम-से-कम एक ऐसी बलवती शक्ति अवश्य खड़ी हो गई थी, जिसके पास जल और स्थल दोनों की सेनाएँ थीं, जो पश्चिया की सीमा पार करके पारस के मर्म-स्थल पर आक्रमण कर सकती थी। और, जब यह बढ़ना घटी, तब पारसी साम्राज्य उस नवीन शक्ति की गोद में उसी प्रकार आ पड़ा, जिस

प्रकार पेड़ से यका हुआ फल गिरकर सामने आ पड़ता है। है० ४०
 ३२२ में सिकंदर की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के उपरांत उसका
 राज्य उसके सेनापतियों में बँट गया, और मेसिडोनिया, मिस्र तथा
 सीरिया के तीन नए राज्य स्थापित हुए। ये तीनों राज्य आपस में ही
 लड़ने-भिड़ने और एक दूसरे को कमज़ोर करने लगे। इसके चाल
 शांत में वे रोमन लोग रंगस्थल पर आए, जो इस बीच में घरावर
 दिन-पर-दिन बलवान् हो रहे थे, और बढ़ते जा रहे थे। वही
 रोमन लोग क्रम-क्रम से आगे बढ़े, और यूनानी तथा पूर्वी संसार
 पर विजय प्राप्त करने लगे। अतः हम कह सकते हैं कि इस आरं-
 भिक संसार में एशिया का सबसे बड़ा और अंतिम साम्राज्य
 पारस्पर्यालों का था। इसी समय से संसार का भविष्य योरपियन
 लोगों के हाथ में आने लगा था।

दूसरा भाग

यूनान

१. यूनान का आरंभिक युग

श्रीम या यूनान का पुराना नाम हेल्लास था। आवक्त के यूनान की अपेक्षा यह एक बहुत छोटा देश था। आधुनिक यूनान में मेलिडोनिया, थिसली, अकरनेनिया और पटोलिया आदि जो कहाँ प्रांत हैं, वे प्राचीन काल में इतने अधिक लंगली और असम्य थे कि वे सुख्य हेल्लास के प्रांत ही नहीं माने जाते थे। हाँ, यह बात दूसरी थी कि उन प्रांतों में भी यूनानी रक्त से ही उत्पन्न जातियाँ बसती थीं। सुख्य हेल्लास उस रेखा के दक्षिण में पड़ता था, जो कोरिथियन खाड़ी पर के नोरेक्टस-नामक स्थान से नेलियक खाड़ी के थर्मापिली-नामक स्थान तक गहरा है। इस रेखा के बाहर संसार का जो शेष भाग था, वह सब यूनानियों की दृष्टि से बर्बरों का था, क्योंकि जो लोग यूनानी नहीं होते थे, उन सबको यूनानी ज्ञोग बर्बर ही कहा करते थे।

पर जिस प्रकार मिट्टी के देर में भी कहाँ-कहाँ जवाहरत विषेहुए पढ़े रहते हैं, उसी प्रकार उन बर्बर देशों में भी असली और सभ्य यूनानियों की कुछ वस्तियाँ वसी हुई थीं। इंजियन समुद्र के टापू, सिसली और दक्षिणी हटली के यूनानी नगर तथा पश्चिया माइनर और कृष्ण सागर के तटों पर के यूनानी नगर आदि यद्यपि हेल्लास के अंतर्गत नहीं थे, पर किर मी वे हेल्लास के ही बाहरी भाग माने जाते थे। और, इसका कारण

यही था कि उन स्थानों में भी ऐसे यूनानी लोग बसे थे, जो यूनानी भाषा बोलते थे, और जिनकी सम्यता भी यूनानी ही थी।

हेलंगाम में यूनानियों के पहुँचने से पहले ही वहाँ के मूल तथा प्राचीन निवासी और उसके आस-पास के टापुओं के रहनेवाले लोग बहुत कुछ संपत्ति और सम्य हो चुके थे। जान पड़ता है, इसा से तीन हजार वर्ष पूर्व, और शायद इससे भी कुछ पहले से ही, क्रोट एक सुंदर और अच्छी सम्यता का केंद्र था, जो सभी टापुओं और सारे यूनान में फैली हुई थी। इन लोगों के नाम का तो अभी तक पता नहीं चला है, परं फिर भी इतना ज्ञात है कि ये लोग उस समय भी पश्चिया माहनर और मिस्र के साथ व्यापार आदि करते थे। क्रोट में भी कहुँ स्थानों पर और उसके आस-पास भी अनेक स्थानों पर उन अद्भुत राजमहलों के खँडहर पाए गए हैं, जो उन लोगों ने बनाए थे; और साथ ही उन खँडहरों में अनेक प्रकार के बहुत सुंदर मिट्टी के बरतन, कमरे आदि सजाने के सामान, हथियार, गहने और पश्यर पर की हुई नक्काशियाँ आदि मिलती हैं। वे लोग सुख्यतः काँसे का ही व्यवहार करते थे। हमें पता चलता है कि उन लोगों ने सम्य जीवन की बहुत-सी कलाओं और शिष्यों आदि का बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। किनीशिया के व्यापारी तथा स्वर्ण उनके यहाँ के व्यापारी भी मिस्र और पश्चिया तक से उनके लिये तरह-तरह की चीज़ों खाता करते थे, और उन चीज़ों को देख-देखकर वे लोग अपने व्यवहार के लिये वैसी ही चीज़ें तैयार करते थे। यह सम्यता आजकल साधारणतः मिनोस्सन सम्यता कहलाती है। यह नाम राजा मिनोस के नाम पर रखा गया है, और प्राचीन कथानकों के अनुसार मिनोस प्राचीन काल के क्रोट के एक राजा का नाम था। इन लोगों के प्राचीन

नगरों के सँझहरों में जो वची-सुखी चीज़ों मिलती हैं, उनके आधार पर जो कुछ कहा जा सकता है, वह तो यहाँ कह ही दिया गया है। पर इसके अतिरिक्त इनके संबंध में निश्चित रूप से और कोई बात नहीं बतलाई जा सकती, और न यही कहा जा सकता है कि ये लोग किस प्रकार जीवन-निवाह करते थे। हाँ, यूनान के सुप्रसिद्ध अंध कवि होमर।की कविताओं में (जो संभवतः ३०० पू० ८०० में लिखी गई थी) कहाँ-कहाँ इस विषय का कुछ वर्णन अवश्य मिलता है कि उन लोगों की रहन-सहन कैसी थी।

३०० पू० १३०० और १००० के मध्य में यह मिलोचन सम्भवता पहले सो क्लीट में और तब अंत में हेलास में भी नष्ट हो गई। इस सम्भवता का नाश उन आक्रमणकारियों ने किया था, जो उत्तर की ओर से आए थे। ये लोग स्थल के मार्ग से भी आए थे, और जल के मार्ग से भी। और, आते ही सारे हेलास तथा उसके पास-पास के टापुओं में विज्ञकुल भर गए थे। ये आक्रमणकारी वही यूनानी थे; और अब हम आगे उन्हीं के उत्तराधिकारियों के संबंध की कुछ बातें बतलायेंगे।

हम लोग इस बात का केवल अनुमान ही कर सकते हैं कि यूनानी लोग वहाँ किस प्रकार आए, क्योंकि इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। पुगाने कथानकों में हमें दो विषय, आयोनियन और आयोलियन आदि कहे भिज्ञ-भिज्ञ दलों या वर्गों आदि के नाम मिलते हैं। जिस समय से इन सब दलों या वर्गों का एक समिपक्षित नाम 'यूनानी' पड़ा है, उस समय इस जाति के सब लोग रूप-रंग और गुण आदि में भी एक समान न थे। इन सब बातों में उनमें परस्पर बहुत भेद थे। पृथीनियन लोग कुर्ताके और चाकाके मिठभावी और गंभीर थे, बोयोशियावाले सुस्त और नासमझ थे और

आरकेडियन लोग बोदे तथा अक्षत । पर यह बात निश्चित है कि यूनानियों के सभी वर्ग मूलतः एक ही थे, और सब एक ही वंश की भिज्ज-भिज्ज शाखाएँ थे । वे सभी अपने को हेलेनीस कहते थे । यद्यपि उन सब वर्गों के बोलने के दंग अक्षग-अख्लग थे, पर फिर भी वे सब एक ही भाषा बोलते थे । बहुत संभव है, तीन-चार शताब्दियों तक यूनानी जाति की भिज्ज-भिज्ज शाखाएँ उत्तर की ओर से आ-आकर सारे हेलेनास में बसती गई हों । पर यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि सबसे अंत में आनेवाली उनकी शाखा ढोरियनों की थी । जब यूनानियों का कोई नया वर्ग या नई शाखा कहीं आकर बसना चाहती थी, तब वह उस स्थान पर पहले से बसे हुए दर्गं या शाखा को वहाँ से भगा देती थी । ऐसे वर्गों के बहुत-से लोगों ने पट्टिका-नामक प्रांत में जाकर शरण ली थी । और, वहाँ के मैदान में जो लोग पहले से बसते थे, उन्होंने ये यूनानी भी जाकर मिल गए थे, और अंत में इन्होंने वहाँ के उन मूल-निवासियों पर अपना प्रभुत्व भी जमा किया था । पहले से आए हुए जो और यूनानी थे, उनमें से कुछ लोग समुद्र पार करके इयूरिया, आस-पास के दूसरे टापुओं तथा पश्चिया माहान में भी चले गए थे, और वहाँ वे मिलेटस, फोकेइया और क्लेजोमेनाई आदि स्थानों में बस गए थे । इस प्रकार जितने यूनानियों ने भाग-कर और दूसरे स्थानों में जाकर शरण ली थी, वे सब अपने को आयोनियन कहते थे । ढोरियन लोग प्रायः पेलोपोजीज में ही बसे थे, और आरगोस, स्पार्टा, कोरिंथ, मेगारा और सिसिगन आदि उनके प्रधान नगर बन गए । कोरिंथियन की खाड़ी के दक्षिण में पक्किस, आरकेडिया तथा अकेइया आदि स्थानों और उक्त खाड़ी के उत्तर में खोकरिस, फोकिस और बोयोशिया-नामक स्थानों में जो लोग बसे थे, वे आयोजियन कहताते हैं ।

यूनानी वर्गों के इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटने-बढ़ने और किसी स्थान पर निश्चित रूप से जमकर बसने का अंत ई० १० १००० के लगभग हो गया होगा । उसी समय से सब यूनानी लोग अपने-अपने स्थान पर स्थायी रूप से बस गए थे । पर कभी किसी एक शासन-प्रणाली की अधीनता में उनका कोई एक राष्ट्र नहीं बना । लोरियन लोग सदा आयोनियों को घृणा की दृष्टि से देखा करते थे । यूनानियों की भिज्ञ-भिज्ञ बस्तियाँ भी आपस में जड़ने-भिज्जने के लिये सदा तैयार रहा करती थीं । पर फिर भी जो लोग यूनानी नहीं थे, उन्हें यूनानियों की सभी शास्त्रार्थ चहूत ही तुच्छ समझती और घृणा की दृष्टि से देखती थीं । यदि किसी वर्ष शत्रु से उन्हें अपने किसी प्रकार के अनिष्ट आदि को आशंका होती थी, तो वे सब आपस में मिलकर उसका सुक्रांता करने के लिये भी तैयार रहते थे । पर साथ ही कहूं वार ऐसा भी हुआ है कि एक वर्ग स्वयं अपने जाभ के विचार से अपने साथियों और सजातियों को घोका देकर किसी विदेशी आक्रमण-कारी के साथ भी मिल गया है । यद्यपि वे लोग आपस में एक दूसरे को भाई-बंद ही समझते थे, तो भी वे आपस में किसी के साथ स्थायी और दृढ़ रूप से मेल नहीं करते थे । वे लोग कभी किसी बड़े राज्य या साम्राज्य के अंगों या सदस्यों के रूप में नहीं रहना चाहते थे । वे अपने छोटे-छोटे नगर-राज्यों में ही रहना अच्छा समझते थे । प्रत्येक नगर-राज्य के केंद्र में एक बड़ा नगर होता था, और उसके चारों ओर कहूं छोटे-छोटे क़स्बे और गाँव होते थे । वे लोग ऐसे ढंग से रहना पसंद करते थे, जिसमें इरपुक आदमी प्रत्यक्ष रूप से यह जान सके कि हम पर कौन-कौन लोग शासन करते हैं, और किस प्रकार का व्यवहार करते हैं । कोई आदमी केंद्र से बहुत दूर नहीं रहना चाहता था । प्रत्येक नगर-राज्य अपने शासन आदि के

सब काम स्वयं ही करता और किसी दूसरे को अपने कामों में बदलक नहीं देने देता था। जब कभी किसी नगर-राज्य के कुछ लोग कई विदेश में या समुद्र-पार चले जाते थे, और किसी दूसरी जगह अपना नया यूनानी नगर बसा लेते थे, तब भी उनका यह नया उपनिवेश तुरंत ही अपनी एक नई सरकार बना लेता था, और उसी से अपने सब शासन-कार्य चलाता था। एक नवीन यूनानी उपनिवेश सदा एक नया स्वतंत्र नगर-राज्य बन जाता था, और उस नगर का अधीनस्थ नहीं होता था, जिस नगर से वह उपनिवेश बसानेवाले लोग आप थे।

संयोग से भौगोलिक दृष्टि से भी यूनान एक ऐसा देश है, जिसमें इस प्रकार की स्थानिक स्वतंत्रता का भज्जी भाँति निर्वाह हो सकता है। यूनान के तट पर प्रायः सभी स्थानों में समुद्र की छोटी-छोटी खाड़ियाँ हैं, जो स्थल के अंदर बहुत दूर तक चली गई हैं, जिससे उस देश के बहुत-से विभाग हो गए हैं। इसके अतिरिक्त वह देश कोरिंथ के भूडमरुमध्य पर बीच से प्रायः आधा-आधा कटा हुआ भी है, और वहाँ चारों तरफ ऐसे पहाड़ हैं, जो हरएक तराई या मैदान को दूसरी तराई या मैदान से बिज़कुल अलग रखते हैं। ऐसे देश में लोगों को स्वभावतः छोटे-छोटे दलों में रहना पड़ता है। और, इन अलग-अलग दलों के लिये आपस में एक दूसरे को अच्छी तरह जानना या एक दूसरे के साथ मिलकर काम करना बहुत ही कठिन होता है। वहाँ की ज़मीन भी पथरीकी है, जिसमें बहुत ही योद्धी चीज़ें पैदा हो सकती हैं। इन्हाँस के यूनानी लोग अनाज, शराब, जैतून और मक्की से ही अपना निर्वाह करते थे, मांस बहुत ही कम जाते थे। वे लोग या तो दूसरे देशों पर विजय प्राप्त करके या उनके साथ व्यापार करके ही धनवान् हो सकते थे। और, यदि वे व्यापार करना चाहते, तो उनका व्यापार

समुद्र के मार्ग से ही हो सकता था, क्योंकि यूनान की सड़कें पहाड़ी और ऊबड़-खाली हैं।

जब यूनानी लोग अच्छी तरह जमकर बस गए, और उनके नगर उज्ज्ञत हो गए, तब वे लोग भूमध्य के अन्यान्य भागों में अपने नवीन नगर या उपनिवेश स्थापित करने के लिये अपने यहाँ से आदिमियों को भेजने लगे। जिस स्थान पर उन्हें अच्छा बंदरगाह और खाली जगह मिलती थी, उस स्थान पर वे अपना एक नया नगर-राज्य स्थापित करके बस जाते थे। कभी-कभी कोई नगर स्वयं भी ऐसे लोगों को दूसरे स्थानों पर नगर-राज्य स्थापित करने के लिये भेजता था, और तब वह नया उपनिवेश अपने पुराने नगर-राज्य के साथ व्यापार आदि करके यूनानी व्यापार बढ़ाता और फैलाता था। कभी-कभी ऐसा होता था कि किसी कारण से कुछ नगर-निवासी मिलकर अपना पुक दल बना लेते थे, और किसी नए अच्छे स्थान की तलाश में निकल पड़ते थे। लोगों को इस प्रकार दूसरे स्थानों पर भेजकर उपनिवेश स्थापित करने की यह क्रिया है० पू० ७२० के लगभग आरंभ हुई थी, और ग्रामः दो सौ वर्षों तक होती रही थी। यहाँ हम इस प्रकार के कुछ उपनिवेशों के नाम भी दे देते हैं। सिस्की में सायराक्यून और सेलिनस, इटली में टेरेंटम और रहोल्स का टापू (जिसमें दोरियन लोग आकर बसे थे), सिस्की में कियोंटिनी, एशिया माइनर में आयोनियन लोगों के बसाए हुए एबीडोस और लैंपसैकस (जो कृष्ण सागर के पास थे) तथा इटली में आयोसियन्स लोगों के बसाए हुए कोटन और साइबरिस। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि ये नए बसे हुए नगर या उपनिवेश उन नगरों की ओरेशा भी कहीं अधिक मंपत्त और विस्तृत हो जाते थे, जिन नगरों के निवासी आकर उन्हें बसाते थे। तब ये नए नगर अपने आदिमियों को और भी नए नगर

या उपनिवेश आदि स्थापित करने के लिये बाहर मेजरते थे । इस प्रकार यूनानी खोग पूर्वी भूमध्यसागर के समस्त तटों और टापुओं पर फैल गए थे । पूर्व की ओर उनका विस्तार कृष्ण सागर तक और परिचम की ओर सिसली तक हो गया था (फोकेह्या के यूनानी तो परिचम में सिसली से और भी आगे निकल गए थे । उन्होंने दक्षिणी क्रांति में मस्तिश्या-नामक एक नगर और कारसिका में भी एक क्रस्या बसाया था) । यथापि, जैसा हम पहले कह चुके हैं, प्रत्येक नगर सबसे अलग और विकल्प स्वतंत्रता-पूर्वक रहता रथा अपना शासन आदि सबसे स्वतंत्र रखता था, तो भी उस नगर के निवासी अन्य यूनानियों के नगरों के साथ व्यापार आदि करते थे, और इतना अवश्य जानते थे कि हम सब खोगों की सभ्यता एक ही है । इसके सिवा सब यूनानियों की भाषा भी एक ही होती थी । यूनानियों के नगर चाहे जहाँ हों, पर वे सब बातों में यूनानी ही होते थे । समस्त यूनानी स्थानों और नगरों आदि का केंद्र सदा स्वयं हेल्लास ही होता था । यूनानी सभ्यता की आत्मा सदा यहीं रहती थी, और यूनानी इतिहास की प्रायः सभी मुख्य-मुख्य घटनाएँ या तो हेल्लास में हुई थीं या हेल्लास के नगरों—विशेषतः स्पार्टा तथा प्यर्थेस—से सबंध रखती थीं ।

पहले आरगोस ही मुख्य डोरियन नगर था । पर उसका वैभव बहुत पहले ही नष्ट हो चुका था, और तब स्पार्टा ने सबसे ऊँचा स्थान ग्रहण किया था । उसने अपनी यह शक्ति आप-पास के निवासियों पर निर्भावता-पूर्ण आक्रमण करके प्राप्त की थी । यह नगर पेलोपोनीज के दक्षिण-पूर्वी भाग में, लेकोनिया में, था । उसके ठीक परिचम में, टेगेट्स पवंत के उस पार, मेस्सेनियन खोग रहते थे । वे भी यूनानी जाति के ही थे । लेकोनिया की अपेक्षा मेस्सेनिया अधिक संपन्न और उपजाह देश था,

इसलिये स्पार्टावाले उससे हृष्यां करते थे। इसलिये उन लोगों ने मेस्सेनियावालों के साथ व्यर्थ का एक नगदा खड़ा कर दिया, और उन पर आक्रमण करके तथा उनके साथ बहुत भीषण युद्ध करके उन्हें जीत लिया। सारी मेस्सेनियन जाति गुलाम बना ली गई, और उसे सैकड़ों वर्षों तक गुलामी करनी पड़ी। उन लोगों के साथ सदा बहुत ही कठोर व्यवहार होता था, और वे लोग सदा असंतुष्ट रहते थे, इसलिये स्पार्टावाले उन पर सदा बल-पूर्वक ही अपना अधिकार रखते थे। स्पार्टावाले बल-प्रयोग करने में चिढ़हस्त भी थे। पहले उनका नगर कला, साहित्य और व्यापार का केंद्र था; वहाँ बहुत कुछ धन-संपत्ति थी, उसके निवासी अनेक प्रकार के सुखों का भोग करते थे, पर इ० ५० ६०० के बाद से वे लोग इन सब बातों से बृशा करने लग गए थे, और उन्होंने अपना लोकन-क्रम विकल्प बदल दिया था। उन्होंने संस्कृति और सुख-भोग आदि का परिवार कर दिया, और विदेशियों को अपने यहाँ से निकाल बाहर किया, जिससे उनके व्यापार का प्रायः अंत-सा हो गया। इसके बाद स्पार्टावाले अपना शुद्ध सैनिक राष्ट्र बनाने का प्रयत्न करने लगे। स्पार्टा के प्रत्येक पुरुष को आरंभ से ही केवल योद्धा बनने की शिक्षा दी जाने जागी, और अब उनका उद्देश्य सैनिक बनने के सिवा और कुछ रह ही न गया। प्रत्येक बालक को योद्धा बनने की ही शिक्षा दी जाती थी, और वह बड़ा होने पर योद्धा होने के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता था। जो ही बड़के सात वर्ष के होते थे, वहाँ ही वे अपनी माताओं से अलग कर दिए जाते थे, और राज्य द्वारा नियुक्त शिक्षकों के सिपुर्द कर दिए जाते थे, जो उन्हें सैनिक शिक्षा देना आरंभ कर देते थे। उन्हें प्रायः अनेक प्रकार के व्यायाम कराए जाते थे,

और तैरना तथा शस्त्रों आदि का उपयोग करना सिखवाया जाता था। उन्हें बलवान् और परिश्रमी बनाने में कोई वाल ठाठा नहीं रखती जाती थी। योरप में अब तक स्पार्टावालों की व्यवस्था और मर्यादा आदि बहुत प्रसिद्ध है, जिसका अर्थ कठोर परिश्रम करने और बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सहने की शक्ति है। जो वच्चे दुर्बल होते थे, वे जे जाकर ट्रेनिंग पर्वत पर छोड़ दिए जाते थे, वहाँ वे किसी प्रकार की देख-रेख न होने के कारण मर जाते थे। स्पार्टावालों के जितने आवश्यक काम होते थे, वे सब जौकोनियावालों को करने पड़ते थे, जो स्पार्टा के नहीं होते थे। इसके अतिरिक्त उन लोगों के पास बहुत-से गुलाम भी होते थे, जिनमें से अधिकांश मेस्मेनिया के निवासी और वे पहले के निवासी होते थे, जिन्हें स्पार्टावालों ने बल-पूर्वक जीता था। लड़कों और मर्दों के जो व्यायाम आदि होते थे, उनमें औरतें और लड़कियाँ भी शामिल होती थीं। औरतों और लड़कियों का आदर केवल इसी विचार से होता था कि वे माताएँ बनकर स्पार्टा के सैनिक और योद्धाओं को जन्म देंगी। सब व्यस्त पुरुष नियम पृक्ष सैथ मिळकर पृक्ष ही स्थान पर भोजन करते थे।

आगे चलकर स्पार्टा के निवासी वह समझने लग गए थे कि हमारे यहाँ ये नियम आदि विज्ञकुल आर्थिक काल से ही चले आ रहे हैं, और ये नियम बाह्यकरण-नामक पृक्ष बहुत बड़े शास्त्रकार के बनाए हुए हैं। पर फिर भी इस बात में कोई संदेह नहीं कि प्रायः हूँ० पू० ५६० तक स्पार्टावाले अनेक प्रकार के खेल-तमाशों और मनोविज्ञोद आदि में लगे रहते थे, और बहुत कुछ शौकीनी भी करते थे। पर उस समय उन लोगों में जो बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ, उससे स्पार्टावाले ऐसे सैनिक बन गए, जो सदा युद्ध आदि के लिये विज्ञकुल तैयार रहते थे। स्पार्टावाले संख्या में कुछ बहुत

अधिक नहीं थे, और उनकी सेनाओं में लोकोनियन लोग भी होते थे, जो वस्तुतः स्पार्टा के निवासी नहीं थे। इसके सिवा विशेष आवश्यकता होने पर गुज्जाम भी सेना में भरती कर लिए जाते थे। पर सेना के मुख्य सैनिक और कार्यकर्ता स्पार्टावाले ही होते थे, और उन्हीं को नागरिकता के भी सब अधिकार प्राप्त होते थे।

स्पार्टावाले देखने में सुंदर नहीं होते थे। पर वे लोग परिश्रमी, कम-समझ और भीषण या निर्दंष होते थे। केवल स्पार्टा के हितों और स्वार्थ के विचार से वे लोग प्रायः बहुत ही नीच और धोकेवाजी के काम भी कर ढालते थे, और ऐसे कामों से दूर रहते थे, जो समस्त यूनानी जाति के लिये हितकर होते थे। पर इसमें संदेह नहीं कि युद्ध-विद्या में वे बहुत ही निपुण होते थे। वे कलाओं और शौकीनी की बातों से धृणा करते थे। वे बहुत ही परिश्रमी होते थे, और केवल अपने राज्य की सेवा के लिये ही सब कुछ करते थे। उन्हें अपने मित्रभाषी होने का बहुत अभिमान होता था, और जो लोग बहुत अधिक बातें करते थे, उनका वे लोग विश्वास नहीं करते थे। स्पार्टा के प्राचीन देश लोकोनिया के नाम पर ही आँगरेज़ी में एक शब्द बन गया है लोकोनिक, जिसका अर्थ होता है बहुत ही कम बोलना। वे उस प्रकार की शिक्षा नहीं पर्सद करते थे, जो आदमियों को बहुत चालाक बना देती है। स्पार्टा में बहुत ही थोड़े ऐसे आदमी हुए थे, जिन्होंने अपने मस्तिष्क या बुद्धि के बल से प्रसिद्धि प्राप्त की हो। मूर्ति-निर्माण और वास्तु कला में दोरियन लोगों ने बहुत अच्छे-अच्छे काम किए थे, उनमें स्पार्टावालों का कोई हाथ नहीं था। इसके अतिरिक्त स्पार्टावालों में बुद्धिमान् सैनिक भी बहुत ही थोड़े हुए थे। वहाँ सब लोगों को इतनी अधिक सैनिक शिक्षा दी जाती थी कि उनकी मानसिक शक्ति बहुत कुछ मर जाती थी। पर हाँ, वे लोग लड़ने-भिड़ने में बहुत तेज़ और साइसी होते

थे, और फ्रूट जमकर लबड़ते थे। जिन दिनों स्पार्टा की सेना अपनी उच्चति के सर्वोच्च शिखर पर थी, उन दिनों उसे कोइँ जीत नहीं सकता था। स्पार्टा के सैनिक युद्ध-चेत्र में या तो विजय प्राप्त करते थे या वहीं कट मरते थे। उनका क्वीते-जी हारकर पीछे हटना असंभव था।

सेरोनिक की खाड़ी के उस पार, आरगोजिस के उत्तर-पूर्व में, पट्टिका था, जहाँ एक दोगुली जाति के लोग रहते थे, जो मुख्यतः आयोनियावालों की संतान थे। वे सदा अपने को आयोनियावाले यूनानियों का विरमौर समझते थे। वे ज्ञोग पहले अपने छोटे-छोटे बच्चों में रहा करते थे, और प्रत्येक कस्बे का एक अलग राजा हुआ करता था। पर इसके बाद बहुत जल्दी ही पट्टिका का मैदान एवं सवालों की अधीनता में चला गया, और इस बात का पता नहीं चलता कि यह बात कैसे हुई। पट्टिका एक बहुत बड़ी चट्टान के नीचे है, जिसे एकोपोजिस कहते हैं। यह स्थान समुद्र से पाँच मील की दूरी पर है, जहाँ पिरेह्यस नाम का एक अच्छा बंदरगाह है। आगे चलकर एवं सवालों समुद्र के मार्ग से दूर-दूर तक जाकर व्यापार करने लगे। उनके यहाँ जैतून बहुत होता था, और वे उसी का तेल लेकर बाहर बेचने जाया करते थे। पहले उन लोगों का शासन सरदार लोग करते थे, जो अपने पास बहुत-से घुड़सवार रखते थे। ये घुड़सवार ही उनकी सेना के मुख्य थीं ग होते थे। पर आगे चलकर उनके यहाँ बहुत बड़े शब्दों से सुनचित पैदल सैनिक भी होने लगे, जिन्हें वे ज्ञोग 'होपलाइट' कहते थे। अब इस प्रकार के सैनिकों का आदर बहुत बढ़ने लगा, और घुड़सवारों का महस्व धीरे-धीरे कम होने लगा। उस समय उनके यहाँ एक नियम यह भी बन गया कि राज्य की आज्ञा पाते ही एवं स के प्रत्येक नागरिक को या तो सैनिक के रूप में या नाविक के रूप में काम करना पड़ेगा। इस प्रकार राज्य के लिये साधारण नागरिक अधिक महस्व के हो गए, और तब लोगों

के मन में यह प्रश्न उत्पन्न होने लगा कि ऐसी अवस्था में जब कि युद्ध-काल में प्रत्येक व्यक्ति सैनिक सेवा करने के लिये बाध्य है, तो फिर शांति काल में प्राचीन वंशों के थोड़े-से आदमियों के हाथ में ही सारी शक्ति और सारे अधिकार क्यों रहें?

पता चलता है कि सरदारों शादि के प्रति इन्धर्यों का यह भाव एक ही समय में बहुत-से यूनानी नगरों के निवासियों के मन में एक साथ ही उत्पन्न हो गया था। सभी नगर दिन-पर-दिन विशेष संघर्ष होते जाते थे। जिन व्यापारियों ने यह सारा धन कमाया था, जब वे भी अपने नगर के शासन-कार्यों में सम्मिलित होना चाहते थे। जहाँ-जहाँ सरदारों ने समझदारी से काम लिया, वहाँ-वहाँ तो सब बातें बहुत सहज में और शांति-पूर्वक तय हो गईं, और पहले की अपेक्षा जन साधारण को शासन-कार्यों में अधिक सम्मिलित होने का अवसर मिलने लगा। पर बहुत-से स्थानों में ऐसा भी हुआ कि सरदार लोग अपनी शक्ति अपने ही हाथ में रखने के लिये बढ़ गए। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग असंतुष्ट होकर विद्रोह और उपद्रव करने लगे। तथा सरदारों और उनके आदमियों के साथ जन साधारण के युद्ध होने लगे। ऐसी अवस्था में दोनों ही पक्षों में चतुर और शक्तिशाली व्यक्तियों को बहुत अच्छा अवसर मिलने लगा, और वे किसी एक दल का पक्ष लेकर अपना प्रभुत्व स्थापित करने लगे। यदि ऐसे आदमी अपने प्रयत्न में सफल हो जाते, तो वह बाकी सभी लोगों पर सहज में अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर ले रहे थे। उस समय वे लोग यूनानी भाषा में टायरेंट कहानाने लगते थे। आजकल ऑरेज़ी-भाषा में इस शब्द का अर्थ है अत्याचारी। पर प्राचीन काल में यूनानी शब्द का ऐसा हुआ अर्थ नहीं होता था। और, ऐसे लोग जब तक अपनी शक्ति, धन या चाकाकी से अपना पद और मर्यादा बनाए रख सकते थे, तब तक बनाए रखते थे।

इस प्रकार की घटनाएँ बहुत-से यूनानी नगरों में हुई थीं। इसीलिये इ० प० ३०० से ५०० तक का काल यूनानियों में टायरेंटों का युग कहलाता है। कोरिंथ, सीसियन, मेगारा, प्येंस तथा बहुत-से यूनानी टापुओं और उपनिवेशों में ऐसे लोग उठ खड़े हुए थे, पर स्पार्टा में कभी कोई ऐसा आदमी नहीं जिकला। उन दिनों भी स्पार्टा में राज-शासन-प्रणाली ही प्रचलित रही, जिसमें दो राजा मिलकर राज्य करते थे, और जिनकी सहायता के लिये ज्येष्ठों की पूजा कार्यसिल थी। इसके बाद से यूनानी लोग टायरेंट के नाम तक से धूणा करने लगे (और शायद तभी से इस शब्द का तुरे अर्थ में व्यवहार भी होने लगा)। यह बात सोचकर उनके मन में बहुत ही ग़ानि उत्पन्न होती थी कि इस लोग यूनानी होकर किसी एक आदमी का शासन सहन करें, और इसे उससे यह पूछने का भी अवसर न मिले कि तुमने यह काम क्यों किया, और वह काम क्यों नहीं किया। यद्यपि टायरेंट लोग केवल अपनी शक्ति और बल के हारा ही लोगों पर शासन करते थे, तो भी उनमें से कई लोग ऐसे भी हुए, जो अच्छी तरह शासन करते थे, और जिन्होंने अपने नगरों का बल बहुत कुछ बढ़ाया था, और कजाकियों, विचारशीलों तथा लेखकों का बहुत कुछ उत्साह बढ़ाया था। साथ ही उनमें कुछ लोग ऐसे भी होते थे, जो लोगों के साथ निर्देशता-पूर्ण और कठोर व्यवहार भी करते थे। सुप्रसिद्ध हतिहास-लेखक हेरोडोटस ने एक स्थान पर लिखा है—“टायरेंट लोगों ने पूर्वजों के समय से चली आई हुई प्रथाओं में बहुत कुछ हेर-फेर कर दिया है, और वे लोग पर-स्त्रियों के साथ बब-पूर्वक अनाचार करते हैं, और विना मुकदमा चलाए या विचार किए लोगों को मरवा दाकते हैं।”

प्येंस में इ० प० ५६० के लगभग पिस्ट्रोटस-नामक एक व्यक्ति इसी प्रकार टायरेंट बना था। उसने पृष्ठिका में जैतून के बहुत-से

नप-नप कुछ लगवाए थे, बहुत-से मंदिर बनवाए थे, दो नप बड़े-बड़े त्वौहार चलाए थे, होमर की कविताएँ लिखवाई थीं, और बहुत-से कवियों और कारीगरों को अपने यहाँ स्थान दिया था। पर यदि कोई परम स्वतंत्र व्यक्ति स्वयं चाहे कितना ही अधिक उत्तम शासन कर्यों न करे, पर वह निश्चित रूप से यह बात कभी नहीं कह सकता कि उसके बाद जो लोग उसके स्थान पर आएंगे, वे भी स्वयं उसी के समान अच्छे शासक होंगे। धोरे-धोरे टायरेंटों का अस्याचार सभो स्थानों पर बहुत बढ़ने लगा, और बड़ते-बड़ते इतना असदा हो गया कि वे लोग सभी नगरों से निकाल दिए गए। प्रैर्थ्यस से पिसिस्ट्रे टस के दो लड़के हिप्पारक्स और हिप्पियास भी इसी तरह निकाल बाहर किए गए थे। बल्कि पहला लड़का हिप्पारक्स तो दै० ८० २१४ में मार ही ढाका गया था, और उसके थोड़े ही दिनों बाद दूसरा लड़का हिप्पियास नगर से निर्वासित कर दिया गया था।

इन सब बातों का परिणाम यहाँ हुआ कि अब यूनानी लोगों ने निश्चित कर लिया कि हम लोग अपने यहाँ न तो किसी एक आदमी का ही शासन रहने देंगे, और न योड़े-से आदमियों का ही। अब सब नगरों में प्रबातंत्र स्थापित होने लगे। अब उन लोगों ने यह निश्चय कर लिया कि आगे से नागरिकों द्वारा निर्वाचित लोग ही हमारा शासन करेंगे; क्योंकि यदि ऐसे लोग शासन-कार्यों में कोई दोष या भूल कर बैठते, तो उसके लिये उनसे जबाब भी तलब किया जा सकता था। यहाँ तक कि स्पार्टा में भी, यहाँ कभी कोई टायरेंट नहीं हुआ था, नप मजिस्ट्रेट नियुक्त करके दोनों राजों के अधिकार पहले से बहुत कुछ बढ़ा दिए गए। इन मजिस्ट्रेटों का निर्वाचन जनता की सभा में होता था, और आगे चलकर स्पार्टा के राज्य में यही मजिस्ट्रेट लोग सबसे अधिक शक्तिशाली हो गए थे।

इन सब परिवर्तनों का परिणाम यह हुआ कि पक्ष से सभी

नागरिकों की स्वतंत्रता बहुत बड़ी गई, और यूनानियों को स्वेच्छा-चार-पूर्ण प्रक्तंत्रों शासन से छुटकारा मिल गया। पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि लोगों को स्वतंत्रता तो मिल जाती है, पर वे उसका ठीक-ठीक उपयोग करना नहीं जाते। यूनानी नगरों के संघर्ष में भी ऐसा ही हुआ, और उन्होंने इस स्वतंत्रता का बुरी तरह से उपयोग किया। नागरिक लोग जिन्हें शासन करने के लिये चुनते थे, वे प्रायः अच्छे आदमी नहीं होते थे। उनमें दक्षबंदियाँ होने लगीं, और प्रत्येक दक्ष दूसरे दबों को दबाकर और उनकी ढानि करके स्वयं अपना हित और जाम करने का प्रयत्न करने लगा। प्रायः ये दक्ष आपस में बहुत अधिक दौष और वैर-भाव रखते और अनेक अवसरों पर आपस में लड़ भी पड़ते थे। यूनानी नगरों में यह दबावंदी और इसके कारण होनेवाला पारस्परिक राग-दौष बहुत हो जुरा और इनिकारक होता था, और इसका भी वैता ही जुरा परिणाम होता था, जैसा समस्त यूनान के नगरों का पारस्परिक दौष और वैर-भाव। हम कह सकते हैं कि यूनानियों ने प्रजातंत्र-शासन का एक ऐसा प्रयोग किया था, जिससे उसके गुण और दौष बहुत कुछ समझे जा सकते थे, और अंत में उन्हें इस प्रयोग से विफलता ही हुई थी। उसके इस उदाहरण से वे लोग (जैसे धैर्यरेखा लोग) बहुत कुछ सचेत हो सकते हैं, को यह समझते हैं कि किसी शासन-प्रणाली के ठाक और उपयुक्त होने की सबसे बड़ी पहचान यह है कि उसके नागरिकों को पूरी स्वतंत्रता प्राप्त हो।

पृथ्वेस में वह प्रबातंत्र-शासन-प्रणाली विशेष रूप से प्रचलित हुई थी। उस नगर की प्रसेवनी या सभा के लिये सदृश्य चुनने पौर उनाव में मत देने का अधिकार पृथ्वेस के प्रत्येक नागरिक को दिया गया था। उस उनाव में बहुत-से लोग चुन

लिए जाते थे, जो बारी-बारी से कौसिल के सदस्य होकर काम करते थे। प्रसेवकों जो कुछ निश्चय करती थी, उसके अनुसार काम करने का मार इसी कौसिल पर था, और न्यायालयों में भी इसी कौसिल के सदस्य वृत्तियों की भाँति बैठकर न्याय करते थे। कुछ आगे चलकर पेरिक्लीज ने यह प्रथा खड़ाइ कि कौसिल के सदस्यों और अवृत्तियों को कुछ निश्चित वेतन दिया जाया करे, जिसमें गारीब आदमी भी यह काम कर सके, और इस काम के लिये उन्हें अपना रोजगार या पेशा आदि छोड़कर हानि न उठानी पड़े। इसके अतिरिक्त गारीबों को दमन और अत्याचार आदि से बचाने के लिये इस आशय का भी एक कानून बना दिया गया था कि एयेंस का कोई नागरिक केवल अस्थी होने के कारण अपने महाजन का गुलाम न खन सकेगा। ऐ० ४० ५६४ में सोलन और ई० ४० २०८ में कलीस्पनीज-सरीखे विहानों और शाखाकारों ने इसी प्रकार के कुछ सुरुच सुधार किए थे, और उन्होंने एयेंस को पूर्ण प्रबासित्र के मार्ग पर दृढ़ता-पूर्वक आरूढ़ कर दिया था।

कुछ दिनों में एयेंस की इतनी अचिक उत्तरि हो गई कि स्पार्टनवाले उसके साथ इंध्यां करने लगे। इस इंध्यां से उन दोनों में आपस में खड़ाइ-मगाड़ा भी हो सकता था, पर अभी इस खड़ाइ-मगाड़े की नौयत इसी नहीं पहुँचने पाई थी कि एक ऐसी विपत्ति उठ सकी हुई, जो सारे यूनान के लिये समान रूप से भयावह थी। वह विपत्ति ऐसी भीषण थी कि उसका सामना करने के लिये यूनानवालों को अपनी सारी इंध्याएँ और सारे वैर-भाव ताक पर रख देने पड़े थे।

२. यूनान का उच्चति-काल

हमारे पाठक यह तो जान ही चुके हैं कि साइरस के समय में पारसपालों ने किस प्रकार असीरिया, वेबिलोनिया और लौदिया पर विजय प्राप्त की थी, और किस प्रकार अपने विशाक्ष साम्राज्य का विस्तार पूर्खम से पश्चिया को परिचमी सीमाओं तक किया था। इस समस्त राज्य में सम्पत्ति पूर्ण या पृथियाँ हैं दंग की थी, और इसको शासन-प्रणाली भी पृथियाँ हैं या पूर्ण ही थी। सारी शक्ति केवल एक आदमी के हाथ में रहती थी, जो बादशाह या शाहंशाह कहलाता था।

उस समय तक संसार में जितनी कबाएँ और जितने ज्ञान थे, जितनी संवत्ति और जितनी भोग-विलास की सामग्री थी, वह सब इसी साम्राज्य के अंतर्गत देशों में विकसित हुई थी। यदि पारस के साथ यूनान को तुलना की जाय, तो यही जान पढ़ेगा कि यूनान केवल लौटी-लौटी और आपस में छाड़ती रहनेवाली रियासतों का समूह था, साथ ही वह पारस के मुकाबले में बहुत ही दरिद्र और महत्त्व-हीन था, तथा उसने अब तक कोई ऐसा काम नहीं किया था, जो हतिहास में कोई विशेष स्थान प्राप्त कर सकता।

जिस समय साइरस परिचमी पृथिया में बराबर विजय प्राप्त कर रहा था, उस समय उसने यूनान के तट पर स्थित कई क़स्तों पर भी अधिकार करके उन्हें अपने साम्राज्य में मिला दिया था। इस प्रकार उस समय पहले पहल पारसियों और यूनानियों में, पृथियावालों और योरपवालों में संघर्ष हुआ था। जिस समय साइरस के पुत्र केंविसेस ने मिल पर विजय प्राप्त की थी, और जिस समय केंविसेस के

उत्तमाधिकारी दारा ने प्रेस को अपने अधिकार में किया था, उस समय ऐसा ज्ञान पड़ने लगा था कि पारस्वाले अपनी शक्ति परिचम की ओर बढ़ाते चले जा रहे हैं, और बहुत संभव है कि शीघ्र ही हेलास पर भी उनका आक्रमण हो। फिनीशियन लोग पारस के बादशाह के परम निष्ठ मित्र थे, और उनका जहाज़ी बेड़ा सदा उसकी सेवा के लिये तैयार रहता था। यदि पारस्वाले हेलास के नगरों पर चढ़ाई करना चाहते, तो कुछ ही दिनों के अंदर वे समुद्र पार करके उन तक पहुँच सकते थे। यूनानी भी अपने मन में समझते थे कि हम पर यह विपत्ति आ सकती है। विशेषतः प्रथेंस इस विपत्ति से और भी चौकत्ता हो रहा था, क्योंकि एक तो वहाँ के निवासी समुद्र-यात्रा में बहुत निपुण थे, और दूसरे पश्चिया के बहुत-से यूनानियों के साथ उनका निवाता-पूर्ण संबंध भी था। इस प्रकार जब है० प० २०० में पश्चिया के यूनानी नगरों ने अपने पारसी स्वामियों के विरुद्ध विद्रोह ठाना, तब प्रथेंसवालों ने उनकी सहायता की थी। यद्यपि यह विद्रोह सफल नहीं हुआ, तो भी प्रथेंसवालों के इस सहायता-दान से दारा बहुत कुछ हुआ, और उसने विश्वय कर लिया कि चाहे जैसे होगा, मैं एक बड़ी सेना भेजकर हेलासवालों को और विशेषतः प्रथेंसवालों को इसका ढंड दूँगा।

इस काम के लिये उसने पहले मेसिडोनिया और येसोप पर विश्वय प्राप्त करके रास्ता साफ़ किया, और है० प० २१० में पारसियों की एक बहुत बड़ी जब तथा स्थल-सेना समुद्र-पार के देखोस होती हुई परिचम की ओर बढ़ने लगी, और अंत में मेरेषान-नामक स्थान में पहुँच गई। पारसी-सेना वही जड़ाब पर से उतरी थी, और उतरते ही उसे प्रथेंस की सेना से मुकाबला करना पड़ा। प्रथेंसवालों की सहायता के लिये एलटीबा से भी कुछ सैनिक आए थे। उस युद्ध में पारस्वाले हार गए, और मार-

कर अपने बहाज़ों पर चा पहुँचे। पारसियों का बेड़ा पृथिव्या की ओर लौट पड़ा। इसके दस वर्षे बाद दारा के उत्तराधिकारी जरकसीब ने फिर पहले से भी बड़ी जल तथा स्थल-सेना लेकर यूनानियों पर आक्रमण करने का प्रयत्न किया। वे सैनिक थेस, मेसिडोनिया और टॅपो तथा थरमापेजों के दर्ओं से होते हुए दक्षिण की ओर बढ़े। उनके साथ-साथ बहाज़ी बेड़ा भी समुद्र के किनारे-किनारे चल रहा था। आरटीमीजियम-नामक स्थान के पास यूनानियों के बेड़े ने फिर पारसियों को परास्त किया। पर चब पारसी सेना पीछे हटकर थरमापिली की ओर बढ़ने लगी, तब यूनानी बहाज़ों को भी पृष्ठिका की रक्षा के लिये दक्षिण की ओर पीछे हटाया पड़ा। सेलामिस की खाड़ी में पारसी बेड़ा पूर्ण रूप से परास्त हो गया, और पारसी स्थल-सेना पीछे हटकर थिसली में चली आई। दूसरे वर्ष यह सेना फिर दक्षिण की ओर बढ़ने लगी। पर इस बार भी वह प्लेटीया-नामक स्थान में बुरी तरह से परास्त हुई। उधर यूनानी बेड़ा भी पारसी बहाज़ों की तलाश में पूर्व की ओर बढ़ रहा था। जिस समय प्लेटीया में पारसी लोग स्थल-युद्ध में परास्त हुए, उसी समय के लोगभग सामोस-प्रदेश के माइकेल-नामक अंतरीप के सामने पारसी और यूनानी बेड़ों की भी सुठमेह हो गई। यूनानियों ने पारसियों को वहाँ से भी हराकर पीछे हटा दिया, और सामोस पर अधिकार कर लिया।

ये युद्ध इतिहास में बहुत ही प्रसिद्ध हैं, और बहुत महात्म के माने जाते हैं। इन दोनों में यूनानियों ने बहुत अधिक वीरता और रण-कौशल प्रदर्शित किया था। यद्यपि पारसी-सेना संख्या में बहुत अधिक थी, तो भी मेरायब-नामक स्थान में केवल दस हज़ार यूनानियों ने उसे बहुत बुरी तरह से परास्त करके पीछे हटाया था। उसी अवसर पर स्पार्टा के ३०० वीरों और १०००

दूसरे यूनानी योद्धाओं ने अपने से लीस-गुनी वही सेना का आक्रमण बहुत ही वीरता-पूर्वक सँभाला था, और शत्रुओं को उस दरें में हुसने से रोका था। विशेषतः यह युद्ध इतिहास में बहुत ही मार्के का माना जाता है। उसी अवसर पर एक देशद्रोही ने पारसियों को एक ऐसा मार्ग बतला दिया था, जिससे वे धूमकर दरें के उस पार पहुँच सकते और यूनानियों को चारों ओर से घेर सकते थे। लेकिन उस समय भी, शत्रुओं से चारों ओर से घेर जाने पर भी, स्पार्टावालों ने आत्मसमर्पण नहीं किया; और जब तक उनमें का एक भी योद्धा जीता रहा, तब तक वह बराबर शत्रुओं से जालता रहा। उन दिनों एथेंस-ग्रगर के चारों ओर परकोटा नहीं था। ऐसे अवसर पर पारस्वालों ने दो बार एथेंस को नष्ट करने के विचार से उस पर आक्रमण किए थे, जिनसे बचने के लिये एथेंसवालों अपना नगर छोड़कर निकल गए थे, और अपने बहाज़ों पर जा ठहरे थे। एथेंस के बोनिवासी युद्ध करने के बोझ नहीं थे, वे अपना देश छोड़कर इधर-उधर भाग गए थे। पारसी सेनापति ने दो बार एथेंसवालों से कहलाया था कि इन-इन शर्तों पर तुम हमसे संधि कर लो। पर दोनों बार एथेंसवालों ने यही बत्तर दिया था कि जब तक सूर्य अपने चर्तमान एवं पर चलता रहेगा, तब तक हम खोग कभी चरकसीज के साथ किसी प्रकार की संधि नहीं करेंगे। सेलामिस-नामक स्थान पर यूनानियों ने बहुत ही वीरता-पूर्वक जलकर पारसी बेड़े को नष्ट-ग्रहण कर डाका था। इन युद्धों से सबंध रखनेवाली इसी प्रकार की और भी अनेक घटनाएँ हैं, जो बहुत ही रोमांचकारियी हैं, और जिनका वर्णन पढ़कर आदमी फ़ड़क उठता है। यदि इन युद्धों में यूनानियों ने इतनी बहादुरी और दिलचलाई होती, और पारसी खोग उनसे इस प्रकार परास्त

न हुए होते, तो बहुत संभव था कि इम लोग आज योरप के उस अवस्था में न पाते, जिस अवस्था में इस समय वह है। योरप की वितनी सम्भवता है, वह सब यूनानी सम्भवता का ही परिणाम और विकास है; और योरपवालों ने जो कुछ सीखा है, वह सब यूनानियों से ही सीखा है। यदि इन युद्धों में यूनानी लोग हार गए होते, और पारसियों की जीत हो जाती, तो दुनिया का नक्शा कुछ और ही तरह का दिखाई देता। यही कारण है कि इन युद्धों और इनमें होनेवाली जीतों का योरपवालों को बहुत अधिक अनिमान है। यद्यपि उस समय भी यूनानियों में बहुत-से गुण थे, पर तब उन्हें उन गुणों के प्रदर्शन का अवसर नहीं मिला था। तो भी यदि उन युद्धों में वे लोग परास्त हो गए होते, तो वे सभी चीज़ों विकल्प नष्ट हो जाती, जो बाद में उनसे योरपवालों को प्राप्त हुई थीं। उस दशा में सारे योरप में पश्चियाई राजा का ही राज्य देखने में आता, योरप का इतिहास कुछ और ही तरह का हो जाता और योरप अपने वर्तमान महाद्वय से विकल्प वंचित ही रह जाता। यदि सच पूछिय, तो यूनानियों ने समस्त योरप की ओर से और उसकी रक्षा करनेवाली लड़ाइयाँ लड़ी थीं। योरप की स्वतंत्रता और सम्भवता का मुख यहीं युद्ध है, जो यूनानियों ने पश्चियावालों के सुक्रावर्षे में जीता था।

यहाँ हम इन युद्धों के कुछ और परिणामों पर भी विचार करना चाहते हैं। इन युद्धों में हार जाने से पारस की तो कोई विशेष चित नहीं हुई, पर इनमें जीत होने के कारण यूनान बन गया। इससे यूनानी लोग अपने मन में समझने लगे कि पश्चियावालों के सुक्रावर्षे में इस भी कोई चीज़ है, और इसने एक विशेष प्रकार की सम्भवता तथा संस्कृति की रक्षा की है। अब वे लोग पारसियों

से दृश्या करने लगे, और उन्हें गुजारों का राष्ट्र समझने लगे। उच्चारी समझ में यह बात आने लगी कि हमारे पास भी कोई ऐसी चीज़ है, जिसे हमें नह दोने से बचाना चाहिए। इस चीज़ को वे लोग 'हेलेनिडम' (हेलेनासपन) कहने लगे, और इसके मुकाबले में पाठसालों की सम्मता को वर्णनता समझने लगे। अपने हेलेनिडम का मतदब्द वे लोग यही समझते थे कि यह स्वतंत्रता और सम्मता का भाव है, और इसे जीवित रखना तथा विकसित करना हमारा परम कर्तव्य है। वर्णनता से उनका अभिप्राय उस प्रकार के जीवन से था, जो पूर्वी साम्राज्य में प्रचलित था।

पारसियों के साथ यूनानियों का जो युद्ध हुआ था, उसके परिणाम-स्वरूप योरप में हेलेनास एक प्रधान और पथ-प्रदर्शक नगर हो गया था। उसकी यह प्रधानता कई प्रकार की थी, जिनमें कुछ का इन यहाँ वर्णन कर देना चाहते हैं—

(१) इस युद्ध में पर्थेस को सौभाग्य से एक ऐसा नेता मिल गया था, जो यूनान का सबसे बड़ा राजनीतिज्ञ था। उसका नाम येमिस्टीक्लीज़ था। वह सदा सब बातों में बहुत ही सचत रहता था, और अपने उद्देश्य प्राप्ति: बहुत ही गुप्त रूप से सिद्ध किया करता था। जिस समय नेलामिस के पास युद्ध होने को था, उस समय उसे यह पता चला कि यूनानी लोग इस समय युद्ध नहीं करना चाहते, और उससे किसी प्रकार बचना चाहते हैं। इसलिये उसने गुप्त रूप से जहक्सोज़ के पास यह संदेशा भेजा कि यूनानी सैनिक इस समय भागना चाहते हैं, और यदि इस समय आप उन लोगों पर आक्रमण कर चैठे, तो आपका बहुत कुछ खाम हो सकता है। इस प्रकार उसने एक ऐसी चाज चली कि पारसी लोग सहसा यूनानियों पर आक्रमण करने के लिये

तैयार हो गए। वह भी यहीं चाहता था कि पारसियों का आक्रमण विज्ञाकुल सहसा हो, जिसमें उन्हें पहले से अच्छी तरह तैयार होने का अवसर न मिले; और जब वे लोग अचानक आ पहुँचेंगे, तब यूनानी लोग, जो पहले से तैयार रहेंगे, अच्छी तरह उचका सुकाबका कर सकेंगे। इसके बाद जब युद्ध हो गया, तब उसने पारसी बादशाह के पास एक दूसरा संदेश भेजा, और उसे वह परामर्श दिया कि आप बहुत जल्दी पुश्टिया की तरफ जौँ पहुँचें, क्योंकि यूनानी लोग संसुद्र के ऊपर पहुँचने की तैयारी कर रहे हैं, और वे ऐसेस्पॉट-नामक स्थान पर आपके पुल पर आक्रमण करना चाहते हैं। यद्यपि बास्तव में यह बात विज्ञाकुल झूठ थी, क्योंकि यूनानियों ने तब तक अपना कुछ भी कर्तव्य निरिखत नहीं किया था, पर फिर भी इसका परिणाम यह हुआ कि नरकसीङ्ग अपने देश की ओर बहुत जल्दी में लौट पड़ा। यद्यपि थेमिस्टोक्लीज़ ने कहूँ ऐसे काम किए थे, जो बेईमानी और धूरता के कहे बा सकते हैं, तो भी इसमें संदेह नहीं कि इन सब कामोंमें भी उसका मात्र देश-सेवा का ही होता था, और वह वे सब काम बहुत ही तुदिमता तथा दृश्य-पूर्वक करता था। यह बात पहले पहल उसी की समझ में आई थी कि जब तक यूनान के पास कोई जड़ाग़ी बेड़न होगा, तब तक वह पारस्यालों का ठीक-ठीक सुकाबका न कर सकेगा। यहीं कारण था कि जब पर्येसवालों को खारियन-नामक स्थान में चाँदी की एक नई लान मिली, और उससे उन लोगों को बहुत कुछ धन प्राप्त हुआ, तब उसने पर्येसवालों को समझ-खुमाकर वह धन लए और बड़े-बड़े लहाज़ बनाने के लिये लूट लेने पर राजी किया। पारस्यालों के आक्रमण से बचने के लिये उसी ने पर्येसवालों से पिरेव्हस के बंदरगाह में किलेबंदी कराई थी, वहाँ लहाज़ों आदि के टहरने के लिये अच्छे-अच्छे स्थान बनवाए थे,

और उनके नगर के चारों ओर परकोदा बनवाया था। इसके बाद पैथेसवालों ने अपने नगर से बंदरगाह तक, जो वहाँ से पाँच मील दूर था, रास्ते के दोनों ओर बहुत छँची और मज़बूत दीवार बनवाई थी। इस प्रकार उसने पैथेस-नगर की चारों तरफ से बहुत कुछ मज़बूती करा दी, और उसके पास ही ज़दाइँ के ज़हाज़ों के रहने के लिये बहुत अच्छा बंदरगाह बनवा दिया।

(२) इस युद्ध में यूनानियों की मुख्य विजय बल-युद्ध में हुई थी, और यूनान में सबसे बड़ा बंदरगाह और ज़हाज़ी बेड़ा पैथेस में ही था। मेलामिस में जिन यूनानी ज़हाज़ों ने युद्ध किया था, उनमें से आधे से अधिक ज़हाज़ पैथेसवालों के ही थे। बहुत से आयोनियन यूनानी भी बहुत अच्छे नाविक थे, और उनका च्यापार तभी चल सकता था, बब समुद्रों में उनके लिये किसी प्रकार की आपत्ति न होती। अतः उनके लिये यह बाहुत बहुत ही स्वाभाविक था कि वे भविष्य में पारस्वालों को दूर रखने के लिये पैथेस के नेतृत्व की ही उपेक्षा करते।

(३) इस बात में कोई संदेह नहीं है कि पारस्वालों का मुकाबला करने में पैथेसवालों ने बहुत अच्छा काम कर दिखाया था। यह ठीक है कि स्थल-युद्ध में सबसे अधिक काम स्पार्टावालों ने ही किया था, और यसमापियों तथा प्लेटिया-नामक स्थानों में वे लोग बहुत बड़ादुरी के साथ लड़े थे। पर एक तो वे लोग सब काम प्रायः बहुत बेंगे तौर पर करते थे, और दूसरे वे प्रायः अपने ही हितों का विशेष ध्यान रखते थे, और समस्त यूनान के हितों का उतना अधिक ध्यान नहीं रखते थे। विज्ञ समय मेराथन में युद्ध होने लगा था, उस समय वे लोग ठीक मौके पर नहीं पहुँचे थे, और उन्होंने कहाज़ा दिया था कि इस समय हम लोग एक स्पौहार मनाने में लगे हुए हैं। उन्होंने कोरिय के स्थल लगास-

मध्य में अच्छी किसेवंदी कर ली थी, और वह सोचा था कि वह किसेवंदो ही हमारे लिये यथेष्ट है, और अब हम लोगों को प्रटिका तथा उत्तर के यूनानियों की सहायता करने की आवश्यकता न रह जायगी। उत्तर में वे लोग प्लेटिया से आगे नहीं बढ़े थे। इसके लिये उन्होंने यह स्वार्थ-पूर्ण कारण बतलाया था कि यदि पृथेस के बेड़े ने पारसियों के हाथ आरम्भसमर्पण कर दिया, तो शत्रुओं के जहाज़ पेलोपोलीज़ तक यह आपेंगे, स्पाटां की उस दीवार की परवा न करेंगे, जो स्थग्नडमर्स्न-मध्य में है। इन सब बातों का फज्ज यह हुआ कि युद्ध हो जाने के उपरांत पृथेसवालों की कीर्ति बहुत बढ़ गई, और स्पाटांवालों की घट गई।

युद्ध के बाद यूनान में एक संघ बना था, जो डेलियन संघ कहकाता था। वह संघ इस बात का पहला लक्ष्य था कि पृथेस की मर्यादा बढ़ने लगी है। प्रायः सत्तर यूनानी नगरों ने (जिनमें पृथेस, इयूविया, सब टाप् और एशिया तथा थ्रेस के नगर सम्मिलित थे) आपस में मिलकर एक संघ बनाया, और उसमें एक शत्रु यह रखा कि सारे देश का एक सार्वजनिक बेड़ा रहेगा, और सब नगर उसके लिये जहाज़, सैनिक और धन देंगे। जो नगर बहुत शारीर होगा, और एक पूरा जहाज़ न दे सकेगा, वह उसके बदले में कुछ धन दे देगा। यह भी निश्चय हुआ था कि इस संघ का कोप डेलोस-नामक स्थान में रहेगा। पृथेस इस संघ का सबसे अधिक महात्म-पूर्ण सदस्य था। उसने सबसे ज़्यादा जहाज़ और आषमी दिए थे। सारे बेड़े का सेनापति भी पृथेस का ही निवासी था, और उसका नाम साहमन था। इसके सिवा पृथेस के ही उस अफसर सब नगरों से उचित धन आदि वसूल करते थे।

इस संघ के कारण यूनान के समस्त राज्यों को मिलकर एक होने का बहुत अच्छा अवसर मिला था। यदि यह संघ कुछ अधिक

दिनों तक बना रहता, तो यूनान का इतिहास कुछ और ही रूप घटाय कर लेता। पर इस प्रयोग में खोगों को सफलता नहीं हुई, और सफलता न होने के कारण बहुत ही स्पष्ट थे।

धीरे-धीरे नगरों की समझ में यह बात आने लगी कि जहाँ और आदमी देने में कठिनता होती है, और उसकी अपेक्षा धन वे देना सुगम है। इसका परिणाम यह हुआ कि सब खोग पूर्यस को धन ही देने लगे। बीस वर्ष के अंदर ही इस संघ का कोष ढेकोस से पूर्यस में चका आया था। पूर्यस ही सारे बेड़े के लिये अहाज़ा तैयार करता था, और वही उनमें सैनिक भी भरती करता था, तथा और आवश्यकता पड़ने पर पारसियों के मुकाबले में वही उन अहाज़ों और आदिनियों का उपयोग भी करता था। इस प्रकार धीरे-धीरे यह संघ एक साम्राज्य के रूप में परिवर्तित हो गया। पहले तो इस संघ के सब सदस्यों का एद समान रहता था, और वे बेड़े के लिये चंदा देते थे। पर अब मात्रा निम्न कोटि के नगर एक प्रधान नगर को कर देने लगे।

फिर एक बात यह भी थी कि यदि इसके सदस्य पृक-पृक करके संघ से अपना संबंध तोड़ने लगते, तो बहुत शीब्र ही यह संघ फूट जाता। इसलिये अब पूर्यसवाले अपना यह अधिकार और कठांग समझने लगे कि यदि कोई सदस्य इस संघ से अलग होना चाहे, तो उस पर आक्रमण किया जाय, और उसे संघ से संबद्ध रहने के लिये विवश किया जाय। अब पूर्यसवाले इस प्रकार किसी सदस्य पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन कर लेते थे, तब फिर वे उसे अपने प्रति निष्ठ रखने के लिये उस पर शासन भी करते थे।

एक और बात थी। यह संघ पारसवालों के आक्रमण से सारे यूनान की रक्षा करने के लिये बना था। पर कुछ राज्य ऐसे भी थे, जो इस संघ के सदस्य नहीं थे; और यच्चपि वे यूनानी बेड़े

को किसी प्रकार की सहायता नहीं देते थे, तो भी वे उससे ज्ञान तो उठाते ही थे, क्योंकि पारसियों के आक्रमण के समय उनकी रचा तो होती ही थी। इसलिये पृथेंसवाले यह भी समझने लगे कि जो राज्य इस संघ के सदस्य नहीं हैं, उन्हें भी इस संघ में सम्मिलित होने के लिये विवश करने का हमें अधिकार प्राप्त है।

पृथी अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता कि इस संघव में पृथेंसवाले जो कुछ करते थे, वह अनुचित करते थे, अथवा इसके अतिरिक्त वे और कोई उपाय भी कर सकते थे। इसमें संदेह नहीं कि पृथेंसवालों को अपने इस ढंग पद का अभिमान हो गया था। अब ऊर्ध्व-उर्ध्व उनकी शक्ति बढ़ती जाती थी, और ये ऊर्ध्व-उर्ध्व उनकी आकंक्षाएँ भी बढ़ती जाती थीं, और वे बहुत राज्यों के साथ कुछ अधिक कठोर और अनुचित व्यवहार करने लग गए थे। आगे चलकर कुछ वर्षों बाद जिस ढंग से उन्होंने माहटिलेन तथा मेलोस के साथ व्यवहार किया था, वह बहुत ही अनुचित और आपत्ति-जनक था। माहटिलेन के समस्त निवासियों को उन्होंने विद्रोह के अपराध में मार डालने को खमंकी दी थी, और मेलोस के समस्त निवासियों को तो उन्होंने करने देने के अपराध में एक सिरे से मरवा ही डाका था, और उनमें का एक आदमी भी बाकी नहीं छोड़ा था। इन सब बातों से पता चलता है कि अपने शासन-कार्यों में पृथेंसवाले कितने अधिक निर्दंय हो गए थे। साथ ही इससे यह भी पता चल जाता है कि क्यों पृथेंस के बहुत-से नगर पृथेंस से बहुत अधिक वृष्टा करने लगे थे। कुछ ही वर्षों बाद पृथेंसवालों को अपने इन अपराधों का बहुत ज़ुरी तरह से दंड भी भोगना पड़ा था। परंतु पृथेंसवालों की शासन-प्रयाकरी चाहे जैसी रही हो, इसमें संदेह नहीं कि पृथेंस के साम्राज्य का विकास डेलियन

संघ के कारण ही नहीं हुआ था; और इस संघ के कारण जो परिवर्तन हुए थे, उनमें दूसरे नगरों का भी उतना ही हाथ था, जितना एथेस का था।

चाहे जो हो, पर एथेस के प्रति हृदयों का भाव यूनान के बहुत-से नगरों के मन में उत्पन्न हो गया था। है० प० ४६६ में कोरिंथ, जिसका समुद्री व्यापार बहुत बढ़ा-चढ़ा था, और जो एथेस के साथ बहुत अधिक हृदयों करता था, एथेस के साथ भिन्न गया। पर युद्ध में वह ऊरी तरह से परास्त हुआ। जब एथेस को कोरिंथ के साथ युद्ध करने में सफलता और विजय प्राप्त हुई, तब उसने सोचा कि अब यूनिया पर भी आक्रमण करके उस पर विजय प्राप्त बर्नी चाहिए, क्योंकि उसने कोरिंथ की सहायता की थी। साथ ही उसने यह सोचा कि केवल यीव्स को छोड़कर सारे बोपशिया को एक बार अच्छी तरह दबा देना चाहिए। उन्होंने ऐसा ही किया भी। पर फिर भी असंतोष बराबर बढ़ता ही गया। एथेस को यूनान में सबसे उच्च स्थान प्राप्त करते देखकर स्पार्टा पहले से ही कुद हो रहा था; अतः जो ज्ञोग एथेस के अस्थाचारों से पीड़ित होते थे, उनकी सहायता करने के लिये स्पार्टा सदा तैयार रहता था। यूनानी राजनीति में एक बहुत बड़ा दोष यह था कि उसमें दलबंदियाँ बहुत होती थीं। बस नगरों में भी ये ही दलबंदियाँ होने लगीं। दौँचे दरबे के ज्ञोग छाटे दरबों के ज्ञोगों के विरोधी हो गए, और अमीर ज्ञोग ग़ारीबों का ग़वाकाश लाने लगे। जब इस प्रकार के दल आपस में लड़ते थे, तब कोई दब स्पार्टावालों से सहायता माँगता था और कोई एथेसवालों से। इस प्रकार यूनानियों में बहुत-से भेद और पक्ष हो गए, तथा और यूनान एक ऐसा बास्तु का झङ्घाना हो गया, जो एक दियासलाई बगते ही उड़ सकता था।

परंतु इस प्रकार का विस्फोट होने से पहले एथेंस ने अपने समय का उपयोग आश्चर्य-जनक रूप में किया था। पारसपालों के साथ यूनानियों के बो युद्ध हुए थे, उनमें एथेंसवालों की कीर्ति जितनी बड़ी थी, उतनी यूनान के और किसी नगर की नहीं बड़ी थी। युद्ध में उन्होंने बहुत अधिक कीर्ति तो अर्जित कर दी थी, और उनमें बहुत कुछ नवीन शक्ति भी आ गई थी, इसलिये जब युद्ध समाप्त हो गय, तब बाद के पचास वर्ष (३०० ई० ४०० ई० से ४२० तक) एथेंस का समय बहुत अच्छी तरह बीता। उसका यह समय उसके लिये स्वर्ण-युग कहा जा सकता है।

इस समय में, एथेंस में, जो व्यक्ति सबसे प्रधान था, उसका नाम पेरिकलीज़ था। यह समझता था कि शीघ्र ही एक ऐसा समय आयेगा, जब एथेंस एक बहुत बड़े और विस्तृत साम्राज्य का स्वामी हो जायगा, और वह सारे यूनान को सम्प्रभु के मार्ग पर जायगा। उसका मत था कि जब एथेंस स्वतंत्र रहेगा, तब वह शेष संसार को भी यह बतलाए सकेगा कि किस प्रकार स्वतंत्र रहना चाहिए। और, इस काम में समर्थ होने के लिये एथेंस को महत् पद प्राप्त बताना चाहिए। इस महत् पद का प्राप्ति के लिये उसके मत से एथेंस को निम्न-खित्ति बातों की आवश्यकता थी—

(१) एथेंस को युद्ध में सबसे बड़-चढ़कर होना चाहिए। इस काम के लिये उसने एथेंस-नगर की बहुत अच्छी क्रियेवंशी की थी, और उसके बेड़े की शक्ति बहुत बड़ा है थी। वह स्वयं कभी यह नहीं चाहता था कि एथेंस दूसरों पर चढ़ाहूँ करके आपना महसू बढ़ावे। इसीलिये जब वह मृत्यु-शश्या पर पड़ा था, और उसके मित्र उसके किए हुए कामों की प्रशंसा कर रहे थे, तब उसने कहा था—“मेरे खोबन की सबसे अच्छी और माननीय बात यह है कि कभी मेरे कारण एथेंस के किसी निवासी को शोक-ग्रस्त नहीं होना।

पुरानी दुनिया



वीर

(लिंगिप्पम की मूर्ति की प्रतिष्ठिति)

पढ़ा ।" (अर्थात् कभी उसके कारण किसी पथेंसपनवासी के प्राण नहीं गए ।) वह पहला ऐसा बड़ा राजनीतिज्ञ था, जो यह समझता था कि शांति-काल में और शांति-पूर्वक प्राप्ति की हुई विजय ही सबसे बड़ी और अच्छी होती है । साथ दी वह यह भी समझता था कि पथेंस को कभी अपनी जल तथा स्थल-सेना की ओर से उदासीन नहीं रहना चाहिए ।

(२) उसका मत था कि पथेंस को स्वयं अपने कार्यों के संचालन में भी सबसे बड़-बड़कर होना चाहिए । पथेंस के प्रजातंत्र में जो त्रियाँ थीं, उन्हें उसने दूर कर दिया था, और अपने शश्य में ऐसी परिस्थिति बढ़ाज कर दी थी कि शारीर-से-शारीर आदमी के लिये भी राजकीय पद प्राप्त करने का उतना ही अवसर था, जितना किसी बहुत बड़े अमीर के लिये । उसके समय में समस्त नागरिकों की सभा 'पसेवली' ही सबसे बड़ी थी । उसके कार्य करने का साधन कारंसिल था, और मविस्ट्रे द्वारा (जो भारकन कहलाते थे) उसके नौकर थे । कारंसिलरों और आरकनों का जुनाव बारी-बारी से होता था, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को इन पदों पर पहुँचने का समान रूप से अवसर मिलता था । निर्धनों पर के भार कम किए गए थे । सारे नगर की आवश्यकताओं और सुख-भोग आदि के लिये जितने धन की आवश्यकता होती थी, वह सब धनवानों से ही लिया जाता था । जहाज़ बनाने और उन पर आदमी भरती करने का काम जुने हुए धनवानों को सौंपा जाता था । एक-एक जहाज़ एक-एक धनवान् के ज़िम्मे लगा दिया जाता था । बड़े-बड़े उत्तरांति-पथेंसों पर नाचने और गानेवालों की टोकियाँ आदि तैयार करने और उन्हें ये सब काम सिखाने आदि का भार भी कुछ जुने हुए धनवानों पर ही रहता था । उन धनवानों को अपने इन करांच्यों का पालन भार समझ-

कर नहीं, बलिक नगर की सेवा के भाव से करना पदता था। साथ ही सब काम किसी पुरस्कार या प्रतिकार की आशा से नहीं, बलिक केवल प्रतिष्ठा और सम्मान के विचार से करना पड़ते थे। पेरिकलीज के समय में इस व्यवस्था में अच्छी सफलता भी हुई थी। पर आगे चलकर धनवान् लोग स्वार्थी होने लगे, और यथासाध्य अपने कर्तव्यों के पालन से बचने का प्रयत्न करने लगे। उधर ग्रीष्म नागरिक भी जल आयवा स्थल-सेना में काम करने से जान बचाने का प्रयत्न करने लगे।

(३) उसका तीसरा सिद्धांत यह था कि एयेंसवालों को मन तथा आध्या-संबंधी बातों में भी महत् होना चाहिए। पारसवालों ने उनका नगर नष्ट कर दिया था। वह कहता था कि एयेंसवालों को अपना नगर फिर से इस प्रकार बनाना चाहिए कि वह सारे संसार में सौंदर्य और शोभा की चीज़ हो। पुराने मंदिर तो फिर से तैयार हो कर लिए गए थे, साथ ही अनेक नए मंदिर भी बनाए गए थे। विशेषतः नगर की देवी एथेन का मंदिर, जिसका नाम पारथेन था, फिर से इतना सुंदर बनाया गया था कि वह संसार के परम आश्चर्यमय पदार्थों में से एक हो गया था। लेखकों, विचारशीलों, चित्रकारों और मूर्तिकारों को उत्तम-से-उत्तम कृतियाँ प्रस्तुत करने के लिये प्रोत्साहित किया गया था, जिसमें एयेंस और यूनान की कीर्ति बड़े, और संसार को शिखा मिले।

एयेंस में पेरिकलीज के समय में कला और साहित्य का जितना अच्छा और सुंदर विकास हुआ था, उतना मनुष्य-ज्ञाति के इतिहास में और कभी कहीं नहीं हुआ था। उस समय माझरन और फोडियम-सरीखे बड़े-बड़े मूर्तिकार, एसकीलस, सोफोकलीज तथा यूरपाइडीज-सरीखे बड़े-बड़े और करुण-रस के नाटक लिखनेवाले और हिरोडोटस-सरीखे इतिहास-ज्ञेयक वहाँ हुए थे। इनके कुछ ही दिनों बाद धूसिडाइडीज-

सरीखे इतिहास-लेखक, पैनैक्सागोरस-सरीखे वैज्ञानिक और इविटनस, कहिकेटीज तथा म्नेसिकलीज-सरीखे वास्तुकार वहाँ हुए थे। हेरोडोटस इतिहास-नामक स्थान का और पैनैक्सा-गोरा क्लेब्रोमेनाइ द्वारा निवासी था। पर ये तथा इसी प्रकार के और अनेक गुणी उन दिनों उसी प्रकार अपने स्थानों से खिचकर पृथेस में आते थे, जिस प्रकार चुंचक की ओर लोहा खिचकर आता है; क्योंकि पृथेस में उन्हें अपनी प्रतिभा के विकास के लिये पूरा-पूरा प्रोत्साहन मिलता था। यहाँ दमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उन दिनों यूनान के अन्यान्य स्थानों में भी, विशेषतः आश्चर्यों में, बहुत बड़े-बड़े कलाविद् काम करते थे। पर यूनान की सारी संस्कृति का केंद्र पृथेस ही था। पेरिकलीज ने कहा था कि पृथेस को हेलास का शिचालय होना चाहिए, और तदनुसार वह सारे हेलास के लिये शिचा का सबसे बड़ा केंद्र हो भी गया था। यद्यपि उन दिनों पृथेस नगर और उससे संबद्ध आस-पास के स्थानों के निवासियों की संख्या कुछ बहुत अधिक नहीं थीं तो भी पचास वर्षों के अंदर वहाँ सौंदर्य और ज्ञान के सभी विभागों में—विशेषतः वास्तुकला, मूर्ति-निर्माण और काव्यशास्त्र से संबंध रखनेवाले—प्रथम अर्द्धों के इन्हें अधिक कार्य हुए थे कि इन सब विषयों में सबसे अच्छी शिचा और ज्ञान प्राप्त करने के लिये आजकल भी लोगों को (और विशेषतः

*. पट्टिका की आवादी शायद कभी २,५०,००० से ज्यादा नहीं हुई थी। इसमें पुलाम (जो लगभग एक तिहाई थे) और विदेशों से आकर रहनेवाले लोग (जो एक पाठमांश के लगभग थे) भी सम्मिलित थे। वर्षक पुरुषों की संख्या अधिक-से-अधिक ३५ या ४० हजार के लगभग थी।

योरपवालों को) उन्हीं की ओर इटिपात करना पड़ता है ।

उच्चति की पराकार्षा के युग के इन पचास वर्षों का अंत हो गया, और पृथेंस के कीर्ति-चंद्र में ब्रह्मण जागने लगा । पर यह ब्रह्मण न तो एक साथ ही लगा था, और न पूर्ण रूप से ही । हम जो यह कहते हैं कि यह ब्रह्मण एक साथ ही नहीं इसका कारण यह है कि है० १० ४३० के बाद भी पृथेंस में बहुत दिनों तक प्रथम श्रेणी की कृतियाँ प्रस्तुत होती रहीं । और, जो हमने यह कहा है कि वह ब्रह्मण पूर्ण रूप से नहीं लगा था, उसका कारण यह है कि इसके बाद कई शताविदियों तक यूनानी कला की बहुत बड़ी-बड़ी कृतियों का अन्यान्य स्थानों में अनुकरण किया जाता था, और इन विषयों में पृथेंस ने जो कुछ सिखाया था, उसका बराबर उपयोग किया जाता था । परंतु पेरिक्लीन के समय के बाद न तो पृथेंस में और न कहीं दूसरी जगह ही यह बात देखने में आती है कि वहाँ के समस्त निवासियों में एक साथ ही सौंदर्य-प्रेम भरा-हुआ है, और वे अपने यहाँ के बड़े-बड़े आदमियों को ऐसे कार्य करने के लिये प्रोत्साहित कर रहे हैं, जो उस सौंदर्य-तृष्णा की तृप्ति कर सकें । पृथेंस को आज तक कभी अपना पुराना गौरव विस्मृत नहीं हुआ । यहाँ तक कि एक स्थान पर कहा गया है कि संत पात्र के समय में भी पृथेंस के नागरिक कोई नई बात कहने या सुनने के तिवा और किसी काम में अपना समय व्यतीत नहीं करते थे । उस समय तक उनका शौक बहुत कुछ निरर्थक हो गया था । उनका ज्ञान प्रायः छोटी और तुच्छ बातों की ओर ही जाता था । परंतु इतना होने पर भी और उस उच्चति-युग की कीर्ति बहुत कुछ मंद पड़ जाने पर भी उनके हृदय से उसका ज्ञान पूरी तरह से मिट नहीं सका था । उस समय भी

वह प्रत्येक शिक्षित मनुष्य के देखने योग्य स्थान था, और आज दिन भी वैसा ही है।

इ० प० ४३० के बाद से पृथेस की अवनति होने लगी। पर जिन शक्तियों ने उसका नाश किया था, वे बहुत पहले से काम कर रही थीं। बाहर तो स्पार्टा की ओर से सदा भय बना रहता था, और उसके साथी दूसरे नगर असंतुष्ट थे। और, अंदर की ओर उसके बीच दुरुपयोग को स्वतंत्र रहने तथा दूसरों को स्वतंत्र रहने की शिक्षा देने को आकांच्छा बहुत अच्छी है; पर इस आकांच्छा की उचित रीति से पूर्ण करने के लिये बड़े और अच्छे लोगों की आवश्यकता होती है। यदि यह बात न हो, तो फिर इस प्रकार की आकांच्छा करनेवाले लोग दूसरों पर अपना महात्म्य स्थापित करने के बदले स्वयं ही शिखिल और अध्यवस्थित हो जाते हैं। यहीं बात पृथेस के संबंध में भी हुई। वहाँ कई दल हो गए, जिनमें आपस में झगड़े होने लगे; यहाँ तक कि स्वयं पेरिक्लीज को भी अपने अंतिम दिनों में इस प्रकार की दख्ल-बंदियों का शिकार होना पड़ा था। अब राज्य में ऐसे-ऐसे लोग ऊँचे पदों पर पहुँचने लगे, जो पेरिक्लीज के समान दब विचार के और महानुभाव नहीं थे। वे लोग अपने प्रभाव से केवल अपने स्वार्थों की ही सिद्धि करने लग गए। उन्होंने पृथेस-निवासियों को ऐसे मार्गों में लगाया, जिनमें पड़कर वे लोग दूसरों को ढाने-धमकाने लगे, स्वयं अपने को धोका देने लगे, और भद्दी-भद्दी आकांच्छाएँ करने लगे। लोगों का आंतरिक भाव दिन-पर-दिन ख़राब होने लगा। पेरिक्लीज ने उन्हें जो उच्च आदर्श बतलाने का प्रयत्न किया था, उन आदर्शों के अनुसार वे लोग अपना जीवन व्यवहीत नहीं कर सकते थे। वे अपने कर्तव्यों का पालन करने से हिचकते थे, और यह चाहते थे कि हमारे नेता हमारी भूठी खुशामद और

बदाई किया करें। पथेंस के साम्राज्य का इसीलिये नाश हुआ था कि वहाँ के शासकों तथा निवासियों को जैसा योग्य होना चाहिए था, वे लोग वैसे योग्य नहीं हुए। पेरिवलीव की कामना यही थी कि पथेंस का साम्राज्य समस्त मनुष्य-जाति के लिये कल्याण और मंगल करनेवाला हो। ऐसे साम्राज्य के लिये जैसे योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता थी, वैसे व्यक्ति अब पथेंस में उत्पन्न नहीं होते थे।

३. हेल्लास का अवनति-काल

इ० प० ४३१ में पथेंस और स्पार्टा में एक युद्ध किया था । यह युद्ध यथापि बीच-बीच में बंद हो जाता था, तो भी वह इ० प० ४०४ तक बराबर चलता रहा । यह पेलोपोनीशियन युद्ध कहलाता है । तब वह युद्ध समाप्त हुआ, तब पथेंस के साम्राज्य के बहुत-से देश और नगर उसके हाथ से निकल गए थे । यथापि इसके थोड़े ही दिनों बाद पथेंस ने फिर कुछ शक्ति संपादित कर ली थी, तथापि वह अपना पुराना महात्व इसके बाद फिर कभी प्राप्त न कर सका । इ० प० ४०४ से ३७८ तक यूनानी नगरों में स्पार्टा का महात्व ही सबसे अधिक रहा । इ० प० ३७८ में थीबस ने उसके नेतृत्व के विरुद्ध विद्रोह ठाना । थीबसवालों को नई-मई सेना थी, और वडे-वडे नेता थे, जिससे वे जोग स्पार्टा को शक्ति क्लिन्च-मिज्ज करने में समर्थ दुप । इसके बाद कुछ दिनों तक थीबस ही यूनान का प्रधान नगर रहा । अंत में एक नई शक्ति, जो दूधर कुछ दिनों से उत्तर की ओर बढ़ रही थी, वहाँ आ पहुँची, और उसने यूनानी संसार का नेतृत्व ग्रहण कर लिया ।

इसके बाद के समय का यूनान का इतिहास बहुत ही विगड़ी हुई दशा में पाया जाता है । यह ठीक है कि पेलोपोनीशियन युद्ध का इतिहास संसार के एक बहुत बड़े इतिहास-ज्ञेयक ने लिखा है, जिसका नाम घूसिडाइटीज है । यह इतिहास-ज्ञेयक भी इस युद्ध में लड़ा था, और इसी ने उसका पूरा-पूरा वर्णन लिखा है । उसने उस युद्ध की मुख्य-मुख्य घटनाएँ खेकर यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि यूनान के पतन के क्या कारण थे । उसकी बातें इतनी

बुद्धिमत्ता-पूर्ण, हतनी निपत्ति, हतनो स्पष्ट और हतनी ठिकाने की है कि आजकल भी यदि वह पुस्तक पढ़ी जाय, तो उससे राजनीति-संबंधी बहुत-सी नई-नई बातें मालूम होती हैं, और नई-नई शिक्षाएँ मिलती हैं। प्रत्येक राजनीतिज्ञ और विचारशील उसका अध्ययन करके अपना ज्ञान बहुत कुछ बड़ा सकता है। फिर इस युद्ध में बहुत-सी उत्तेजक तथा रोमांचकारियों घटनाएँ भी हुई थीं। एक बार प्रयेसवालों ने स्पार्टा की सेना को स्फेक्टेरियानामक टापू के पाइबोस-नामक बंदरगाह में चारों ओर से घेर लिया था, और अंत में रात के समय उन पर आक्रमण करके उन्हें पकड़ लिया था। इसके अतिरिक्त प्रयेसवालों ने सिसलों पर भी छड़ाइ की थी, और आरंभ में अनेक युद्धों में उन्हें अच्छी सफलता हुई थी। साथराक्यूज के बंदर में एक बहुत बड़ा युद्ध हुआ था। वहाँ प्रयेसवाले परास्त होकर पीछे हटे थे, और अंत में उनकी सारी सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया था। अूसिडाइडीज ने इन सब घटनाओं का जैसा मनोहर, उत्तेजक तथा रोमांचकारी वर्णन किया है, इस प्रकार की घटनाओं का वैसा वर्णन बहुत ही कम स्थानों में पाया जाता है।

पेलोपोनीशियन युद्ध का वर्णन एक बहुत बड़े इतिहास-लेखक ने तो अवश्य किया है, पर इससे एक विशेष बात ही ओर से हमारा लक्ष्य इट नहीं जाना चाहिए। वह बात अूसिडाइडीज की समझ में भी स्पष्ट रूप से आ गई थी, और उसने उसका उल्लेख भी किया है। वह यह कि ३०० प० ४०० के बाद से यूनान में केवल ऐसे ही आदमी होने लगे, जिनके विचार, आकांडाएँ और उड़े इय आदि पहले के लोगों की इन बातों की अपेक्षा छोटे और तुच्छ थे। प्रयेस और स्पार्टा में जो युद्ध आरंभ हुआ था, उसमें धीरे-धीरे परिचमी यूनान के सभी लोग आकर समिक्षित हो गए थे।

पारसियों के साथ यूनानवालों के जो युद्ध हुए थे, वे तो एक बड़े उद्देश्य और आदर्श को सामने रखकर हुए थे। पर पेलोपोनीशियन युद्ध में इस प्रकार का कोई बड़ा उद्देश्य या आदर्श किसी के सामने नहीं था। इसमें सब नगरों का मुख्य उद्देश्य यही था कि इस दूसरे नगरों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करें। ई० प० ४०० के बाद से तो यह बात और भी अधिक स्पष्ट रूप से देखने में आती है। उस समय के बाद से यूनानी राज्यों में बहुत दिनों तक आपस में जो बहुत बड़े-बड़े झगड़े और जड़ाइयाँ होती रही थीं, उनमें छोटी-छोटी शक्तियाँ केवल छोटे-छोटे उद्देश्यों की सिद्धि के लिये ही समिक्षित होती थीं। ये सब घटनाएँ बहुत ही पेचीड़ी भी हैं, और इनका वर्णन भी पढ़ने में मनोरंजक नहीं है। यूनानी नगरों के जीवन में से सारा महत्व निकल गया था, और वे सब छोटी-छोटी बातों के लिये आपस में व्यर्थ ही लड़-भिड़कर जिस तरह अपनी शक्ति का नाश कर रहे थे, उसका वर्णन पढ़कर पाठकों को क्रोध-सा आता है। इसीलिये इस उस समय के इतिहास का कोई विस्तृत वर्णन नहीं करना चाहते। उसकी केवल मुख्य-मुख्य घटनाओं तथा बातों का ही संचेप में कुछ वर्णन कर देते हैं।

पेलोपोनीशियन युद्ध के मूल-कारण का पता लगाना कोई कठिन काम नहीं है। पर्येस की बहुत अधिक उत्तरि हो जुकी थी, और अब वह बहुत जोरी हो चला था। व्यापार के जितने सुविते और लाभ थे, वे सब वह स्वयं ही प्राप्त करना चाहता था। इससे कोरिय तथा मेगारा-सरीखे दूसरे बड़े और व्यापारी नगरों के मन में भय भी उत्पन्न होने लगा और हँस्याँ भी। पर्येस की शक्ति बराबर बढ़ती जा रही थी। वह परम स्वार्थों होकर दूसरे देशों का व्यापार बराबर नष्ट कर रहा था। दूसरे नगर अपना

व्यापार इस प्रकार चौपट होता हुआ देखकर चुपचाप बैठे नहीं रह सकते थे। ऐसो अवस्था में एक छोटा-सा कारण उत्पन्न होने या ज़रा-सा बड़ाना मिलने पर भी युद्ध ठन सकता था। यदि कहीं ऐसा कोई युद्ध विद्यता, तो स्पार्टा का भी उसमें सम्मिलित होना निश्चित ही था। कोरिंथ और मेगारा दोनों ही पेक्षोपोनीशियन नगर थे। यदि वे लोग एयैस के साथ युद्ध आरंभ करते, तो स्पार्टावाले भी उनकी सहायता करने के लिये अवश्य ही बाध्य होते; क्योंकि स्पार्टा स्वयं भी एयैस से इंध्यां करता और उसकी बढ़ती हुई आकांक्षाएँ देखकर मन-ही-मन भयभीत होता था। उसी अवसर पर कोरिंथ और कोरिकायरा में कुछ झगड़ा हो गया, जिसमें एयैस ने कोरिंथ के विरुद्ध होकर कोरिकायरा का पच लिया। बस, इसी समय से युद्ध आरंभ हो गया। यदि यह युद्ध उस समय न आरंभ होता, तो याद में अवश्य ही किसी और बात पर आरंभ हो जाता, क्योंकि युद्ध होना प्रायः निश्चित ही था। उन दिनों यूनानी राज्य आपस में एक दूसरे के साथ लड़ने के लिये मदा कमर कसे तैयार रहते थे।

एक तो एयैस के पास स्वयं ही बहुत बदा जड़ाज़ी बेड़ा था, तिस पर कोरिकायरा का बेड़ा भी उसके साथ आ मिला था। स्पार्टावालों को कोरिंथ का जड़ाज़ी बेड़ा मिल गया था, जो यूनान में उन दिनों एयैस के बेड़े को छोड़कर बाकी और सब नगरों के बेड़ों से ज़बरदस्त था। युद्ध में उसका यह बेड़ा बहुत ही डप्योगी सिद्ध हुआ था। पर स्पार्टा की मुख्य शक्ति उसकी स्थल-सेना ही थी; और इसके अतिरिक्त उसके कुछ मित्र तथा साथी भी उसकी ओर हो गए थे। एयैस तो पेक्षोपोनीज के समुद्र-तट पर स्थित क्रस्वों पर आक्रमण कर

सकता था, पर स्पार्टा किसी प्रकार पृटिका पर आक्रमण नहीं कर सकता था। जिन नगरों के चारों ओर परकोटे बने थे, उन पर आक्रमण करने के यंत्र दोनों में से किसी एक पड़ के पास भी नहीं थे। हर साल स्पार्टा की सेना पृटिका-प्रदेश में बुस जाती और वहाँ की फ्रस्क नष्ट कर डालती थी। इसके बाद पृटिका-प्रांत के डिसीलिया-नामक स्थान में स्पार्टावालों ने कुछ किलेबंदी कर ली, और पृथेंसवालों का वह मार्ग बंद कर दिया, जिस मार्ग से उनका अनाज और जैतून आता था। इस मार्ग के बंद हो जाने से अब पृथेंसवाले चाँदी का अपनी उस खान से चाँदी भी नहीं निकाल सकते थे, जो वारियम-नामक स्थान में थी। अब पृथेंसवालों को धन के लिये बहुत अधिक कठिनता होने लगी। अपनी यह अधिक कठिनता दूर करने के लिये पृथेंस ने अपने साथी नगरों से दूना कर लेना आरंभ कर दिया। पर पृथेंस के लिये इसका परिणाम भी अच्छा नहीं हुआ, और पृथेंस के प्रति दूसरे नगरों की चिट्ठा तथा भक्ति और भी कम हो गई। अब अनेक नगर जलवी-जलवी विद्रोह करने लगे, जिससे उनका दमन करने के लिये पृथेंस को अपनी और भी अधिक शक्ति व्यय करनी पड़ी। इसके सिवा स्पार्टावालों ने पृटिका में जो लूट-पाट मचाई थी, उससे वहाँ के समस्त किसानों का सर्वस्व नष्ट हो गया। जब उनका घर-बार और खेती-बाजी कुछ भी नहीं रह गई, तब वे सब ज्वेग नगर में जा पहुँचे। उन दिनों नगरों में नज़ आदि का कोइ प्रबंध तो होता ही नहीं था, इसलिये जब नगर में किसानों की भीड़ बहुत बढ़ गई, तो गंदगी भी बहुत झाड़ा फैलने लगी, जिससे वहाँ प्लेग शुरू हुआ। उस प्लेग से पृथेंस में हजारों आदमी मरने लगे। अंत में उसके एक चौथाई नागरिक इसी प्लेग की नज़र हो गए, जिससे उसका

मनुष्य-बज बहुत कम हो गया, और उसे सेवा में काम करने के लिये कम आदमी मिलने लगे। इसी प्रलेग में पेरिक्लीज के दो लकड़े और एक बड़ा भी मर गई थी। है० प० ४२५ में स्वयं पेरिक्लीज की भी मृत्यु हो गई। यह प्रथेस की सबसे बड़ी चति थी।

तारथ यह कि इस खड़ाई-फगड़े के कारण प्रथेसवालों का बज बहुत ही घट गया, और उनकी वास्तविक शक्ति बिलकुल छींचा हो गई। यहाँ तक कि अंत में वे लोग युद्ध से तंग आ गए। एक और तो प्रथेसवालों को अपना सांत्राज्य अचूरण बनाए रखने का प्रयत्न करना पड़ता था, और दूसरी ओर स्पार्टावालों का तथा अपने ही देश के निवासी दूसरे शत्रुओं का मुकाबला करना पड़ता था। ये दोनों काम साथ मिलकर इतने विषट हो गए थे कि वे इनकी ठाक-ठीक व्यवस्था नहीं कर सकते थे। प्रथेसवालों पर इस तरह और नाश का जो तुरा प्रभाव पड़ा था, उसका एक स्पष्ट ग्रामाण्य यह देखने में आता था कि उनमें कहे प्रकार के दोष और दुर्बलताएँ बढ़ती जा रही थीं। अब वे लोग अपने सच्चे राजनीतिज्ञों की तुदिमत्ता-पूर्ण समर्पित पर भी ज्यान नहीं देते थे। और, वक्तीयन तथा पुलिकवियाइडोज-सरीखे लोगों की बातें गानना ही अधिक पसंद करते थे। इनमें से वक्तीयन तो पहले मोर्ची का पेशा करता था, और बहुत हाज़िरजवाब, बहादुर और साथ ही ईमानदार भा था। उसमें दोष यह था कि वह बहुत कठोर-स्वभाव का और उद्दंड था। सदा उम्र तथा भीषण उपायों से ही काम किया करता था, फिर चाहे वे उपाय कितने ही मूर्खता-पूर्ण क्यों न हों। दूसरा पुलिकवियाइडोज यत्पि धनवान्, कुलीन और बहुत अधिक योग्य था, और कुछ दिनों तक जनता का आराध्यदेव-सा बना हुआ था, तथापि ईमानदारों उसे कु भी

नहीं गई थीळ। वह सदा अपनी शक्ति प्रकट करने के अवसर ढूँड़ा करता था, और पथेंसवालों को द्रायः बहुत ही विकट कामों में लगा दिया करता था। फिर चाहे उसमें कितनी ही अधिक लोखिम क्यों न हो। यस, पथेंसवालों ऐसे ही लोगों की सलाह पर चला करते थे। जो लोग लंबी-चौड़ी बातें बचार सकते थे, उनका कहना पथेंसवाले तुरंत मान लेते थे। पर जो लोग अच्छे सेनापति तथा नेता थे, और जो यह जानते थे कि इस समय कौन-सा काम तुद्धिमत्ता-पूर्ण है और कौन-सा नुखंता-पूर्ण, उन लोगों का जनता पर कोइ विशेष प्रभाव नहीं पड़ता था।

अब पथेंसवालों में एक यह भी दुरुण आ गया था कि वे अपने अच्छे-से-अच्छे और योग्य-से-योग्य नेताओं का भी बहुत सहज में अविश्वास कर बैठते थे। इपार्टमेंट्स ने एट्रिक्टका पर जो आक्रमण किया था, उसके लिये उन्होंने पेरिवालीज तक पर जुर्माना कर दिया था। उन्होंने एविक्वियाइटोज को अपना प्रधान सेनापति चुन लिया। जब एविक्वियाइटोज सेनाओं को लेकर युद्ध-लेव्र की ओर रवाना हो गया, तब लोगों ने उसे फिर बाप्स चुला लिया। इसका कारण यही था कि एविक्वियाइटोज के कुछ शत्रुओं ने उन लोगों को कुछ डल्टो-सीधी बातें समझा दी थीं, जिससे उन लोगों का विश्वास तुरंत

॥ एविक्वियाइटोज एक दिन पेरिवालीज से मिलने गया था। वहाँ पेरिवालीज के आदमियों ने उससे कह दिया कि इस समय हमारे मालिक को फ़रसत नहीं है, क्योंकि वह यह सोच रहे हैं कि जनता को हिसाब-किताब कैसे समझाया जाय। इस पर एविक्वियाइटोज ने वहाँ से चलते समय कहा था—‘उहें हिसाब-किताब समझाने के हमें में ही नहीं पड़ना चाहिए और ऐसी तरकीब सोचनी चाहिए, जिसमें हिसाब-किताब बिलकुल समझाना ही न पड़े।’”

ही प्रतिक्रियाइडोज पर से हर गया, और उन्होंने उसे वापस लुका भेजा। जब किसी ने प्रतिक्रियाइडोज से कहा कि पर्येंसवालों ने आपको अनुपस्थिति में आपको प्राणदंड देना निश्चित किया है, तब उसने उत्तर दिया था—“मैं उन लोगों को दिखला दूँगा कि मैं जीवित हूँ।” बस, तुरंत ही वह वहाँ से भाग निकला, और जाकर स्पार्टावालों के साथ मिल गया। स्पार्टावालों को उसने जो-जो परामर्श दिए थे, उनके कारण आगे चलकर युद्ध में पर्येंसवालों की अनेक बड़ी-बड़ी हानियाँ हुई थीं। निकियास नाम का एक और व्यक्ति था, जो युद्ध-चंत्र में सेना का संचालन तो अच्छी तरह नहीं कर सकता था, पर राजनीति का वह बहुत अच्छा ज्ञाता और साथ ही ईमानदार भी था। यद्यपि वह स्वयं सेनापति नहीं बनना चाहता था, तो भी अपनी इच्छा के विरुद्ध वह बार-बार सेनापति नियुक्त किया जाता था। और, राजनीतिक विषयों में वह जो परामर्श देता था, उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देता था। एक बार ऐसा हुआ कि छु सेनापतियों ने जल-युद्ध में एक बहुत बड़ी विजय प्राप्त की। उस विजय के उपरांत समुद्र में तूकान आ गया, जिसमें पर्येंसवालों के पचीस लड़ाज़ दूब गए। उन जहाज़ों पर जो आदमी सवार थे, उन्हें बाकी बेड़े के लोग किसी तरह याचा नहीं सके थे, क्योंकि तूकान बहुत तेज़ था। बस, इसी घपराघ में उन छु सेनापतियों को फौसी दे दो गई।

इधर यह युद्ध तो चल ही रहा था; इसके लिये पर्येंसवालों को अपनी समस्त शक्तियाँ सावधानी से एकत्र करने की आवश्यकता थी, पर ऐसा न करके वे लोग नए-नए प्रांतों पर भी चढ़ाई कर उन पर विजय प्राप्त करने की उघेड़-तुल में लगे रहते थे। यह भी इस बात का एक प्रमाण है कि उस समय उनकी बुद्धि कैसी भ्रष्ट हो गई थी। ३० प० ४१५ में सायराक्यूज़-नगर

पर आक्रमण करने के लिये पर्येंसवालों ने सिसली में अपनी एक सेना भेजी थी, जिसकी वस्तुतः कोई आवश्यकता नहीं थी। पर इसमें सबसे अधिक आश्चर्य की बात यही है कि इस चढ़ाई में पर्येंसवालों को एक बहुत बड़ी सीमा तक सफलता मिली थी। पर हाँ, इसके लिये प्रायः दो बच्चों तक उन्हें ऐसे समय में अपने बहुत-से सैनिक सिसली भेजने पड़े थे, जब उन्हें स्वयं अपने प्रांत के आस-पास ही उनकी बहुत बड़ी आवश्यकता थी। उन्होंने साथरा-प्यूजवालों के साथ युद्ध तो छेड़ दिया था, पर वे उसकी ठोक-ठोक व्यवस्था नहीं कर सकते थे। इसे उन्होंने अपनी सेनाएँ तीन सेनापतियों के अधीन संकीर्ण थीं, और तब केवल दो सेनापतियों के अधीन कर दीं। उनके सेनापति तो युद्ध-चेत्र के जो समाचार उनके पास भेजते थे, उनमें बराबर यही कहते थे कि इस अवसर पर युद्ध जारी रखना बहुत बड़ी लोखिम का काम है। पर फिर भी वे उनकी बात नहीं सुनते थे, और उन्हें बराबर लड़ाई जारी रखने का ही हुक्म देते थे। यद्यपि आरंभ में पर्येंसवालों को इस युद्ध में बहुत कुछ सफलता हो चुकी थी, पर अंत में वे अपने इस प्रयत्न में बहुत तुरों तरह फिर हुए थे, और उन्हें भारी ज्ञाति उठानी पड़ी थी। इस युद्ध में पर्येंसवालों की सारी शर्क्कर व्यथा ही नष्ट हो गई। यद्यपि इसके बाद वे लोग प्रायः जौ वर्षों तक स्पार्टावालों के साथ लड़ते रहे, पर उसी समय उनकी अवस्था ऐसी हो गई थी कि नाम-मात्र के लिये भी उनके सफल होने की आशा नहीं रह गई थी।

लेकिन इतना सब होने पर भी यदि स्पार्टावाले विदेशियों को अपनी सहायता के लिये न ढुकाते, तो बहुत संभव था कि वे और उनके साथी इस युद्ध में कभी विजयी न होते; और यदि वे किसी प्रकार इसमें विजयी हो भी जाते, तो भी उनकी विजय उस विशाल रूप में न होती, जिसमें हुई थी। पर्येंस-

बाले जब तक अपना पृक्ष अच्छा समुद्री बेड़ा तैयार रख सकते, तब तक कोई शब्द पृथेस पर अधिकाह नहीं कर सकता था। इसीलिये पृथेस और उसके युद्ध का अंत तब हुआ, जब स्पार्टा ने पारस से सहायता ली। स्पार्टावालों ने पारसवालों से घन लेकर बहुत-से नए जहाज बनाए, और उन पर सैनिक भरती किए। इसीलिये वे लोग इंगोस्पोटामी के युद्ध में पृथेस के जहाजी बेड़े को पराहत करके नष्ट कर सके। जब पृथेस का जहाजी बेड़ा नष्ट हो गया, तब उस पर समुद्र के मार्ग से आक्रमण करना बहुत सहज हो गया। स्पार्टा के जहाज चराकर आगे बढ़ते हुए पिरेइयस-नामक स्थान तक चले गए, और तब पृथेस को स्पार्टावालों के हाथ विना किसी शर्त के आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। कोरिथ और येवेस-वाले यह चाढ़ते थे कि सारा पृथेस नगर ही पूरी तरह से नष्ट कर दिया जाय, और सारा राष्ट्र या सारी जाति गुज्जाम बचाकर बेच दी जाय, पर स्पार्टा इस चरम सीमा तक नहीं आना चाहता था। अंत में हुआ यही कि पृथेसवालों के पास विदेशों में जो अधिकृत स्थान थे, वे सब उन्हें दे देने पड़े। उन्होंने अपने प्रांत की रक्षा के लिये पृथेस से पिरेइयस तक पृक्ष बहुत बड़ी और लंबी दौवार बना रखी थी, और पिरेइयस में अच्छी-ज्ञासी किलेबंदी कर रखी थी। वह सारी दीवार और किलेबंदी उन्हें गिरा देनी पड़ी। पृथेस को स्पार्टा का अधीनस्थ और मित्र बनना पड़ा, तथा यह निश्चय हुआ कि स्पार्टावाले जब और जहाँ चलकर युद्ध करने के लिये कहेंगे, तब वहाँ चलकर पृथेसवाले युद्ध करेंगे। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि स्वयं अपने प्रांत से संबंध रखनेवाली और आंतरिक बातों में उसे पहले से जो स्वतंत्रता प्राप्त थी, वह ऊँ-की-स्थों बनी रहने वी गई।

इस प्रकार पृथेस के साम्राज्य का अंत हो गया। पृथेस-

नगर फिर धोरे-धीरे शक्ति संपादित करने लगा, क्योंकि उसका व्यापार अभी तक उसके हाथ में ही था, नष्ट नहीं हुआ था। ही, उसका सारा सैनिक बल अवश्य नह दो गया था। इसके बाद चालीस वर्षों तक यूनान में उसकी गिरती केवल दूसरे दर्जे के राज्यों में होती रही।

कला और साहित्य के चेत्रों में अब भी पथेंस में बहुत अच्छी-अच्छी और ऊँचे दर्जे की कृतियाँ प्रस्तुत होती रहीं। यूरिपाइ-वीज ने अपने बो अंतिम नाटक और अरिस्टोफेनीज ने बो सुखांत नाटक लिखे थे, उनमें से अधिकांश युद्ध-काल में ही लिखे थे। परंतु सुक्रात के उपदेश, प्लेटो तथा मेनोफन के लेख और लीसियस, आसोकेनीज तथा सडमास्थिनीज के (डिमास्थिनीज के संबंध में अगले प्रकरण में कुछ और बातें बतलाई जायेंगी।) भाषण आदि तथा प्राक्सिसटिनीज की मूर्तियाँ आदि सब युद्ध-काल के उपरांत की ही कृतियाँ हैं। इसमें संदेह नहीं कि वे सभी बहुत बड़ी-बड़ी कृतियाँ हैं। विचार और साहित्य की इष्टि से पथेंस अभी तक यूनान का केंद्र ही बना रहा। यूनान में पहलेपहल जिस स्थान पर कला की न्यूटि और विकास हुआ था, उस स्थान का प्रभाव कला पर अभी तक बराबर पड़ रहा था। पर इतना अंतर अवश्य हो गया था कि अब वो यूनानी चित्र आदि बनते थे, वे या तो घनवानों के लिये बनते थे या केवल बड़े-बड़े नगरों के लिये। पहले पथेंस में मूर्तियों तथा चित्रों आदि की बहुत अधिक विकी होती थी, पर अब वहीं उनकी विकी कम हो चकी थी। बास्तुकारों का भी पथेंस में अब पहले की तरह आदर नहीं होता था। अब तो संसार के अन्यान्य भागों में—विशेषतः प्रशिया माइनर के अमोर और शौकीन शहरों में—ही यूनान के बड़े-बड़े

बास्तुकार, स्कोपास-सरीखे मूर्तिकार तथा बड़े-बड़े प्रसिद्ध यूनानी चित्रकार जाकर रहते और काम करते थे। ऐसेंस फिर भी धीरे-धीरे उच्छिति के पथ पर अग्रसर हो रहा था, और अपना प्राचीन महास्व-पूर्ण स्थान फिर से प्राप्त करना चाहता था, पर अभी तक वह उस स्थान पर पहुँच नहीं सका था।

प्रायः छब्बीस वर्षों तक (१०० प० ४०४ से २७८ तक) स्पार्टा का सैनिक बल बहुत अधिक था; पर इस दीच में कभी डसने अपने को साज्जाड़ का स्वामी होने के बोग्य नहीं सिद्ध किया। वह जो कुछ कर सकता था, अपनी शक्ति के ही भरोसे कर सकता था—किसी बात के भरोसे वह कोई काम कर ही नहीं सकता था। यदि उसे किसी नगर की भक्ति या निष्ठा के संबंध में तनिक भी संदेह होता, तो वह बहुत ही भोपण रूप से डसका दमन करता था। यद्यपि अपने साथियों और मित्रों की सहायता से ही वह पेलोपोनीशियन-युद्ध में विजयी हो सका था, तो भी विजय प्राप्त करते ही वह अपने सभी मित्रों और साथियों को विक्रुत भूल गया, और विजय से होनेवाले सब लाभ वह अपने ही हाथ में रखने का प्रयत्न करने लगा। विशेषतः पारस्वालों के साथ तो उसने सबसे बड़ी मूर्खता का व्यवहार किया। उसने एक प्रकार से पश्चियाँ यूनानियों को पारस्वालों के हाथ बेचकर उनसे सहायता प्राप्त की थी। अर्थात् उसने पारस्वालों को यह वचन दे दिया था कि पश्चिया में रहनेवाले यूनानियों के साथ आप जोग आहे जैसा व्यवहार करें, हम जोग उसमें कोई दखल नहीं देंगे। यह मानो यूनान के साथ बहुत बड़ी धोकेवाज़ी थी। इसके बाद पश्चिया के नगरों में रहनेवाले यूनानी फिर कभी स्वतंत्र नहीं हुए। यद्यपि स्पार्टा का यह कार्य बहुत ही अनुचित था, तो भी कम-से-कम पारस्वालों के साथ उसे हीमानदारी का बताव करना

चाहिए था। पर ऐसा न करके वह उलटे ऐसे काम करने लगा, जिससे पारसवालों की हानि होने लगी। जब पारस के बादशाह अरटेक्स-रक्सीज के माझे साहरस ने उससे पारस का राजसिंहासन छीनका चाहा, तब स्पार्टा ने पारस के बादशाह की सहायता न करके उसके भाई साहरस की ही सहायता की। स्पार्टा का राजा प्रजिसिलास पश्चिया माहनर के पारसी प्रांतों पर आक्रमण करने के लिये भेजा गया। उसने बहुत-से यूनानी क्रस्तों को फिर से जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। इंत में पारसवालों ने पथेंस के कोनन-नामक एक जल-सेनापति को नियुक्त किया। तब कोनन ने पारसी बहाज्जों की सहायता से है० प० ३१४ में, नाइट्रस के युद्ध में, स्पार्टा का जहाज्जी बेदा नष्ट किया। तब कईं जाकर पश्चियाहैं स्थानों पर से स्पार्टा का अधिकार उठा। इसके बाद बहुत दिनों तक पारस बराबर स्पार्टा का शत्रु बना रहा, और उसने पथेंसवालों को अपनी प्रसिद्ध लंबी दीवार फिर से बनाने के लिये धन दिया। हेलज्जास के लिये इस समय सौभाग्य की यही बात थी कि पारसी साम्राज्य दिन-पर-दिन बढ़ा-हीन होता जा रहा था; हम यहाँ एक ऐसी घटना का उखलेख करते हैं, जिससे भला भौति यह सिद्ध हो जायगा कि उन दिनों पारस की शक्ति छित्री अधिक कम हो गई थी। जब साहरस पारस के राजसिंहासन पर अधिकार करने चला था, तब वह अपने साथ भाड़े के दस हजार यूनानी योद्धा लेता गया था। पर वैविज्ञान के निकट उस सेना की पारसी सेना के साथ मुठभेड़ दो गई। उस युद्ध में साहरस मारा गया, और यूनानी सेना को पीछे छोड़ा पड़ा। इसके बाद यूनानीयों का वही भाड़ेवाली सेना सारा पारसी साम्राज्य पार करके सकुराज साथी कृष्ण सागर तक जा पहुँची। रास्ते में इसी ने उन सैनिकों से यह भी न पूछा कि तुम कहाँ जा रहे हो। यदि उस

समय पारसी साम्राज्य की शक्ति बहुत अधिक घट न गई होती, तो एक बार फिर उसकी जल तथा स्थल-सेनापै यूनान के तटों पर ही दिखलाई पड़ती।

यूनान में स्पार्टा के जो मित्र और साथी थे, अब वे भी उसके विरोधी और शत्रु हो गए। स्पार्टा का विरोध और मुकाबला करने के लिये पृथ्वेस, धीरत, कोरिंथ और अरगोस ने मिलकर एक संघ बनाया। कुछ दिनों तक स्पार्टा जैसे-तैये इस संघ का मुकाबला करता रहा, पर इसमें भी उसे कठिनता होती थी, क्योंकि अब उसकी सेना में वह पहले की-सी बात नहीं रह गई थी। अंत में उसका पतन एक ऐसी ही धोकेवाही के कारण दुष्टा, जैसी वह प्रायः औरों के साथ किया करता था। एक बार धीरवाहाओं के साथ उसकी स्थायी संधि हो गई थी, पर इसी बीच में उसने अपने कुछ सैनिकों को धीरस के एक गढ़ पर अधिकार करने के लिये भेज दिया। इस निर्णायकता-गूण कार्य (इं० प० ३८६) से धीरवाहाले फिर स्पार्टा के विरुद्ध उठ खड़े हुए। उन्होंने उस गढ़ पर पहुँचकर स्पार्टा के सब सैनिकों को वहाँ से भगा दिया। और, तब उन्होंने अपनी सेना में फिर से सुधार करना आरंभ किया। इसके बाद उन्होंने यिसली के जैसन-नामक एक राजा के साथ मेल करके यिसली की छुड़सवार सेना अपनी सहायता के लिये ले ली। धीरस में उन दिनों दो बहुत ही अच्छे नेता और सेनापति थे। उनमें से एक का नाम पेक्षोपिडास था, जिसे युद्ध-चेत्र में विजय प्राप्त करने में बहुत अच्छी सफलता होती थी। उनका दूसरा नेता पृथ्वीननदीस था। यह भी युद्ध-विद्या का बहुत अच्छा जानकार था। इसका चरित्र बहुत अच्छा था, और विचार भी बहुत ढदार थे। यह धीरस का बहुत बड़ा देशभक्त नागरिक था। इन दोनों नेताओं के नेतृत्व में धीरवाहाले बराबर सफलता-पर-सफलता प्राप्त करते गए। उन्होंने

दो-तीन स्थानों पर स्पार्टांवालों को बहुत बुरी तरह से परास्त किया। अंत में वे लोग लेकोनिया में ऐसे स्थान पर पहुँच गए कि स्वयं स्पार्टा के बचने में भी संदेह होने लगा। इसके सिवा उन्होंने पेलोपोसीज के दक्षिण-पश्चिम में मेसिसनी-नामक एक नया और स्वतंत्र नगर भी स्थापित करा दिया, जिससे स्पार्टा की शक्ति की नींव बहुत कुछ हिल गई। इससे पहले स्पार्टा ने मेसिसनी के बहुत से निवासियों को अपना शुजाम बना रखा था। अब जो मेसिसनी का नया और स्वतंत्र नगर स्थापित हुआ था, उसमें स्पार्टा के बे सब शुजाम भागकर चले आते थे। साथ ही स्पार्टा जिन लोगों को देश-निकाले का ढंड देता था, वे भी आकर यहाँ बस जाते थे। ऐसे लोगों को शशण के लिये यह नगर बहुत अच्छा स्थान मिल गया था। वे लोग यहाँ आकर सुख-पूर्वक रह सकते थे। इस प्रकार स्पार्टा के पांचों से में ही एक ऐसा नया राज्य तैयार हो गया था, जो स्पार्टा का पूरा शत्रु था। इसका परिणाम यही हुआ कि स्पार्टा को अपनी बहुत कुछ शक्ति स्वयं अपने घर में या उसके पास-पांचों से लगानी पड़ी। वह अब दूर-दूर के स्थानों में पहुँचकर उपद्रव नहीं कर सकता था।

इसके बाद कुछ वर्षों तक थीडस ही यूनान में सबसे अधिक शक्तिशाली नगर रहा। पर जिस समय थीडसवालों ने मैटीनिया-नामक स्थान में एक बहुत बड़ी विद्यु पाई थी (इ०प० ३६२), उसी समय इपैमिनन्डास की मृत्यु हो गई। पेलोपिडास इससे दो वर्ष पहले ही एक युद्ध में मारा जा चुका था। इन दोनों नेताओं के न रह जाने पर थीडस फिर अपनी पुरानी गिरी हुई दशा पर पहुँच गया। उसके बाद से उसने फिर कभी यूनान में कोई बड़ा काम करने का प्रयत्न नहीं किया।

अब फिर यूनान का नेतृत्व एक बार पर्येंस के हाथ में गया। इधर

चालीस वर्षों से यद्यपि यूनान के कामों में उसका स्थान कुछ गौण-सा था, तो भी वह स्थान प्रतिष्ठा-पूर्ण था। विदेश में उसके हाथ से जो स्थान निकल गए थे, उनमें से कुछ स्थानों पर उसका फ़िर से अधिकार हो गया था। कृष्ण सागर पर के तथा थ्रेस के कुछ कस्बों के साथ उसका मित्रता-पूर्ण संबंध स्थापित हो गया था। उसके पास इतना धन नहीं था कि वह कोई बड़ी सेना रख सकता। और, अब युद्ध का स्वरूप ऐसा हो गया था कि विना पेशेवर सिंगाहियों के काम ही नहीं चल सकता था। अब तक तो यही होता आया था कि नागरिक लोग ही आवश्यकता पड़ने पर सेना में भरती हो जाते थे, और अब युद्ध समाप्त हो जाता था, तब वे अपने-अपने घर चले जाते थे। पर अब इस तरह से काम चलाने के दिन जहाँ रह गए थे। अब प्रत्येक राज्य को वैतनिक सैनिकों पर ही अधिकाधिक निर्भर रहना पड़ता था। इसीलिये बहुत-से खोग ऐसे निकल आए थे, जो सेनाओं में काम करके ही जांविका-निर्वाह करते थे। यद्यपि पृथेंस की सेना छोटी थी, तो भी उसका बहाझी बेड़ा अच्छा था, उसके सेनापति बहुत योग्य थे, और उसका व्यापार भी अच्छी तरह चल रहा था। और, सबसे बड़ी बात यह थी कि पेंडोपोनीश्यन-युद्ध समाप्त हो जाने पर पृथेंस-निवासियों में फिर बहुत कुछ दम आ गया था। दक्षर्यदिवाँ तो अब भी चल रही थी, पर अब उनके कारण आपस में उतना अधिक राग-हृष नहीं होता था। इस समय पृथेंस में जो राजनीतिज्ञ थे, वे प्रायः तुदिमान् और योग्य थे। पृथेंस के सब काम वे बहुत सतर्क होकर और तुदिमत्ता-पूर्वक चलाते थे।

पृथेंस-नगर अब पहले की तरह एक बड़े साम्राज्य का केंद्र नहीं रह गया था। इसके सिवा उसके निवासियों में जो दोष थे, वे अभी तक बने हुए थे। सारी शक्ति जबता की सभा या एसेबड़ी

के ही हाथ में थी। जोग पर्सेंबली से सहज में अपने भनोनुकूल निर्णय करा सकते थे। महस्व-पूर्ण विषयों पर भी पर्सेंबली उचित निर्णय न करके केवल भावुकता के बश होकर उलटा-सीधा निर्णय कर बैठती थी। यदि किसी विषय में वह आज एक प्रकार का निर्णय करती थी, तो कल ही वह पहला निर्णय विलकुल उलट भी देती थी। कभी-कभी यह भी होता था कि वह युद्ध की घोषणा तो कर देती थी, पर जहाज़ी बेड़े को ख़र्च देने से इनकार कर देती थी, या जहाज़ी बेड़े को युद्ध के लिये भेजती ही नहीं थी, और तब उसे इसद आदि देने से भी इनकार कर देती थी। जनता का अपने सेनापतियों पर कभी पूरा और सच्चा विश्वास नहीं होता था। यदि दुर्भाग्य-बश किसी राजनीतिज्ञ या परामर्शदाता की सम्मति का कल कुछ उलटा निकल आता था, अथवा शक्ति विरोधी दल के लोगों के हाथ में चली जाती थी, तो उस राजनीतिज्ञ या परामर्शदाता पर मुक़ड़मा भी बहुत ज़दी चल जाता था। कभी-कभी तो कुछ शक्तिशाली लोग केवल प्रसिद्ध प्राप्त करने के लिये ही किसी बड़े नेता पर मुक़ड़मा चला दिया करते थे। इसका परिणाम यह होता था कि पूर्वे स के राजनीतिज्ञों को फूँक-फूँककर क़दम रखना पड़ता था। वे लोग कभी कोई बड़ा काम करने का परामर्श नहीं देते थे, क्योंकि आगे चलकर उसके कारण उन्हें अपने उपर विपत्ति आने की आशंका रहती थी।

जो राज्य ऐसी अवस्था में हो, उससे भला कब यह आशा की जा सकती थी कि वह इदता-पूर्वक कोई कार्य करेगा, अथवा जो कार्य आरंभ करेगा, उसका उचित निर्णय कर सकेगा। ऐसा राज्य छोटी-मोटी कठिनाइयों से तो जैसे-तैसे पार पा सकता था, पर भारी विपत्ति के समय कुछ भी नहीं कर सकता था। बस, पूर्वे उन दिनों इसी अवस्था में यूनान का नेतृत्व कर रहा था। अगले प्रकरण

मैं पाठकों को पता चलेगा कि मेसिडोनिया के फिलिप का मुख्य विरोध प्यौस ने ही किया था। पर वास्तविक बात यही है कि देश्चास के नगर बहुत दिनों तक आपस में ही लडते-जडते यक्कर चूर हो गए थे, और उनकी बहुत-सी शक्ति नष्ट हो जुकी थी। यदि उस समय कोई यथेष्ट वज्रवान् शक्ति उन लोगों के सामने आ जाए होती, तो वे इतने अधिक दुर्बल थे कि ठोक तरह से उसका मुकाबला नहीं कर सकते थे।

४. मकदूनिया का युग

इधर सैकड़ों वर्षों से मकदूनिया में कहाँ प्रेसे बगों के लोग रहते थे, जो वस्तुतः यूनानियों की ही संतान थे, पर जिनमें संभवतः कुछ उत्तरी जातियों का भी रहत मिथित हो गया था। हेल्लास के यूनानी उन लोगों को कभी शुद्ध यूनानी नहीं समझते थे। वे लोग परिश्रम-पूर्वक खेती-बारी का काम करते थे, और जंगलों में शिकार आदि करके अपना निर्वाह करते थे। वे सब वर्ग प्रायः आपस में भी लड़ा करते थे, और मकदूनिया के आस-पास थिसली, इल्लीरिया और थ्रेस के जो निवासी रहते थे, उनसे भी लड़ते रहते थे। वे लोग प्रायः असम्य ही थे। यूनानी ज्ञान तथा कला की उत्तरी में उन्होंने कोई सहायता नहीं की थी। वे वर्ग अपने-अपने सरदारों की अधीनता में विज़कुञ्ज बंगलियों की तरह रहा करते थे।

वहाँ सरदारों के कहाँ वंश थे, जिनमें से एक वंश का नाम आरगीटी था। यह वंश धीरे-धीरे बहुत बढ़वान् हो गया था, और आगे चलकर इसी वंश के लोग सारे देश के राजा होने लगे थे। इ० प० ४३३ में इस वंश का एक वयक्ति, जिसका नाम आरकेलास था, सारे मकदूनिया का राजा हो गया। उसने देश में बहुत-सी नई सड़कें बनवाकर और नए नगर बसाकर उसकी दशा बहुत कुछ सुधार दी थी, और अनेक कलाविदों को भी बहुत कुछ प्रोत्साहित किया था। कहाँ अच्छे गवैप, चिक्रकार और कवि उसके दरबार में रहा करते थे। आरकेलास की मृत्यु के उपरांत देश में

अव्यवस्था कैछ गई । आस-गास की कहे जातियाँ तथा वर्ग मकड़निया पर चढ़ दौड़े । अंत में फिलिप-नामक एक व्यक्ति ने उन लोगों से मकड़नियावालों की रक्षा की । और, है० १० ३२३ में वही मकड़निया का राजा भी हो गया ।

फिलिप वास्तव में बहुत योग्य व्यक्ति था, उसमें अनेक बड़े-बड़े गुण थे । वह अपने राज्य में अनेक प्रकार के सुधार करने लगा । जब वह नवयुवक था, तब एक बार थीव्सवाले उसे अपने यहाँ पकड़ ले गए थे । उन्होंने उसे कुछ दिनों तक अपने पास छोल में रखका था । उस समय प्रेमिननदास ने थीव्सवालों को युद्ध-विजय की जो-जो बातें बतलाई थीं, वे सब बातें फिलिप ने भी वहाँ रहने की दशा में सीख ली थीं । अब वह मकड़निया को सेना के सुधार में उन्हीं सब बातों का उपयोग करने लगा । उसने है० १० ३२३ में सारे थिसली-प्रदेश पर विजय प्राप्त कर ली, और वहाँ के निवासियों तथा इल्लीरियावालों को मार भगाया । समुद्र-तट पर के भी तीन-चार अच्छे-अच्छे जन्हों पर उसने अधिकार कर लिया, जिससे वहाँ की सोने की खाने भी उसके हाथ आ गई । अब अपनी बड़ी-बड़ी योजनाओं के अनुसार काम करने के लिये उसके पास यथोच धन हो गया । उस धन से उसने एक अच्छा जड़ाङ्गी बेड़ा तैयार किया । इस प्रकार कुछ ही दिनों में मकड़निया की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई । फिलिप के मन में यह आकंक्षा थी कि समस्त यूनानी सुमेर अपना सरदार और नेता मानें । अब उसने इतनी शक्ति भी संगादित कर ली थी कि वह इस पद पर पहुँच सकता था ।

यूनान के नगरों में न तो पहले ही कभी एकता थी, और न उन दिनों ही थी । यद्यपि दर्ये सवालों को बहुत कुछ कहु अनुभव

हो चुका था, पर फिर भी ऐसा जान पड़ता था कि उस अनुभव से उसने कोई शिक्षा नहीं प्राप्त की थी, वयोंकि आब भी वह अपने साथियों के साथ ठीक तरह से व्यवहार नहीं करता था। बाकी नगर भी पहले की ही तरह आपस में जागा-भिजा करते थे। यों तो देखास के यूनानी कभी किसी बात में आपस में सहमत नहीं होते थे, पर एक बात आवश्य ऐसी थी, जिसमें वे सब लोग एकमत थे। उन यूनानियों में कोई ऐसा नहीं था, जो फिलिप को यूनान का नेता होने के बोग्य समझता। इस विषय में उन लोगों का कहना यही था कि फिलिप असबी यूनानी ही नहीं है। दूसरी बात यह थी कि फिलिप राजा था, और यूनानी लोग कभी किसी राजा का प्रभुत्व सहन नहीं कर सकते थे। पर सच बात तो यह थी कि असल में वे न तो फिलिप की अधीनता में और न किसी दूसरे व्यक्ति की अधीनता में मिलकर एक होना चाहते थे।

इस प्रकार फिलिप की यह आकंचा देखकर देखास के यूनानी अपने मन में समझते थे कि यह इमारी स्वर्तंत्रता पर आक्रमण करना चाहता है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि फिलिप की बड़ती हुई शक्ति को रोकने के लिये यूनानियों ने कोई विशेष और उपयुक्त प्रयत्न किया था, पर फिर भी उसका जो योद्धा-बहुत विरोध हुआ था, वह मुख्यतः एथेंस की ओर से ही आया उसके प्रयत्न से हो हुआ था। और, एथेंस ने इस विषय में जो योद्धा-बहुत साहस दिखाया था, उसका मूल-आरण एक ही व्यक्ति था, जिसका नाम दिमास्थिनीज था। वह बहुत अच्छा बत्ता था। विक अच्छे-अच्छे जानकारों का तो यहीं तक कहना है कि संसार में आज तक दिमास्थिनीज से बढ़कर और कोई बत्ता हुआ ही नहीं। वक्तृत्व शक्ति के अतिरिक्त दिमास्थिनीज में

देशहितैषिता भी बहुत अधिक थी। फिलिप के प्रयत्नों और कार्यों को वह बहुत संदेह की दृष्टि से देखता था, और पृथ्वेसवालों को उसका अच्छा ज्ञाना विरोध करने के लिये उसकाने और उत्तेजित करने में उसने अपनी शक्ति-भर कोई बात ढाल नहीं रखती। हम काम में उसे बीच-बीच में घोड़ी-बहुत सफलता भी हो जाया करती थी, पर फिर भी जैसी सफलता चाहिए थी, वैसी उसे कभी नहीं हुई। पृथ्वेसवालों के पास ज तो सैनिक ही थे, और न सैनिकों को देने के लिये धन ही था; और अब तो उनके पास सेना का संचालन करने के लिये सेनापति भी नहीं रह गए थे। स्वयं डेमास्थिनोज को युद्ध-संबंधी कुछ भी ज्ञान नहीं था, और न वह यही समझता था कि फिलिप की शक्ति कितनी अधिक है। हेहास के दूसरे नगरों के विरुद्ध तो पृथ्वेस फिर भी कुछ-न-कुछ कार्रवाई कर सकता था, पर मकदूनिया को उस नहीं सेना के मुकाबले में, जिसका संचालन फिलिप-सरीखा सेनापति करता था, पृथ्वेस का कोई वश नहीं चलता था। और, यह बात निश्चित थी कि यदि पृथ्वेस किसी प्रकार फिलिप पर चढ़ाई करता, तो युद्ध छिपते ही पूर्ण रूप से परास्त हो जाता।

यह आक्रमण भी अचानक नहीं हुआ। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि इ० प० ३५० से ३४६ तक पृथ्वेस और मकदूनिया में कुछ-न-कुछ लड़ाई बराबर चलती रहती थी, पर उन दिनों फिलिप उत्तर की ओर अपनी शक्ति इड़ करने में लगा हुआ था, और अभी वह दक्षिण की ओर आने के लिये तैयार नहीं था। वह अब तक पृथ्वेस से बराबर खेलता खेल रहा था। हसी बीच में उसका विरोध करने के लिये पृथ्वेस ने थोड़से के साथ मिश्रता भी स्थापित कर ली थी। पर ज्यों ही फिलिप ने अपनी कुछ विशेष शक्ति के साथ दक्षिण की ओर प्रयान दिया, त्यों ही केवल एक युद्ध

में सारा क्रिस्ता ख्रृष्ण हो गया । वह युद्ध कैरोनिया-नामक स्थान में, ई० प० ३३८ में, हुआ था । वह युद्ध बहुत ही भीषण हुआ था । उसमें पूर्णे स तथा धीरसवाले बहुत अच्छी तरह जड़े थे । अत में हुआ बड़ी, जिसके होने की बहुत पहले से आशा थी । अर्थात् फिलिप के सामने इन दोनों की सम्मिलित सेनाएँ भी परास्त हो गईं । फिलिप को पूरी-पूरी विजय प्राप्त हुई, और कुछ समय तक इजास में फिलिप की सेनाएँ खूब मनमाने ढंग से चारों तरफ घूमती रहीं । धीरस और बोधिया को फिलिप ने अपने राज्य में मिला जिया, और लेकोनिया को खूब अच्छी तरह लूटा । उसके सिवा कैलिस और कोरिंथ में महादूनिया को पक्कटने रख दी गई । यद्यपि पूर्णे स के साथ बहुत कुछ रियायत की गई थी, तो भी उसे महादूनिया का मिश्र बनने के लिये विवश किया गया । फिलिप समस्त यूनानियों का स्वामी हो गया, और अब वह अपने मन की दूसरी बात पूरी करने के उपाय सोचने लगा । वह चाहता था, समस्त यूनानियों की एक बहुत बड़ी सेना लेकर पारस पर चढ़ाइँ करे । वह सोचता था, यदि मैं एशिया के यूनानी नगरों को भी स्वतंत्र कर लूँगा, और उन्हें पारस के बादशाह की अधीनता से छुका लूँगा, तो फिर मैं समस्त यूनानियों का राजा और सरदार बन जाऊँगा । यदि वह पारसी साम्राज्य पर आक्रमण करता, तो उसके सामने पारसी साम्राज्य का छिप-भिप हो जाना भी कोई बहुत बड़ी बात नहीं थी ; और तब एक यूनानी शासक समस्त (पश्चिमी) सम्बन्ध संसार का स्वामी हो सकता था ।

फिलिप ने अभी पारसी साम्राज्य पर चढ़ाइँ करने की तैयारी भी पूरी नहीं की थी कि वह मार डाका गया । वह घटना ई० प० ३३६ की है । पर अपना यह अधूरा काम वह अपने पेसे पुत्र पर लेंद गया था, जो इन कामों में उससे भी बड़ा-चड़ा था । सिंकंदर

उन आदमियों में से है, जिनके नाम के साथ इतिहास ने 'महान्' विशेषण लगा दिया है, और सिकंदर इस विशेषण का पूर्ण रूप से अधिकारी था। वह बान्म-भर आश्चर्य-जनक रूप से विजय प्राप्त करता रहा, और अपनी इन विजयों का उसने जिस हँग से उपयोग करना चाहा था, वह हँग और भी अद्भुत था। उसको इन सब विजयों का परिणाम यह हुआ कि सारे संसार का रूप ही बदल गया। वह केवल योद्धा और सेनापति ही नहीं था; उसमें युद्ध-बुद्धि तो असाधारण रूप से थी ही, पर इसके सिवा उसमें कुछ और भी विशेषताएँ थीं। उसको शिर्षा-दीर्घा बहुत अच्छी और जैसी चाहिए, जैसी ही हुई थी। ज्ञान तथा कलाओं के प्रति उसमें वैसा ही पूरा अनुराग था, जैसा यूनानियों में बहुत दिनों से होता चला आता था। सुप्रसिद्ध मूर्तिकार लिसिप्पस तथा चित्रकार एपेल्कीस पर उसकी बहुत कृपा रहती थी। उसने उस सुप्रसिद्ध विहान् अरस्तू से शिर्षा पाई थी, जो यूनान का सबसे बड़ा पंचित था। अरस्तू बहुत ऊँचे दर्जे का वैज्ञानिक और विचारशील था। उसमें अध्ययन की असीम शक्ति थी। उसमें एक बहुत बड़ा गुण यह भी था कि वह जिन विषयों को जानता था, लिखने के समय उनका विन्यास बहुत ही अच्छे ढंग से करता था। उसका विषय-विमाग भी बहुत प्रशंसनीय होता था। वह बहुत सदृश में यह समझ लेता था कि किन-किन बातों से दूसरी बातों के समझने में अधिक सहायता मिलती है। तात्पर्य यह कि वह ज्ञातव्य विषयों और बातों को बहुत ही अच्छे ढंग से और बहुत पूरी तरह से यथास्थान सजित करने की अद्भुत शक्ति रखता था। सिकंदर ऐसे ही गुरु का शिष्य था। आदे हेल्लास के यूनानियों ने कभी यह बात न मानी हो कि मकटूनियाँ-बाबे असबो यूनानी थे, पर इसमें संदेह नहीं कि पेरिवल्लीब के उपरांत सिकंदर ही सबसे बड़ा यूनानी कहजाने का अधिकारी

या। वस्तुतः यूनान की आत्मा उसी में सहस्री थी, और उसी ने उस यूनानी आत्मा की बड़ी-से-बड़ी विजयों के लिये मार्ग उन्मुक्त किए थे।

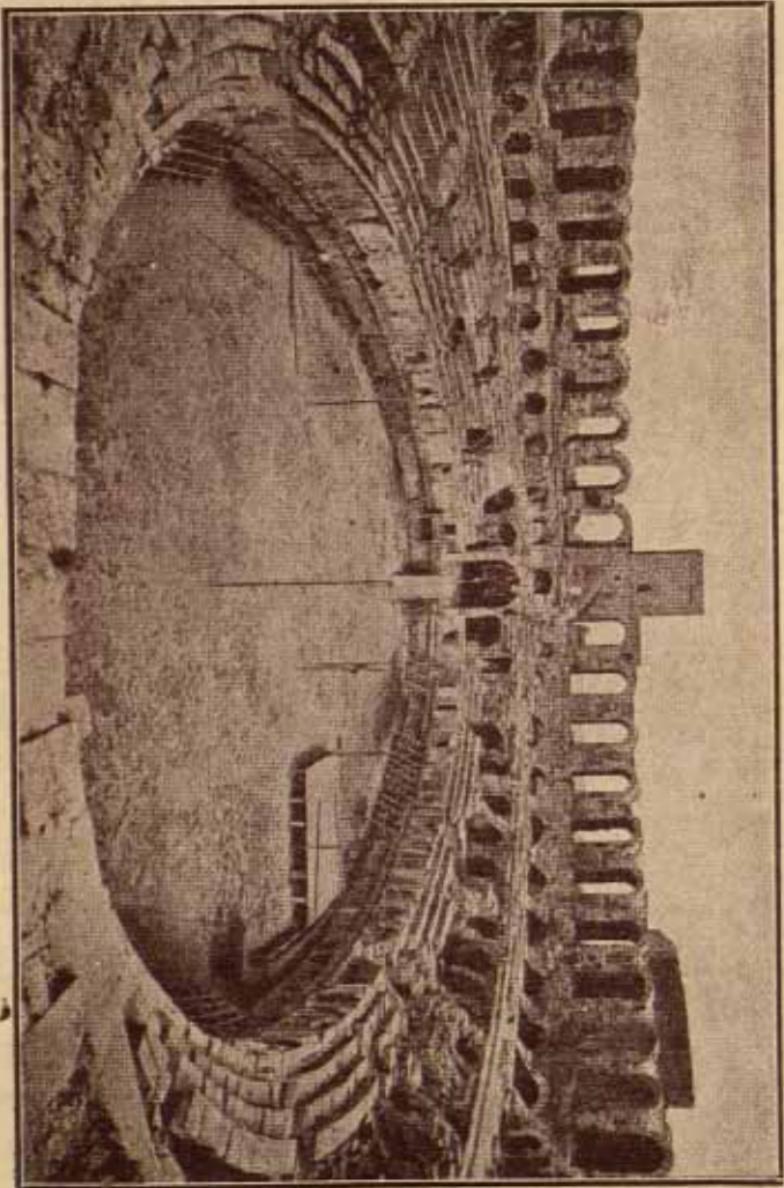
पारस पर आक्रमण करने के लिये निकलने से पहले सिंकंदर को पहले दो वर्ष अपने राज्य को हड़ करने में लगाने पड़े थे। इस चीज में उसने थोस और इष्टकीर्तिया पर आक्रमण करके उन्हें अपने अधीन किया था। उसने धोबस के विद्रोह का दमन किया था, शीदस-नगर नष्ट कर दिया था, और वहाँ के निवासियों को गुरुआमों के तौर पर बेचकर हेलकास पर अपना अधिकार हड़ किया था। इसके उपरांत ३५० पू० ३३४ में वह विदेशों पर आक्रमण करने के लिये तैयार हो गया। चलते समय उसने मिश्रों को ऐसी अच्छी-अच्छी चीज़ों उपहार-स्वरूप दी थीं कि उन मिश्रों को उससे पूछना पड़ा—“आखिर, आपने अपने लिये क्या बचा रखा है?” इस पर उसने उत्तर दिया था—“आशा।”

पारस का साम्राज्य अब भी पहले की ही तरह बड़ा और विस्तृत था; और आकार की विशालता के कारण उसकी जो प्रसिद्धि हुई थी, वह अभी तक बनी थी। उसके उस आकार अथवा प्रसिद्धि में अभी तक कोई अंतर नहीं आया था। पर हाँ, अब उसकी वह पहली शक्ति वहीं रह गई थी। वहाँ का बादशाह अयोग्य था, और सेना की दशा बहुत घ्राव हो गई थी। पारसवाखों की जो सेनाएँ कुछ अच्छी तरह लड़ी थीं, वे उन्हीं यूनानी सैनिकों की सेनाएँ थीं, जो भाड़े पर लड़ने के लिये खुलाई गई थीं। पर वे सैनिक भी संख्या में इतने अधिक नहीं थे, जो पारस की शक्तियों की उस नाशक विपत्ति से रक्षा कर सकते, जो पारसियों की बहुसंख्यक, परंतु निकम्मी और कायर सेनाओं के कारण पारसी साम्राज्य पर आ रही थी। परिणाम यह हुआ कि पारस की शक्ति को सिंकंदर

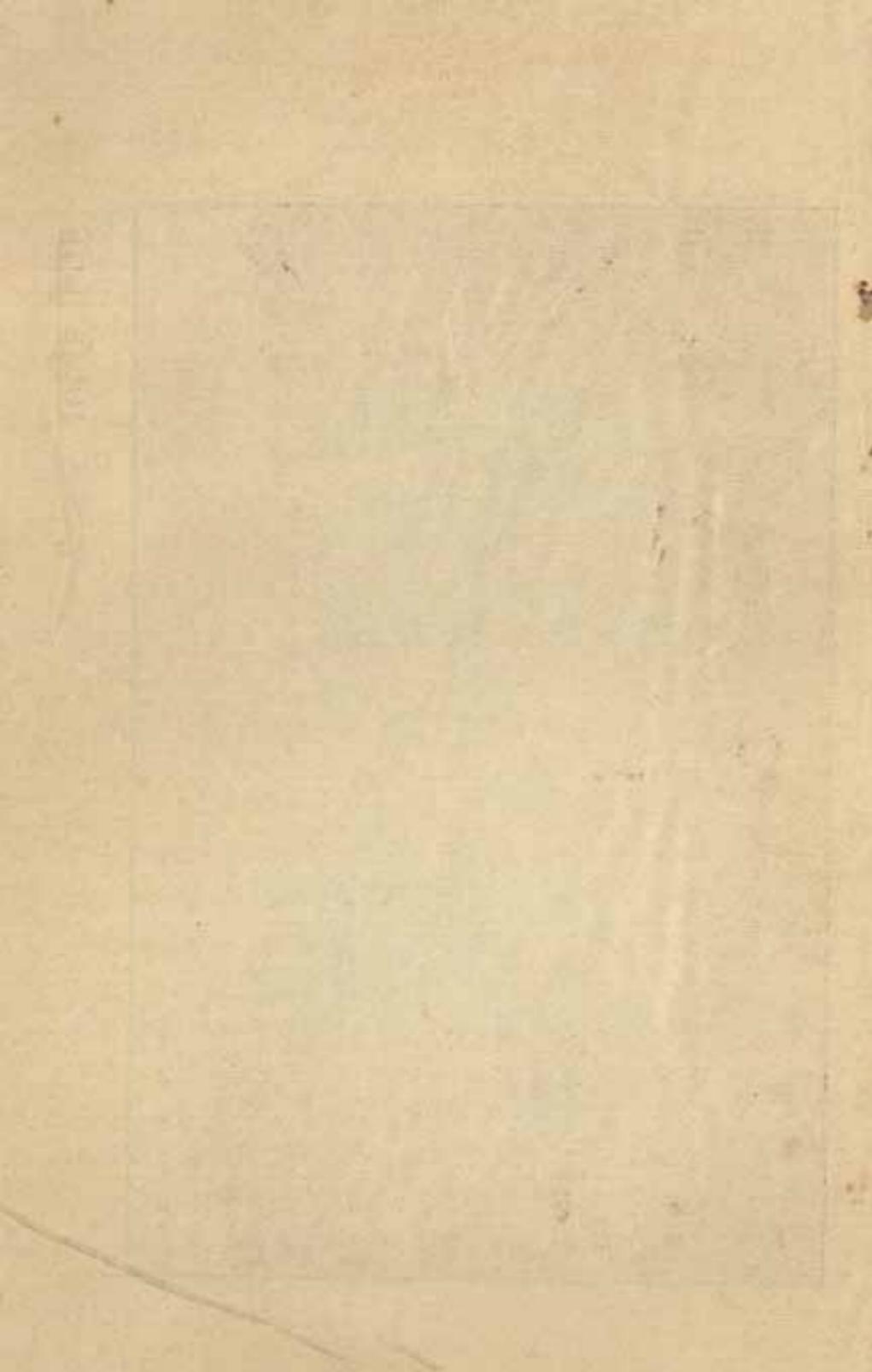
ने बहुत सहज में कुचल डाला। हेत्वास के बोटे-बोटे नगरनाम्य सिकंदर के इस अभिमान से मन-ही-मन जबते तो बहुत थे, पर उनमें से कोई कुछ कर नहीं सकता था। सिकंदर ने अपने साथ ३८,००० सैनिकों को लेकर हेत्वेस्पोंट-नामक स्थान पार किया था, जिनमें से आधे तो मकड़निया के निवासी थे, और चाही थे-स, घिसली तथा उनके आस-पास के रहनेवाले भी थे। वह जिधर चढ़ाइ करता था, उधर बराबर जीतता हुआ ही चला जाता था। है० प० ३३४ में उसने ड्रैनिंगस-नामक स्थान में पारसी सेना को पूर्ण रूप से परास्त किया, और तब वह यूनानी नगरों को पारसियों के शासन से मुक्त करता हुआ पश्चिया माझनर से होकर आगे बढ़ने लगा। आगे बढ़ने से पहले वह आस-पास के उन सभी ज़ोरों को साक़ करता चलता था, जिनसे उसे किसी प्रकार के शत्रुता-पूर्ण व्यवहार की आशा थी। इसकिये है० प० ३३५ में उसने आइसस-नामक स्थान पर पिछर एक बार पारसियों को परास्त किया, और तब वह दक्षिण की ओर सुमारा। उसने टायर पर अधिकार कर दिया, और पारसवालों से उनका फिनीशियन जहाज़ी बेड़ा छीन लिया। अब वह समुद्र के किनारे-किनारे आगे बढ़ने लगा, और गाज़ा-नामक स्थान पर आक्रमण करके उसने मिल में प्रवेश किया, और उसे अपने राज्य में मिला दिया। वहाँ उसने कुछ दिनों तक ठहरकर अपने नाम से असंकेदिरिया-नामक नगर बसाया, जो बहुत शीघ्र पूर्वी भूमध्यसागर का एक खास बंदरगाह बन गया।

है० प० ३३१ में वह पारसी साम्राज्य के केंद्र पर आक्रमण करने के किये तैयार हो गया था। आरबेला के युद्ध में उसने पारसी सेनाओं को पूरी तरह से परास्त किया था, और उसके थोड़े ही दिनों बाद पारस के बादशाह दारा की मृत्यु हो गई। वैविज्ञोन, सूपा, परसियोविस और एकबेटाना आदि पारसी साम्राज्य के

पुरानी दुनिया



आरलीज का अध्याप



सभी नगरों ने एक-एक करके उसके हाथ में आत्मसमर्पण कर दिया। पर उसकी बचाकांडा अभी तक पूरी नहीं हुई थी; इसलिये पहले तो वह सोयडियाना गया, और तब वहाँ से होता हुआ सीधा भारत तक आ पहुँचा। १०००० २२७ में उसने सिध-नद पार किया। यहाँ मार्ग में जो सेनाएँ उसके सामने पड़ती थीं, उन्हें दराता हुआ वह सतलज-नदी तक आ पहुँचा। पर वहाँ पहुँचकर उसके सैनिकों ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। इधर सात वर्षों से वे लोग बराबर आगे बढ़ते चले आ रहे थे, और अपने निवास-स्थान से बहुत दूर निकल आए थे। वे योरप से बहुत दूर आगे नहीं जाना चाहते थे। इसलिये सिकंदर को विवश होकर पीछे छोटना पड़ा ⁸। वह अपनी सेना लेकर परिचम की ओर बढ़ा।

वहाँ उसे सिध के रेगिस्तान का एक भाग पार करना पड़ा, जिसमें साठ दिनों तक उसके सैनिकों को भीषण कष्टों और विप्र-चियों का सामना करना पड़ा था। इसी रेगिस्तान में उसके तीन-चौथाई सैनिक नष्ट हो गए थे। यह रेगिस्तान पार करने पर उसने कुछ समय तक विश्राम किया, और फिर से सेना पूकत्र की। वहाँ से

* सिकंदर के साथ जो यूनानी इतिहास-लेखक भारत में आए थे, उन्हीं के लेखों के आधार पर यह कहा जाता है कि अपने सैनिकों के आगे बढ़ने से इनकार करने पर सिकंदर को विवश होकर खदेश की ओर लौटना पड़ा था। पर हाल में मारतीय विद्वानों ने इस विषय में जो खोज की है, उससे सिद्ध होता है कि उस समय मगव में चंद्रगुप्त मौर्य का बल बहुत बढ़ रहा था, और अपनी यकी हुई सेना को लेकर सिकंदर को चंद्रगुप्त मौर्य का सामना करने का साहस नहीं होता था; इसलिये वह सब परिथितियों को समझ-बूझकर आगे नहीं बढ़ा, और खदेश लौट गया।—अनुवादक

वह मक्कदुनिया को और लौटा । वह अभी और बहुत-से देशों पर विजय प्राप्त करने को चिंता में था, पर इसी बीच में वह भीषण उत्तर से पीछित हुआ, और है० पू० ३२३ में, बैदिकोन में, उसका स्वर्गवास हो गया ।

योहे ही दिनों में सिंकंदर ने इतने अधिक भूभाग को जीतकर अपने अधीन कर लिया । जितने अधिक भूभाग पर उससे पहले कभी किसी पृक आदमी का अधिकार नहीं हुआ था । यद्यपि उसे विजय आदि प्राप्त करने का बहुत ही योग्य समय मिला था, तो भी उसने भली भाँति यह सिद्ध कर दिखाया था कि जीते हुए प्रदेशों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिए, और उनकी व्यवस्था कैसे करनी चाहिए । उसका मुख्य उद्देश्य यह था कि पूर्व और पश्चिम का, योरप और एशिया का, यूनान और पारस का संयोग करा दिया जाय, और वह उन सब पर समिलित शासन करना चाहता था । उसने अपने यूनानी अक्षकरणों को पारसी राजकुमारियों के साथ विवाह करने के लिये उत्साहित किया था, और स्वर्य उसने भी दारा की कम्या के साथ अपना विवाह किया था । वह जहाँ कहीं जाता था, वहीं यूनानी ढंग के नगर बसाता था, और यूनानियों से उनमें आकर बसने के लिये कहता था । (कहा जाता है, उसने इस प्रकार के सत्तर नगर बसाए थे ।) ऐसे नगरों के बसाने में उसके दो हेतु थे—पृक तो यह कि वे नगर गढ़ों और किलों का भी काम दें, जिसमें आस-पास के बड़े-बड़े प्रांत उसके भक्त और निष्ठ बने रहें, और दूसरा हेतु यह था कि उसके साम्राज्य के पूर्वी प्रदेशों में व्यापार और सभ्यता के केंद्र स्थापित हों । वह अपने जीते हुए प्रांतों में यूनानी शब्दनृत तियुक्त करता था, पर वहाँ के निवासियों के रहन-सहन के उन पुराने ढंगों में कोइं विशेष परिवर्तन नहीं करता था । उसकी सभी बातों से ऐसा जान पड़ता है कि वह निश्चित रूप

से एक बड़े साम्राज्य की नींव स्थापित करना चाहता था, और उसकी इच्छा थी कि मेरे सारे साम्राज्य में एक ही प्रकार की सम्यता दिखाई पड़े।

उसका यह विचार बहुत उच्च था। उसके कार्यों का परिणाम यह हुआ कि सारे संसार के इतिहास में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया। उसने पूर्व को यूनानी प्रभावों से प्रभावान्वित किया। उसने जो हार खोला था, उससे पूर्व में यूनानी-भाषा तो आई ही थी, उसके साथ सम्यता की भी एक बही बाद-सी था गई थी ॥। यहाँ तक कि उसके जीते हुए प्रदेशों के गाँवों और देहातों तक में यूनानी प्रभाव पहुँच गया था, और बड़े-बड़े नगर तो मानो उसकी शक्ति के सुरूप केंद्र ही हो गए थे। पर हतना अवश्य है कि उसके कारण पूर्वी देशों में जिस सम्यता का प्रचार हुआ था, उसमें परिया के तरफ को बहुत-सी पुरानी बातें भी मिली हुई थीं। इसीलिये इस मिश्रण का बोधक जो हैंगरेज़ी-शब्द(Hellenistic)है, वह इस बात का सूचक है कि वह सम्यता यूनानियों की सम्यता से मिलती-जुलती हुई और उसी के दैंग की थी। इसका यह अर्थ^{*} नहीं कि वह शुद्ध यूनानी थी। स्वयं सिक्क-

* मूलनेत्रक का यह मत फ़ारस और अफ़्गानिस्तान आदि देशों के संबंध में तो बहुत कुछ मान्य हो सकता है, पर भारत के संबंध में उतना अधिक नहीं। एक तो भारत के बहुत ही थोड़े अंश में सिकंदर की सेनाएँ पहुँच सकी थीं, और दूसरे यहाँ के निवासी उस समय भी परम सम्भ थे, इसलिये भारत के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता कि यहाँ भी यूनानी सम्यता की बाढ़ आ गई थी। यूनानियों के साथ मारीयों का अनेक क्षेत्रों में बहुत कुछ आदान-प्रदान हुआ था, और स्वयं यूनानियों ने ही भारत से बहुत कुछ सीखा था। —अनुवादक

दर ने दी पूर्व या पश्चिया की बहुत-सी बातें ग्रहण कर की थीं, जिसके कारण उसके सैनिक और हेलास के बहुत-से यूनानी उससे अप्रसन्न हो गए थे । विशेषतः इस कारण वे लोग उससे और भी अप्रसन्न हुए थे कि उस पर पूर्वीय भावों और विचारों का इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि वह देवतों के समान अपनी पूजा तक करने के लिये उसके हो गया था । यथापि उसकी सम्मता मिथित थी, तो भी वह देखने में यूनानी ही जान पड़ती थी, और यूनानी ढंग पर ही चलती थी । यही कारण या कि वह पश्चिम में बहुत दिनों तक बनी रही । पश्चिया के अनेक देशों की सम्मता सैकड़ों वर्षों तक यूनानी ढंग की ही रही । जब अस्त्रों का झोर हुआ, तब वहाँ आकर उस सम्मता का रूप बदला । यहाँ तक कि बद्र रोम ने बद्रवान् होकर पश्चिया पर विजय प्राप्त की, तब न तो उसने इन सब बातों को बदलने का ही कोई प्रयत्न किया, और न उसमें इनके बदलने की शक्ति ही थी । पूर्व या पश्चिया में जो रोमन साम्राज्य था, उसकी भी कहाँ मुख्य-मुख्य बातें यूनानी ही थीं ।

इस प्रकार सिकंदर की विजय ने पश्चिया के अनेक पुराने देशों में बहुत कुछ नवीन सम्मता का प्रचार किया था, और इस संबंध में उसने जो कीर्ति संपादित की थी, वह उससे किसी प्रकार छीनी

* यहाँ आकर मूर्खोंके ने भी एक प्रकार से यह बात मान ली है कि पश्चिया और विशेषतः भारत में बहुत-सी ऐसी अच्छी और नई बातें थीं, जिन्हें मुण्ड-ग्राहक सिकंदर ने ग्रहण कर लिया था । इसी से इस मत की भी पुष्टि होती है कि भारतवासियों पर यूनानियों का जितना प्रभाव पड़ा था, उसकी अपेक्षा यूनानियों पर भारतवासियों का अधिक प्रभाव पड़ा था । — अनुवादक

नहीं जा सकती। पर यदि संसार पर शासन करने के विचार से देखा जाय, तो यही मानना पड़ेगा कि उसे सब बातों की ठीक-ठीक अवश्य करने का समय ही नहीं मिला था, और न वह अपना कोई उत्तराधिकारी ही नियत कर सका था। उसने सारे संसार को एक ऐसा बड़ा साम्राज्य स्वापित करके दिखाका दिया था, जिसमें प्रायः सभी जातियाँ आ गई थीं। पर हस साम्राज्य की उपर्युक्त अवश्य करके उसे दइ करने से पहले ही उसे सुखु ने आ देरा। अभी तक उस बड़े साम्राज्य का उपर्युक्त समय ही नहीं आया था, जिसमें एहिया और योरप दोनों एक साथ अंतसुंक्त हो सकते।

सिंकंदर की मृत्यु के उपरांत उसके साम्राज्य में सभी जगह उसके सेनापति आपस में छाड़ने-झगड़ने लगे। उनमें से प्रथमेक सेनापति यही चाहता था कि या तो सारा साम्राज्य में ही अपने अधिकार में कर लूँ, या उसका अधिक-से-अधिक जितना अंश हो सके, उतने पर ही अधिकार कर बैठूँ। इस झगड़े का एक यह परिणाम अवश्य हुआ कि आफ्रिका, पश्चिया और योरप के निवासी अपने-अपने स्थान पर स्थित हो गए। मिल में सारा अधिकार टाकोमी-नामक एक सेनापति के हाथ में चला गया। उसने वहाँ इडता-पूर्वक अपना अधिकार चमा लिया, और उसके बंशधरों ने वहाँ दो सौ वर्षों तक राज्य किया। इसके उपरांत उनकी शक्ति धीरे-धीरे ढीण होती गई। इसका मुख्य कारण यही था कि वहाँ कई दल राजसिंहासन के लिये आपस में जानेभिन्ने लग गए थे। इसके सिवा बाहरी शत्रुओं के साथ भी उन्हें अनेक युद्ध करने पड़े थे। अंत में रोमन लोग वहाँ का पहुँचे, और उन्होंने उस देश पर अपना पूरा अधिकार कर लिया। पश्चिया में सिंकंदर के चो प्रांत थे, उन पर सेल्यूक्स ने अधि-

कार कर लिया, और उसके उत्तराधिकारियों ने पश्चिमी एशिया के राज्यों को मिलाकर सीरिया का राज्य स्थापित किया। सीरिया भी मिस्र के साथ बराबर लड़ता रहता था, जिससे उसकी शक्ति भी धीरे-धीरे कम होती गई, और पीछे से दसे भी रोम ने योद्धा-योद्धा करके बीत लिया। योरप में कभी शांति स्थापित न हो सकी। वों तो यूनान की सभी रियासतों में मक्कूनिया सबसे अधिक बढ़वान् था, पर वहाँ भी बहुत कुछ असंतोष फैला हुआ था, और सदा लड़ाई-झगड़े होते रहते थे। इसके उपरांत वहाँ कोइं पेसा राजा नहीं हुआ, जो देखास के नगरों पर वैसा ही पूर्ण अधिकार रखता, जैसा फिलिप और सिकंदर ने रखा था। वे नगर ज्यर्थ ही आपस में लड़ा-झगड़ा करते थे, और पेसे ही संघ बनाया करते थे, जो न तो स्थायी ही होते थे, और न कुछ कर ही सकते थे। यूनान, बल्कि उसके साथ-साथ यूनानी युग का सारा संसार लड़ा-झगड़कर पूर्ण रूप से शिथिर हो गया था। ये सभी राज्य और रियासतें किसी तरह अपने दिन पूरे बर रही थीं, मानो इस बात की प्रतीक्षा कर रही थीं कि कोइं बड़ी और बढ़वती शक्ति आकर हम लोगों पर अधिकार कर ले, और हम पर शासन करने लगे। और, यह बात तब हुई, जब रोमन-राज्य ने पूर्व की ओर

* पश्चिमी भारत के जिस थोड़े-से अंश पर सिकंदर ने अधिकार किया था, वह अंश भी चंद्रगुप्त मौर्य ने उससे बहुत शीत्र लुड़ा लिया; बल्कि साथ ही सिंध-नदी के पश्चिम का भी बहुत-सा प्रदेश उसे सेत्यूक्स से मिल गया। इसके अतिरिक्त सेत्यूक्स को अपनी कन्या एथीना का विवाह भी चंद्रगुप्त के साथ कर देना पड़ा। इस प्रकार भारत पर सिकंदर का आक्रमण और अधिकार एक पेसी मामूली हवा की तरह था, जो एक तरफ से आती है, और दूसरी तरफ निकल जाती है।—अनुवादक

रखा किया। इसकिये अब हम जोगों को फिर पीछे की ओर मुड़ना चाहिए, और यह देखना चाहिए कि रोम का प्राचीन इतिहास क्या था, तथा रोमवालों ने किस प्रकार धीरे-धीरे सिकंदर की बादशाहत पर कङ्गजा किया। परंतु ऐसा करने से पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि यूनानियों से संसार को मुख्यतः कौन-कौन-सी बातें मिली थीं। वस्तुतः इस समय योरप में जो सभ्यता फैली हुई है, उसका मुख्य आधार यूनानी ही है। यूनानियों ने ही सारे योरप को वे बातें सिखाई ही थीं, जिन पर उनकी समस्त आधुनिक सभ्यता का आधार है। अतः यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि जो यूनानी आधुनिक सभ्य संसार के शिष्टक और गुरु थे, वे कैसे थे, और उन्होंने क्या-क्या काम किए थे? आगले प्रकरण में ये ही बातें बताई जायेंगी।

५. संसार पर यूनानियों का अध्ययन

जिस प्रकार विदिशा जाति के सब लोग एक समान नहीं हैं, उन सबमें कहूँ प्रकार के अंतर हैं, उसी प्रकार यूनानी जाति के सब लोग भी एक समान नहीं थे। उन सबमें भी कहूँ प्रकार के अंतर थे। पर्येस और स्ट्राटी के निवासियों में उत्तरा ही अंतर था, जितना हँगलैंड और स्कालैंड के निवासियों में है। जब इस संसार पर यूनानियों के अध्ययन का उल्लेख करते हैं, तब पाठकों को इस बात का स्मरण-रखना चाहिए कि हमारा अभिप्राय विशेषतः पर्येसवालों से है, और मुख्यतः पर्येस के उन निवासियों से है, जो पेरिक्लीज के समय में या उसके कुछ बाद हुए थे, क्योंकि यूनानियों की अधिक-से-अधिक और अच्छी-से-अच्छी बातें पर्येसवालों से ही विकसित हुई थीं, और उन्होंने मैं थीं। पर्येस से जितनी अच्छी बातें पश्चिमी संसार को प्राप्त हुईं, उन सबकी सुषिठ पेरिक्लीज के ही द्वारा मैं हुई थीं।

एक बात यह भी है कि विस तरह आजकल किसी एक नगर के सभी निवासी सब बातों में एक-से नहीं होते, उसी तरह उस समय भी पर्येस के सभी निवासी एक-से नहीं थे। पर्येस के बहुत-से निवासी चतुर या कला-कुशल थे और बहुत-से नितांत

* जिस प्रकार यूनान से मूल-ज्ञातक का अभिप्राय केवल पर्येस के निवासियों से है, उसी प्रकार संसार से उनका अभिप्राय केवल पादचार्य संसार या योरप से समझना चाहिए, क्योंकि यह बात निश्चित है कि मध्य और पूर्वी एशिया के जीवन पर यूनानियों का प्रभाव शायद ही कहीं नाम-मात्र को पढ़ा हो। —अनुवादक

मुख्य या गवर्नर। अतः पहले हम संचेप में यह बतला देना चाहते हैं कि उन विद्वानों एथेंस के निवासी साधारणतः कैसे होते थे। साथ ही हमें यह बात भी समझ रखनी चाहिए कि उनमें से कुछ लोग अच्छे भी थे और कुछ बुरे भी, तथा कुछ लोग इसके अपवाद रूप भी थे।

सबसे पहले हम यह बतला देना चाहते हैं कि जिस प्रकार धार्मिक विषयों में संसार में सबसे अच्छे शिक्षक यहूदी हुए हैं, उसी प्रकार संसार को सौंदर्य का स्वरूप बतलाने में यूनानी लोग सबसे बढ़कर हुए हैं। जिन लोगों ने यूनानी साहित्य का अच्छा अध्ययन और यूनानी कला का अच्छा निरीक्षण किया है, उन्हें इस बात में तनिक भी संदेह नहीं कि यूनानियों ने हो सबसे पहले मानव-जाति को यह समझाया था कि सौंदर्य किसे कहते हैं, और किस प्रकार की शक्ति से सुंदर वस्तु प्रस्तुत की जा सकती है। इमारे पास यहाँ इतना स्थान नहीं है कि हम अपने इस कथन को पुष्टि में यूनानी साहित्य के उद्दरण अपने पाठकों के समन्वय स्थित करें, और न यूनानी कला के अच्छे-अच्छे छायाचित्रों से ही उसके वास्तविक गुणों का पता चल सकता है। तो भी संचेप में हम यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि यूनानी लोग किस प्रकार का सौंदर्य प्रसंद करते थे, और वे किस प्रकार उसे दृष्टिगोचर कराने का प्रयत्न करते थे।

(१) सबसे पहली बात तो यह है कि यूनानी सौंदर्य सदा

* मूल-लेखक का यह कथन उसके संकुचित दृष्टिकोण का बहुत अच्छा परिचायक है। यह तो माना ही नहीं जा सकता कि इतना बड़ा विद्वान् भारत के आध्यात्मिक विचारों से परिचित न हो; फिर भी इस विषय में यहूदियों को ही प्रमुख स्थान देना संकीर्णता नहीं, तो और क्या है? — अनुवादक

सादा और सरल होता है। यूनानी क्लोग बहुत इयादा बारीकी या बहुत इयादा सजावट नहीं पसंद करते थे। उदाहरणार्थ, सिमनाइड की वह डक्कि कीजिए, जो थरमापिली में उस स्थान पर एक पथर पर अंकित है, लहाँ स्पार्टा के तीन सौ योद्धा कट मरे थे, पर अपने स्थान से हटे नहीं थे। वह लेख केवल इतना ही है—“ऐ अजनवी ! तू स्पार्टा के निवासियों से कह दे कि आप लोगों की आज्ञा शिरोधार्य करके इम जोग यहाँ पढ़े हैं ।”

कवि को जो कुछ कहना था, वह सब उसने इन्हाँ दो पंक्तियों में कह दाला है। न तो इसमें एक भी शब्द अर्थक्रम कहा गया है, और न किसी प्रकार की अनुभूति को उत्तेजित करने का दी कोई प्रयत्न किया गया है। इससे सैनिकों का साहस और कर्तव्यप्राप्त्यात्मा विना बताए हुए आप-से-आप प्रकट हो रही है। आजकल भी युद्धों के बड़े-बड़े स्मृति-चिह्न बनते हैं, और उन पर बड़ी-बड़ी तारीफ़ लिखी जाती हैं। ज़रा उन तारीफ़ों से ऊपर दिए हुए वाक्य से तुजना कीजिए। यूनानी क्लोग किसी वस्तु को ऐसा स्वरूप देते थे कि वह अपनी प्रशंसा आप ही, विना किसी के कहे या सुन्नाए हुए, करा लेती थीं। पर आजकल के क्लोगों में यह बात नहीं पाई जाती। आजकल सो कोई बढ़िया बात कहने का प्रयत्न करके ही उसकी सारी सरकारा नष्ट कर दी जाती है। यूनानी साहित्य में जो सर्वध्रेष्ठ अंग है, उसमें सब जगह यह सरलता आप-से-आप अर्थक होती है। उदाहरण के लिये थ्यूसिदाइडीज के उस वर्णन का अंतिम अंग

फ़ारसी की एक कहावत है—

مشک آنست کہ خود ببُوید نہ کہ عطار بگوید
अर्थात् करतूरी वह है, जो रवयं ही सुगंध दे, न कि अत्तार उसकी प्रशंसा करे।

के जीजिए, जिसमें यिसलीवालों के आक्रमण या अूसिहाइडोव के नगर के ध्वस्त होने का वर्णन है। (यह वर्णन कुछ बड़ा होने के कारण यहाँ उद्भृत नहीं किया गया।) अथवा प्लेटो का वह अंतिम वचन ले जीजिए, जो उसने अपने गुह और मित्र सुक्रात की मृत्यु के वर्णन के अंत में कहा है, जो इस प्रकार है—“बस, इसी प्रकार हमारे उस मित्र का अंत हुआ था, जिसे हम अपने देखे और जाने हुए आदमियों में से सर्वश्रेष्ठ, सबसे अधिक दुष्टिमान् और सबसे अधिक न्यायपरायण कह सकते हैं।” सरलता का यही गुण हमें यूनानी मंदिरों में भी मिलता है, और हम कह सकते हैं कि यूनानियों ने जितनी सुंदर वस्तुएँ प्रस्तुत की, उनमें सबसे अधिक और पूर्ण रूप से सुंदर उनके मंदिर ही हैं। और, यदि वों देखा जाय, तो उन मंदिरों में सिवा हसके और कुछ भी नहीं है कि एक जंदा कमरा है, जिस पर चिपटी-सी छत है, सामने एक बरामदा है, और बाहर कुछ रुम्मे हैं। जंदन के ब्रिटिश अूज़ियम में जो बहुत-सी पारथेन मूर्तियाँ हैं, उनमें भी यही सरलता पाई जाती है। उन मूर्तियों में एक ऐसे जलूस का दरव दिखाया गया है, जो एक त्योहार के अवसर पर निकल रहा है। उन मूर्तियों को पहलेपहल देखने से यही जान पड़ता है कि ये सभी मूर्तियाँ प्रायः एक समान हैं, और इनमें परस्पर कोई विशेष अंतर नहीं है, जो दृश्यकों को चकित कर सके। पर फिर भी उन सब मूर्तियों से कैसी शांति और शोभा टपकती है। यूनानी कृतियों में केवल सरलता का ही नहीं, बल्कि सजावट का भी सौंदर्य है। वह सजावट आवश्यकता से अधिक हो गई है। सबसे अधिक और शुद्ध सौंदर्य यूनानों सरलता में ही है।

(२) जिस प्रकार यूनानी कला सरब होती है, उसी प्रकार वह प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न करनेवाली भी होती है। यूनानी कलाविद् को जो कुछ कहना या कर दिखाना होता है, उसे वह विज़कुञ्ज सीधी और सच्ची तरह से कह चलता या कर दिखाता है। वह आपके सामने न तो बातों या कृतियों का देर ही लगाता है, और न वह अपनी चालाकी ही दिखाना चाहता है। यदि किसी यूनानी कवि को किसी पक्षी का बर्यन करना होगा, तो वह कभी उस दंग से बर्यन न करेगा, जिस दंग से आजकल के कवि करते हैं। मनुष्यों में जितने प्रकार के विचार और अनुभूतियाँ आदि होती हैं, वे उन सबका उस पक्षी में आरोप करने का प्रयत्न करते हैं। पर यूनानी कवि किसी पक्षी को जिस रूप में देखते हैं, उसी रूप में उसका बर्यन करते हैं। आएकमन-नामक एक यूनानी कवि ने एक स्थान पर एक पक्षी के संबंध में कहा है—“जिस प्रकार जलचर पक्षी निर्शित होकर तरंगों के ऊपर विचरते हैं, उसी प्रकार बसंत का नील पक्षी भी विचरता है।” होमर के बर्यनों और उपमाओं आदि में भी यही गुण है; और प्रकृति के जितने यूनानी चित्र हैं, उन सबमें भी यही विशेषता है। जीवन और मृत्यु के संबंध में भी उनके विचार इसी प्रकार के दिखाई पड़ते हैं। वे जोग विज़कुञ्ज सत्य बातें बहुत ही स्पष्टता-पूर्वक कहते हैं। कभी-कभी उनकी कल्पनाएँ छठोर और शुष्क भी ज्ञान पड़ती हैं। हमारे आधुनिक कवि बड़ी-बड़ी अतिशयोक्तियों और दंभ-पूर्ण उक्तियों से अपनी कृतियाँ नष्ट कर देते हैं; पर यूनानी कवि कम-से-कम ऐसी बातों से सो अवश्य बचते हैं। हेरोडोटस ने अपनी यात्राओं में जो-जो बातें देखी-सुनी थीं, अथवा उन बातों के संबंध में उसे जो कौतूहल हुआ या, उन सबका बर्यन जितना सरब है, उतना ही चमत्कार-पूर्ण भी। इसीलिये अँगरेजी के सुपसिद्ध कवि वड-

स्वर्थम् ने कहा है—“आज तक वाहविल को छोड़कर इतना मनोरंजक और बोधप्रद कोई दूसरा ग्रंथ नहीं हुआ है, जितना हेरोडोटस का है।”

(३) यूनान की सारी कला कारीगरी और कौशल से भरी हुई है। यूनानी कलाविदों की कृतियों में सरकाता तो इसी है, पर वह सरकाता सापरवाड़ी की कारीगरी से नहीं आई जाती। ऐसा जान पड़ता है, यूनानी कवि वैसों पंक्तियाँ लिख ही नहीं सकते थे, जिन्हें निकट तुकबंदी कहा जाता है। यूनानी मंदिर होते तो बहुत ही सारे हैं, पर उन्हें देखते ही पता चल जाता है कि वे ऐसे आदमियों के बनाए हुए हैं, जिन्होंने कोणों और रेखाओं आदि की अच्छी तरह नाप-बोख करके उनका सब हिसाब पहले से बैठा लिया था, और तब सारा मंदिर बहुत ही सावधानी से प्रस्तुत किया था। यही बात यूनानी मूर्तियों में भी पाई जाती है। जब यूनानी मूर्तिकार कोई मूर्ति बनाने लगता है, तब वह संगमरमर के तल पर की कठोरता का एक-एक कण मिटाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करता है; और इसके लिये चाहे कितना ही परिश्रम क्यों न करना पढ़े, वह उसे अध्यं नहीं समझता। पर फिर भी न तो वह कभी उस पर आवश्यकता से अधिक परिश्रम करता है, और न अपने पर्याप्त को कोमल या अप्राकृतिक रूप देता है। सुना जाता है, अकलात्मक या प्लेटो ने अपने एक ग्रंथ के आरंभ के आठ शब्द के बाज इसीलिये कहे थे कि उनके पढ़ने में उपर्युक्त प्रवाह आ जाय, और कहीं कोई खटक न रह जाय।

यूनानियों के संबंध में सबसे अधिक आश्चर्य-जनक बात यह है कि छोटे-छोटे सभी लोगों में यह सौंदर्य-ज्ञान समान रूप से पाया जाता है। यह बात नहीं है कि आजकल के लोगों की

तरह यह सौंदर्य-ज्ञान के बजाए उन घोड़े-से बहुत बड़े-बड़े आदिमियों में ही हो, जो जन साधारण से बहुत आगे बढ़े हुए हैं। यूनान के सभी लोगों में सौंदर्य का आश्चर्य-ज्ञानक ज्ञान और प्रेम होता था; और वहाँ के बड़े-बड़े कलाविद् उन लोगों के सरदारों के समान ज्ञान पढ़ते हैं। अब हमें यह ज्ञानने का प्रयत्न करना चाहिए कि जन साधारण तक में इस प्रकार का सौंदर्य-ज्ञान तथा सौंदर्य-प्रेम कहाँ से और कैसे आया। व्योंकि यूनानियों के संबंध में यह बात बहुत ही विलङ्घण और असाधारण है; और उनके सिवा और कोई ऐसी ज्ञाति नहीं हुई है, जिसके सभी लोगों में सौंदर्य का इतना अधिक ज्ञान और प्रेम हो।

(१) यूनानी लोग स्वयं ही शरीर से सुंदर होते थे। यह बात नहीं है कि सभी यूनानी समान रूप से सुंदर होते थे, परं किर भी ऐसा ज्ञान पढ़ता है कि प्रायः यूनानी सुंदर ही होते होंगे। वे लोग बहुत अधिक खाते-पीते नहीं थे। वे प्रायः खुले मैदानों में रहते थे, और उन्हें दौड़ने-घूपने, कुरती लड़ने और अनेक प्रकार के व्यायाम करने का बहुत शौक था, जिससे वे लोग बहुत स्वास्थ रहते थे। आजकल के बहुत-से पाश्चात्य पढ़ावान या कसरती आदि अपने कुछ छांगों या उनके रण-पट्टों को तो बहुत मज़बूत कर लेते हैं, और बाकी रण-पट्टों को बहुत कमज़ोर ही रहने देते हैं। परं प्राचीन यूनानियों में यह बात नहीं थी। वे वही सौंदर्य पसंद करते थे, जिसमें समस्त अंगों का समान रूप से विकास हुआ हो। वे चाहते थे, सब अंगों में समान अनुपात हो, और सारा शरीर सुडील और सौंचे में डला हुआ हो। उन लोगों ने अपने देवतों और वीरों आदि की जो मूर्तियाँ बनाई हैं, उनमें इसी प्रकार का सौंदर्य देखने में आता है। इस प्रकार के सौंदर्य और विशेषतः पुरुषोचित सौंदर्य के वे बहुत बड़े उपासक थे। अनेक राजनीतिज्ञों

में एकिक्षयियाडीज के बज इसीक्रिये सबसे अधिक सर्वप्रिय हो सका था कि उसकी आकृति और स्वरूप बहुत अच्छा था। जेनोफेन ने एक स्थान पर उन गुणों का वर्णन किया है, जिनकी सहायता से मनुष्य राज्य में उच्च पद प्राप्त कर सकता है; और उन गुणों के अंतर्गत उसने यह भी कहा है—“ऊपर से देखने में मनुष्य का शरीर बहुत सुंदर और इस योग्य होना चाहिए कि वह कठिन-सेकठिन परिश्रम कर सके।” आकृति के अतिरिक्त यूनानियों का पहनावा भी बहुत सुंदर हुआ करता था। मूर्तियों आदि में जो पहनावा दिखाई पड़ता है, उसमें करवे बहुत ही अच्छे ढंग से तब किए हुए अंगों पर लटकते हैं, और कोई अंग कसा हुआ-सा नहीं जान पड़ता।

(२) यूनानियों की भाषा भी सुंदर थी। यदि आप यूनानी भाषा न जानते हों, तो उसके किसी जाता से कहिए, और वह आपको होमर को कविता की कुछ पंक्तियाँ, एरिस्टोफेनीज का कोई शीत या प्लेटो के कुछ वाक्य पढ़कर सुनावे। तब आप समझ सकेंगे कि वह भाषा कितनी संगीतमयी है। अंगरेजी के सुप्रसिद्ध औपन्यासिक हेनरी किंग्सले ने ‘जाफरे हेमिलन’-नामक एक उपन्यास में एक स्थान पर लिखा है कि एक छोटा बालक था, जो यूनानी भाषा का एक शब्द भी नहीं जानता था। एक बार उसके शिवक ने उसे हेरोदोटस का लिखा हुआ थरमापिली के युद्ध का योद्धा-सा वर्णन पढ़कर सुनाया। वह बालक मंत्र-मुग्ध होकर वह सारा वर्णन सुनता रहा। अंत में जब उस बालक से पूछा गया कि यह तुम्हें कैसा लगा, तब उसने उत्तर दिया—“मैं सो समझता था कि आप गा रहे हैं।”

यहाँ हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि यूनानी कलाकार न तो बहुत अधिक संपन्न होते थे, और न बहुत सुखन्य

जीवन व्यतीत करते थे। वे लोग बहुत दरिद्र होते थे। प्रायः अनेक प्रकार के शारीरिक कष्ट सहते थे, और बहुत थोड़े व्यय में अपना काम चलाते थे। एक स्थान पर यह उल्लेख मिलता है कि जब उन्हें आपस में एक दूसरे को कुछ नमक, दिए की बत्ती, सिरका या खाने-पीने की कोई चीज़ उधार देने की नौवत आती थी, तब वे लोग आपस में खड़ पड़ते थे। जब कभी उनके मकानों में कोई पंचायती भोज आदि होता था, तब वे सब लोगों की दी हुई धीकों में से इंधन, सिरका, दाल, नमक या जलाने का तेज तक चुरा लेते थे। यूनानी नगर कभी बहुत अधिक संपत्ति नहीं होते थे; और यही बात यथेंस के संबंध में भी थी। एक पेरिक्लीन के समय को छोड़कर यथेंस के सब काम बहुत मुश्किल से चलते थे, और उसे सदा आर्थिक कठिनता बनी रहती थी। फिर यदि हम लोग अपने मन से विचार करें, तो कह सकते हैं कि यूनानी लोग बहुत क्षयादा साक्ष मी नहीं रहते थे, यद्युक्त अक्सर गंदे रहते थे। उनके झस्तों की गलियाँ बहुत ही गंदी होती थीं। उनके मकान भड़े, और तंग होते थे। उनमें नालियाँ या पनाले आदि नहीं होते थे ॥ १ ॥ वे गरमी के दिनों में भी ऊनी करते आदि पहनते थे, क्योंकि यदि सूती कपड़े पहनते, तो उन्हें बीच-बीच में धोना पड़ता। क्षियाँ और पुरुष सभी सावंजनिक स्नानागारों में स्नान करते थे, जो बहुत ही मामूली, सादे और बहुत ही पुराने डंग के

* कहाँ तो एक और यूनानियों का ज्ञना ऊँचे दर्जे का सौंदर्य-प्रेम और कहाँ यह गंदगी ! दोनों बातें एक दूसरे की परम विरीचिनी हैं, और दोनों में थोड़ी-बहुत अतिशयोक्ति की गई जान पड़ती है। ज्ञन अपने देश की प्राचीन स्वच्छता और सौंदर्य-प्रेम से इसकी तुलना कीजिए, और तब देखिए कि दोनों में से कौन थेह ठहरता है। — अनुवादक

होते थे। वे लोग साकुन का व्यवहार नहीं करते थे, पर शरीर में तेल मलाते थे, और बदि आवश्यकता होती थी, तो कुछ सुर्गित द्रव्यों का भी व्यवहार कर लेते थे। एक यूनानी लेखक ने तो यहाँ तक लिखा है कि जो आदमी बहुत इयादा सकाहौं पसंद करता हो, समझ लेना चाहिए कि उसके विचार और आकांक्षाएँ तुच्छ हैं। वह कहता है, ये से तुच्छ विचारों-वाला आदमी अपने सिर के बाल ठीक हँग से कटवावेगा, और दैत साफ़ रखेगा। पुणिकवियादोज के शयनागार की जो चाँड़े मिली हैं, उनसे पता चलता है कि उसमें हाथ-मुँह आदि धोने की कुछ भी व्यवस्था नहीं थी। यहाँ हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पुणिकवियादोज अपने समय में पृथेस में अच्छा शौकीन समझा जाता था।

इतना सब कुछ होने पर भी इस बात में कोई संदेह नहीं है कि पृथेसवालों में कक्षा के प्रति सबसे अधिक अनुराग था। उनमें शरीर, वस्त्र और मापण का सौंदर्य सब जगह समान रूप से पाया जाता है। जिन दिनों यूनान उद्घाति के शिखर पर था, उन दिनों वहाँ का प्रकोपोलिस-नामक नगर बहुत प्रसिद्ध था। उसमें संगमरमर के बहुत-से सुंदर मंदिर और मूर्तियाँ थीं। उस नगर और उसके मंदिरों तथा मूर्तियों आदि को देखकर मनुष्य सहज में इस बात का बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकता था कि वास्तव में सौंदर्य किसे कहते हैं। सभी लोग इस सौंदर्यमय जीवन का सुख भोग सकते थे। वहाँ के सभी निवासी साधारणतः मौजी, चतुर और बुद्धिमान् होते थे। प्रारंभिक शिर्षा के लिये तो उनके यहाँ पाठशालाएँ थीं, पर आजकल जिसे इम क्लोग उच्च शिर्षा कहते हैं, उस प्रकार की शिर्षा का प्राचीन यूनान में कोई प्रबंध नहीं था। पर फिर भी उन दिनों वहाँ किसी को अशिक्षित नहीं

रहना पड़ता था, और बहुत ही थोड़े आदमी ऐसे होते थे, जो लिखना-पढ़ना नहीं जाते थे।

सबसे पहले राजनीति को ही लिखिए। प्रत्येक व्यक्ति राजनीति में कुछ-न-कुछ अनुराग रखता था। सभी लोगों को पर्सेंबली में सम्मिलित होने का अधिकार था, और सभी लोग बारी-बारी से बौसिल के सदस्य और जूरी हो सकते थे। यूनानी आज्ञाकर्तों में प्रायः जूरी बहुत अधिक होते थे, और बड़े-बड़े सुक्रदमों में उनकी संख्या कहं सौ तक पहुँच जाती थी। इस प्रकार जनता की तुल्दि तीव्र और कुछ कर सकने के योग्य बनाहं जाती थी। यह ठीक है कि ये सब बातें निश्चन्न-क्षितिज दो मुख्य कारणों से हो सकती थीं—एक तो यह कि राज्य बहुत बड़े नहीं होते थे, जिससे सभी लोग सार्वजनिक कार्यों में सम्मिलित हो सकते थे। और, दूसरी बात यह थी कि उन दिनों लोगों को आज्ञाकर्ता की तरह दिन-दिन-भर काम नहीं करना पड़ता था, और न उनका काम इतने अधिक परिधम का ही होता था। पर्थेंसवाले खेती-बासी, शिल्प, व्यापार या येत्रा आदि कुछ-न-कुछ अवश्य करते थे, पर ये सब काम वे लोग केवल जाविका-निर्वाह के विचार से करते थे, घन एकत्र करने के विचार से नहीं। बीच-बीच में धार्मिक त्योहारों के लिये सारे राष्ट्र में लुटियाँ होती थीं। सभी लोगों को बीच-बीच में अपना निजी काम छोड़कर कुछ समय के लिये राष्ट्र का काम करने जाना पड़ता था, और किसी को ऐसे कामों के लिये अधिक समय तक अपने निजी कार्य की हानि नहीं ठानी पड़ती थी। जब उसकी बारी आती थी, तब वह विना कोई विशेष उत्ति ठाण्डे राष्ट्र का कार्य करने चला जाता था। छोटे, गंदे और ग्वराव काम करने के लिये उनके यहाँ बहुत-से गुज्जाम भी होते थे। जो गुज्जाम किसी शिल्प या व्यापार आदि में सहायता देते थे, उनके साथ अपेक्षाकृत

अच्छा व्यवहार किया जाता था। वे लोग अपने मालिकों के साथ मिलकर काम करते थे, धन कमाते और कुछ शर्तें पूरी करने के बाद स्वतंत्र भी हो सकते थे। पर जो शुक्राम जर्खों में मिलकर काम करते थे, और विशेषतः जो लारियम की चाँदी की खान में काम करते थे, उन्हें बहुत ही शोचनीय परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

इसके अतिरिक्त हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि पृथ्वेसवाले अपना अधिकांश समय सार्वजनिक स्थानों और खुली हवा में बिताया करते थे। अपने घरों में तो वे लोग खाली खाते-पीते, सोते और दावतें आदि करते थे। अबकाश का समय वे लोग घर के बाहर ही बिताते और वहाँ विश्राम करते थे। इसीलिये उन्हें अपने यहाँ के बड़े-बड़े आदमियों की बातें सुनने का सदा ही अवसर मिला करता था। पूर्सेवली, कौसिक या अदालतों में जाकर सभी लोग दिमास्थिनीज और पेरिकलीज के भाषण आदि सुन सकते थे, अथवा उनके पास बैठ सकते और उनके साथ मिलकर काम कर सकते थे। सार्वजनिक उत्सवों के समय सभी लोग जाकर होमर की कविताएँ या दूसरे बड़े-बड़े लेखकों के नाटक आदि सुन सकते थे। सुकरात आदि बड़े-बड़े लोग बाजारों और खुले मैदानों में जब मिल जाते थे, तब उन्हें बहुत-से लोग घेरकर खड़े हो जाते थे। उस समय वे लोग उनके सामने भाषण देते थे, जिसे सभी लोग सुन सकते थे। इन सब बातों के लिये किसी को कुछ भी व्यय नहीं करना पड़ता था। शारीर-से-शारीर आदमी भी विज्ञुल सुझत में इन सब बातों का आनंद ले सकता था। और, जिस समय वह सार्वजनिक सेवा के राजकीय कार्य करता, उस समय उसे कुछ वेतन भी मिल जाता था।

गद्यपि पेरिकलीज के युग में पृथ्वेस में बहुत कुछ दरिद्रता थी, जो भी वहाँ के प्रत्येक नागरिक को रुचि, विचार और मानसिक

फुरती की अच्छी शिक्षा मिल सकती थी, और मिलती भी थी। पर्योग-वालों के चतुर होने का एक बड़ा प्रमाण यह है कि जिन नाटकों को वे सबसे अधिक पसंद करते थे, वे कला की दृष्टि से बहुत ही उच्च कोटि के हैं। उनके यहीं का मङ्गांक या परिहास भी ऐसा होता था, जिसे केवल वही ज्ञोग समझ सकते थे, जिनकी तुदि तोच्या होती थी, हचि परिष्कृत होती थी, और जो उसमें तथा निहृष्ट का अंतर भजी भाँति जानते थे।

यूनानी ज्ञोग सदा प्रसञ्च रहा करते थे। मिल के एक धर्म-पुरोहित ने एक बार यूनान के सुप्रसिद्ध विहान् सोलन से कहा था—“आप यूनानी ज्ञोग तो सदा बालक ही बने रहते हैं।” उस पुरोहित का यह कहना बिल फुल ही ठीक था। यूनानी ज्ञोग जीवन और जीवन के आनंद के बहुत प्रेमी थे, और उस मार्मिक विनोद में उन्हें बहुत आनंद मिलता था, जो जीवन-काज का एक जलचय है। वृद्धावस्था उन्हें बहुत ही दुःखद और कष्टदायक ज्ञान पढ़ती थी। सोफोक्लीज ने एक स्थान पर कहा है—“अंत में मनुष्य के भाग्य में वृद्धावस्था बढ़ी होती है, जिसमें वह तिरस्कृत और दुर्बंज हो जाता है, समाज में ज्ञोगों के साथ मिलने-जुलने के योग्य नहीं रह जाता, और कोई उसका मिश्र नहीं रह जाता। इस प्रकार यह वृद्धावस्था सब प्रकार के दोषों का घर है।”

पाठकों को इन सब बातों से यह न समझ लेना चाहिए कि यूनानी ज्ञोग सदा सौंदर्य की धुन में ही मस्त रहकर अपना समय बट किया करते थे। उनके जीवन का एक दूसरा अंग भी था, जो अनेक गहन विषयों से युक्त था। पहली बात तो यह है कि वे सक्रिय कर्मसंयता को बहुत अभिमान की वश्तु समझते थे। उनमें कोई ऐसा दंभ नहीं था, जिससे वे जीवन के आवश्यक कार्यों को हेच और न करने योग्य समझते हों। बड़े-बड़े यूनानी कलाकारों को

भी साधारण व्यक्तियों की भाँति सावंजनिक कार्यों में सम्मिलित होना पड़ता था । एवकीलस और सुक्रात ने सेना-विभाग में साधारण सैनिकों की भाँति कार्य किया था । सोफोक्लीज और थूसिदाइडीज ने जहाजों वेडों का सेनापतिष्ठ किया था । सुक्रात तथा और कई बड़े-बड़े आदमियों ने अपने नगर में भी राज्य की अनेक सेवाएँ की थीं । यूनानी कलाकारों और विचारशीलों के माथ ऐसे विषयों में कोई रिशायत नहीं की जाती थी, और उन्हें भी सब ज्ञोगों की तरह साधारण जीवन के सभी काम करने पड़ते थे । और, फिर वे ज्ञोग स्वयं भी ऐसे कामों से अलग नहीं रहना चाहते थे । युरिपिडीज यूनान का पहला कवि था, जिसने अपना सारा जीवन केवल विद्याल्ययन में ही विताया था ।

इसके सिवा यूनानियों का यह भी पुक विश्वास था कि सत्य और सौंदर्य दोनों सदा साथ-ही-साथ रहते हैं, वे एक दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते । इसी विश्वास के अनुसार वे ज्ञोग सदा चितन करते थे, और यहुत अधिक चितन करते थे । मापण और विचारों की जितनी अविक स्वतंत्रता यूनानियों में थी, उनकी और कभी किसी में हुई ही नहीं । युरिपाइडीज कहता है—“गुजाम वही है, जो अपने विचार कहकर प्रकट न कर सकता हो ।” स्वयं यूरिपाइडीज ने जिस निर्भीकता से अपने ग्रंथों में अपने विचार प्रकट किए हैं, वे आश्चर्य-जनक हैं । उनसे सूचित होता है कि यूनानी ज्ञोग घर्म और नातिशाश्व के संबंध में कितना स्वतंत्र होकर विवेचन करते थे, इन विषयों के प्रतिपादित सिद्धांतों पर कैसी-कैसी आशंकाएँ करते थे, और उनकी कैसी कड़ी टीका-टिप्पणी करते थे । प्रस्त्रेक व्यक्ति जो चाहता था, वह कई सकता था । यथोंसवालों ने केवल दो या तीन बार ज्ञोगों पर अपने विचार प्रकट करने के लिये मुकादमे चढ़ाए थे, जिनमें सुक्रात का

सुक्रदमा सबसे बड़कर है। जिस समय पेत्रोपोनीशियन युद्ध चल रहा था, उसी समय परिस्टोफेनीज ने युद्ध की निर्दा की थीं, और राजनीतिज्ञों तथा सैनिकों को हँसी उड़ाई थी, और फिर भी उसे द्वास्यन्नस का सबसे अच्छा नाटक लिखने के लिये पुरस्कार मिला था। श्यूसिडाहीज ने इस युद्ध का इतिहास लिखते समय न तो अपने नगर की प्रशंसा के पुल ही बाँधने का प्रयत्न किया है, और, न शत्रुओं की निर्दा के पढ़ाइ लगाने का उद्योग किया है। और न उससे कोई इनमें से किसी काम की आशा ही कर सकता था। पर्येत के शिवकों, व्यास्यानदाताओं और साधारण निवासियों को सभी प्रकार की बातों पर विचार करने और स्पष्ट रूप से विचार प्रकट करने की पूरी-पूरी स्वतंत्रता प्राप्त थी।

धार्मिक विषयों में प्रत्येक व्यक्ति जैसा चाहता था, वैसा विचार कर सकता था। देवाल्यार्थों में जाकर देव-पूजन करने के लिये कभी कोई विवश नहीं किया जाता था, और यूनान में सभी प्रश्न के धार्मिक विचार प्रचलित थे। एवेंस में साधारणतः अनेक देवता होते थे, जो नगर के देवता माने जाते थे। नगर-निवासी उन देवतों पर अद्दा रखते थे, और उनके लागे बलि आदि चढ़ाते थे। पर होमर के समय से यूनानी लोग इन देवतों के सर्वध में बहुत ही विलक्षण कथाएँ कहने लग गए थे, जिनकी सत्यता का बहुत-से लोग खुचे शब्दों में अस्वीकार करते थे। और, ऐसा जान पड़ता है, स्वर्ण होमर भी इन सब कथाओं को सर्वोश में सत्य नहीं मानता था, बल्कि वह उन्हें सुनूर कहानियाँ-मात्र समझता था। वे अपने देवतों को साधारणतः मनुष्यों के समान ही अंकित करते थे। इसी, मनुष्यों से उन्हें कुछ अधिक शक्तिशाली समझते थे। इसके अतिरिक्त मनुष्यों और देवतों में कोई विशेष अंतर नहीं मानते थे। यथापि कुछ विचित लोग ऐसे भी थे, जो हार्दिक

अद्वा तथा भक्ति-पूर्वक इन देवतों का पूजन करते थे, पर फिर भी निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि सभी शिक्षित लोग उन पर वैसा ही हार्दिक विश्वास और अद्वा रखते थे। पर इसमें सदैव नहीं कि जनसाधारण प्रायः ओलंपियन धर्म पर ही विश्वास रखते थे। अपने नगर के देवतों का उन्हें वैसा ही अभिमान रहता था, क्षेत्र किसी नगर के निवासियों का अपने यहाँ के गिरजे या मंदिर आदि के संबंध में होता है। कुछ लोग तो अपने नगर के गिरजे या मंदिर को बहुत ही धार्मिक तथा पूज्य दृष्टि से देखते हैं, और कुछ लोग पैसे भी होते हैं, जो केवल यह समझते हैं कि हमारे नगर का गिरजा या मंदिर बहुत ही सुंदर और बढ़िया है।

ओलंपियन धर्म में जो तो यही शक्ति थी कि वह लोगों को बोतिमान् बना सकता था, और न लोगों के मन में भय या उत्सेजना का भाव ही उत्पन्न कर सकता था। यूनानियों में इस प्रकार के भाव कुछ और ही मार्गों से आए थे, जिनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ कर देना आवश्यक जान पड़ता है—(१) गाँवों और देहातों के लोग सीधे-सादे होते हैं, और पश्चेस के अधिकांश निवासी गाँवों और देहातों में ही रहते थे। अपने देहातों के जंगलों, सोतों और पहाड़ियों आदि के देवतों का ही पूजन करते थे (जैसे पान और निफस आदि)। लोगों का यह भी विश्वास था कि ये देवता समय-समय पर अपने भक्तों और उपासकों को अनेक प्रकार के छद्म-दत्ता-पूर्ण कार्य करने के लिये भी उत्तेजित कर देते हैं। झँगरेझी का पैनिक (Panic) शब्द इसी पैन देवता के नाम से बना है, जिसका अर्थ है ऐसी उत्सेजना, जिसमें भय भी सम्मिलित हो। (२) बहुत-से लोग दायोनिसस (यह एक विदेशी धर्म था, जो थ्रेस से आया था) या इसी

प्रकार के और धर्मों के अनुसार पूजा और आराधना करते थे, और अपेक्षाकृत अधिक उत्तेजक होती थी ; और कुछ लोग धार्मिक भ्रान्त-मंडल में समिलित हो जाते थे (जिसे वे लोग गुस या रहस्य-मय मंडल कहते थे) । इस प्रकार के मंडलों की सृष्टि कर्मकांदिया धार्मिक पूजा-विधियों के आधार पर होती थी, और इनमें मनुष्यों के भावों को उत्तेजित करने के अनेक प्रकार होते थे । (३) कुछ लोगों का विश्वास था कि मानव-जीवन में कुछ बड़ी-बड़ी अंध-शक्तियाँ भी काम करती हैं, जैसे भाग्य, ईर्ष्या, विनाश और संयोग आदि । और, इन सबका मनुष्यों के अतिरिक्त देवतों पर भी वयेष्ट प्रभाव पड़ता है । अतः वे लोग इसी प्रकार की शक्तियों पर विश्वास रखते थे, जिससे बहुत-से लोगों के मन में एक प्रकार का धार्मिक भय और आतंक उत्पन्न हो जाता था । वे लोग समझते थे कि इन प्रबल और अंध-शक्तियों से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि मनुष्य बहुत ही शांत और संयम-पूर्ण जीवन व्यर्तीत करे । वे समझते थे, जब कोई आदमी बहुत अधिक धनवान्, बहुत अधिक अभिमानी या बहुत अधिक सफल हो जाता है, अथवा जब उसकी किसी बात में अति हो जाती है (अति सर्वत्र बजंयेत् का सिद्धांत), तो ये शक्तियाँ उस पर आक्रमण कर बैठती और उसका पतन कर देती हैं । मतलब यह कि जैसे किसी बहुत ऊँचे वृक्ष पर ही विजली गिरने की अधिक संभावना होती है, अथवा पंक्ति में खड़ा हुआ सबसे लंबा आदमी ही प्रायः गोली का शिकार होता है, उसी प्रकार जो आदमी किसी विषय में बहुत अधिक बढ़ जाता है, उसी पर ये दैवी विपत्तियाँ आती हैं ।

यदि यूनानी-धर्म की ईसाई-धर्म (अथवा हिंदू आदि किसी और आस्तिक-धर्म) के साथ तुलना करें, तो हमें कहना पड़ेगा कि यूनानियों में ईश्वर के व्यक्तित्व का कोई बड़ा या प्रबल भाव

अथवा धारणा नहीं थी। साधारणतः आस्तिक धर्मों में यही माना जाता है कि एक सर्वशक्तिमान् ईश्वर है, जो सब लोगों के पालन-पोषण, रक्षण आदि को चिंता रखता है। आस्तिक धर्मों में यह भी माना जाता है कि कुछ अनुचित कृत्य या पाप होते हैं, जिनके करने से ईश्वर अप्रसन्न और असंतुष्ट होता है। पर यूनानियों में इस प्रकार की कोई धारणा नहीं थी। वे यह तो जानते थे कि संसार में दोष या पाप तो हैं, पर उन्हें इस बात की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती थी कि इन दोषों या पापों का नाश करना भी आवश्यक है। वे यही समझते थे कि जहाँ तक हो सके, मनुष्य को अपने आचरण में सचेत रहना चाहिए, और इन दोषों तथा पापों से बचने का प्रयत्न करना चाहिए; जीवन की उत्तम बातों का भोग करना चाहिए। और, यदि कोई विपत्ति या कष्ट आ पड़े, तो उसे वीरता-पूर्वक सहन करना चाहिए। यूनानी लोग अधिक-से-अधिक यही चाहते थे कि हम सदा स्वस्थ, भाग्यवान् और सुंदर बने रहें, अपने बाल-बच्चों में सुखी रहें, और हमारे जीवन का अंत प्रतिष्ठा-पूर्वक हो। वे यह तो मानते थे कि मृत्यु के उपरांत भी मनुष्य का कोई जीवन होता है, पर उस जीवन को वे पैशाची और नीरस मानते थे; इसीलिये उस जीवन का ध्यान रखते हुए कोई मनुष्य अपने लिये भविष्य में कोई बहुत बड़ी या अच्छी आशा नहीं रखता था।

यूनानी लोग धर्म-हीन या नास्तिक तो नहीं होते थे, पर उनकी धार्मिकता या आस्तिकता हम लोगों की धार्मिकता या आस्तिकता के समान नहीं होती थी। कुछ अंशों में सुक्रात और डस से अधिक अंशों में प्लेटो में ही कुछ ऐसे धार्मिक विचार मिलते हैं, जो ईसा के धार्मिक विचारों से मिलते-जुलते हैं। इनके अतिरिक्त और किसी यूनानी में इस प्रकार के विचार नहीं पाए जाते।

यूनानियों की विचार-शैक्षी में पृष्ठ प्लेटो ही इस विषय में भी तथा कुछ और विषयों में भी अपवाद रूप है। साधारणतः यूनानी लोग धर्म के विषय में यही समझते थे कि वह भी जीवन का एक ऐसा चीज़ है, जो मनुष्य में सौंदर्य, उत्सेजना या भय आदि उत्पन्न कर सकता है। पर वे धर्म को जीवन की ऐसी आत्मा नहीं मानते थे, जो जीवन के समस्त उद्घासों, दुःखों और कर्तव्यों में मनुष्य के किये मार्ग-दर्शक और प्रेरक का काम करतो है।

यूनानी जीवन में सबसे अधिक गहन और गूढ़ विषय उनका धर्म नहीं था, बल्कि उनका दर्शन-शास्त्र था, जिसे चैंगरेज़ी में आजकल किलास्ट्री कहते हैं। यह शास्त्र वस्तुतः यूनानी है, और इसका अर्थ है 'ज्ञान के प्रति प्रेम या अनुग्रह'। जैसा कि सदा और सभी स्थानों में हुआ करता है, दर्शन-शास्त्र का अध्ययन और मनन यूनानियों में भी बहुत ही थोड़े आदमी करते थे। पर ही, अन्यान्य देशों की अपेक्षा यूनान के निवासियों पर दर्शन-शास्त्र का विशेष प्रभाव होता था। वे बिना अपने धर्म से सहायता लिए केवल अपने बुद्धि-बल और तकँ की सहायता से यह समझने का प्रयत्न करते थे कि संसार क्या है और जीवन-निर्वाह का सबसे अच्छा मार्ग कौन-सा है। यूनान के आरंभिक 'विचारशीलों ने (इ० प० ४८२ के येल्स और उमके परवर्तियों ने) यह प्रश्न उठाया था कि यह संसार किन-किन पदार्थों से बना है, पर उन आरंभिक दिनों में इस विषय में वे लोग अनुमान-मात्र कर सकते थे, और कभी-कभी उनके अनुमान आरचय-ज्ञनक रूप से बुद्धिमत्ता-पूर्ण होते थे। पर ही, इसमें संदेह नहीं कि परिचम में यूनानियों का ध्यान ही सबसे पहले इस बात की ओर गया था कि यह एक विचारशील प्रश्न है। पाइचात्य विज्ञान का आरंभ यहीं से हुआ था; और तब से आज तक सारा विज्ञान उसी प्रश्न का ढर्ता

इँद्रने का प्रयत्न कर रहा है, जो प्रश्न सबसे पहले यूनानियों ने उठाया था।

इ० प० पाँचवीं शताब्दी में वे लोग उत्पन्न होने लगे, जो सोक्रिस्ट कहलाते हैं। ये लोग वैज्ञानिक विषयों पर खेल आदि खिलते और भाषण आदि तो देते ही थे, पर साथ ही वे विशेष रूप से इस प्रकार के कुछ प्रश्न भी करते थे—जीवन-निर्वाह करने का उचित मार्ग क्या है? मनुष्य उस मार्ग का किस प्रकार अनुसरण कर सकते हैं? किन नियमों के पालन से मनुष्य अच्छा नागरिक, अच्छा राजनीतिज्ञ और अच्छा मनुष्य हो सकता है? वे लोग इस प्रकार के प्रश्नों के जो उत्तर देते थे, वे बहुत संतोष-जनक नहीं होते थे। और, यह मोटी बात तो पाठक स्वयं भी समझ सकते हैं कि केवल नियमों का ज्ञान हो जाने से ही मनुष्य भक्ति जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता। परंतु हसी आधार पर कुछ लोग (उदाहरणार्थं घूसिडाहृष्टोज, जो पहले एक प्रसिद्ध सोक्रिस्ट का शिष्य रह चुका था।) और भी अधिक गहन तथा सूचम विचार करने लगे, और यह सोचने लगे कि राज्यों का शासन किस प्रकार होना चाहिए, तथा राष्ट्र किस प्रकार सफल हो सकते हैं। सांक्रिस्टों के बाद सुन्नत हुआ था, जो इस प्रकार के प्रश्नों पर विचार करता था—न्याय क्या है? सत्य क्या है? इत्यादि। इस प्रकार के प्रश्नों का उसे प्रायः कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिलता था, पर उसने लोगों को ऐसे प्रश्नों पर विचार करने के लिये विश्वा किया, और उन्हें यह बतलाया कि ऐसे प्रश्नों का कोई ऐसा-वैसा उत्तर पाकर मनुष्य को संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए, वहिं समस्त विषय पर पूर्ण रूप से विचार करना चाहिए। उसमें डीक और सत्य विचार करने की बहुत उम्र वृत्ति थी। इसके साथ ही उसके मन में इस बात की भी बहुत प्रबल कामना थी

कि लोगों को हस बात का विश्वास दिला दिया जाय कि खीबन बचमता-पूर्वक व्यतीत करने की आवश्यकता है। वह सच्चा घमों-देशक था, और एयेंसवाल्मों ने उसे सच्चा शहीद भी बना दिया। उसे मारकर यूनानियों ने भी ठीक उसी प्रकार अपने पैरांवर की हत्या की थी, जिस प्रकार यहूदियों ने अपने पैरांवर की।

जैसा कि हम पढ़के कह चुके हैं, यद्यपि बहुत ही थोड़े-से यूनानियों ने इन सब प्रश्नों पर गूढ़ विचार किया था, तो भी इसमें संदेह नहीं कि उन दिनों एयेंस में विज्ञान और दर्शन की कुछ-न-कुछ जानकारी रखने का क्षेत्र-सा हो गया था। सोफिस्टों के बहुत अधिक शिष्य हुआ करते थे। युरिपाइडीज ने कहे ऐसे नाटक लिखे थे, जिनमें देवतों के संबंध में उन साधारण्य में प्रचलित विचारों की अच्छी आलोचना की गई थी, और औचित्य तथा अनौचित्य-संबंधी सभी प्रकार की बड़ी-बड़ी समस्याओं पर विचार किया गया था। और, ये सब नाटक इतने लोकप्रिय हुए थे कि दृष्टक आदमी इन्हें देखने जाया करता था। सुकृत के सबसे अधिक घनिष्ठ मित्र एयेंस के रईस-घरानों के नवयुवक थे, और वे उसके पास उपर्युक्त केवल इसलिये सुनने जाया करते थे, जिसमें वे सज्जन और सख्तपुरुष बन सकें, और यह सीख सकें कि घर-गृहस्थी में नौकर-चाकरों के साथ, अपने संबंधियों और मित्रों के साथ तथा अपने देश और देशवासियों के साथ किस प्रकार उचित व्यवहार करना चाहिए। यह ठीक है कि इस प्रकार के ऊचे और सट्टिचार केवल कुछ जुने हुए लोगों के मन पर ही अपना पूरा-पूरा प्रभाव ढालते थे, परं फिर भी जिन उपदेशकों और महात्माओं के नाम हमने बतलाए हैं, उनका प्रभाव केवल उनके निकटस्थ शिष्यों पर ही नहीं पड़ता था, बल्कि उनके अतिरिक्त और भी बहुत-से लोगों पर पड़ता था। कम-से-कम इतना तो अवश्य था कि इस

प्रकार के विषयों की चर्चा बन साधारण में से बहुत-से लोग किया करते थे। यद्यपि इन बातों का उनका शौक बहुत गहरा नहीं होता था, पर किर भी नैतिक तथा राजनीतिक विषयों के ज्ञान और विचारों से पर्याप्त के साधारण लोग उतने कोरे और रहित नहीं होते थे; जिन्हें और देशों के लोग हुए हैं। पर्याप्त को साधारण बनता है इन सब विषयों का बहुत कुछ ज्ञान रखती थी।

इस प्रकार विज्ञान और दर्शन का आरंभ (कम-से-कम पाश्चात्य देशों में) यूनानियों से ही हुआ था। और, सुक्रात के समय के बाद से यूनानियों की अनेकानेक पीढ़ियाँ बराबर इन बोनों विषयों का अध्ययन और मनन करती रहीं। दर्शन-शास्त्र में सुक्रात का शिष्य प्लेटो था, जिसने जीवन, कर्तव्य, सौदर्य और सत्य के संबंध में अपने विचार बहुत ही सुंदर यूनानी भाषा में प्रकट किए हैं, और इस बात का बहुत अच्छा विवेचन किया है कि मनुष्यों को किस प्रकार जीवन-निर्वाह करना चाहिए, और राज्यों का किस प्रकार शासन होना चाहिए। वह समस्त विचारशीलों का गुरु है। अरस्तू, जो उसके बाद हुआ था, समस्त ज्ञानियों का गुरु है। उसने सभी प्रकार का ज्ञान संशोधित किया था, और प्रायः सभी प्रकार के वैज्ञानिक तथा दार्शनिक विषयों पर विचार किया था, और ग्रंथ आदि लिखे थे। उसके बाद भी दर्शन-शास्त्र के लेत्र में यूनानियों का प्रभाव बना रहा, और वहाँ अनेक प्रकार के लेखक तथा आचार्य होते रहे, जिन्होंने दर्शन-शास्त्र और धर्म में प्रकृता स्पापित करने के लिये अनेक प्रकार के और वास्तविक प्रयत्न किए थे। यही बात हमें संत पात्र में भी दिखाई देती है, जो केवल एक बहुत बड़ा हँसाई संत और महापुरुष ही नहीं है, बल्कि अरस्तू के बाद सबसे बड़ा विचारशील भी हुआ है।

विज्ञान-लेत्र में भी यूनान बहुत दिनों तक काम करता रहा।

परवर्ती काल के यूनानियों ने प्रायः सभी वैज्ञानिक विषयों का अध्ययन किया था, और उन पर अंश लिखे। व्याकरण, संगीत-शास्त्र, ज्योतिष, ड्यामिति, आयुर्वेद, यंत्र-किञ्चित्, भूगोल और कृषि-शास्त्र आदि में से कोहै विषय उनसे नहीं छूटा था। वैज्ञानिक विषयों में उन लोगों ने जितनी बातों का पता लगाया था, यद्यपि उनकी अपेक्षा आयुनिक काल में विज्ञान का बहुत अधिक विस्तार हो गया है, तो भी इसमें संदेह नहीं कि पाश्चात्य संसार में यूनानियों ने ही सबसे पहले इन विषयों का अध्ययन आरंभ किया था, और उन्हीं से योरपवालों ने ये सब विज्ञान आदि सीखे थे। आजकल भी पाश्चात्य देशों में शायद ही कठिनता से विज्ञान की कोई ऐसी शाखा मिलेगी, जिसके विवेचन में यूनानी भाषा के बहुत-से शब्दों का प्रयोग न किया जाता हो।

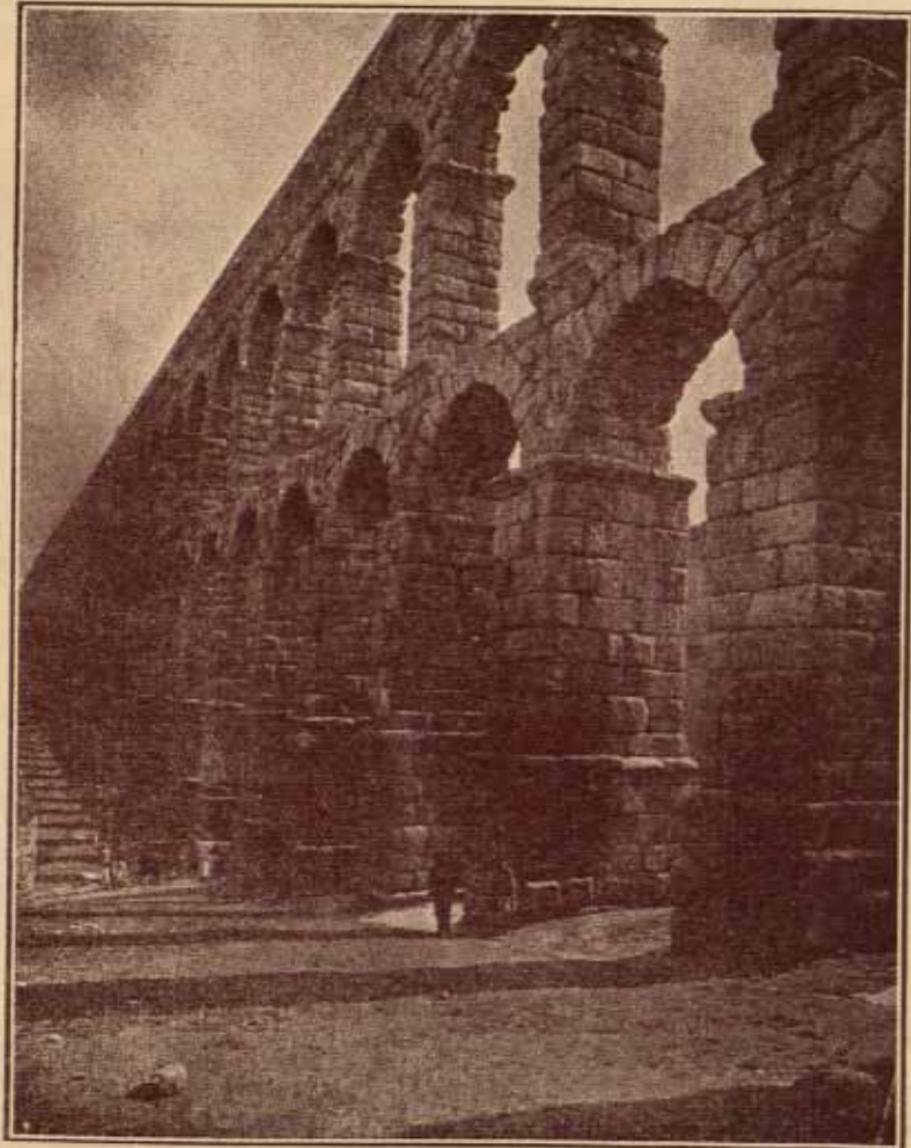
इस प्रकार हम पेरिक्लीज के युग से बहुत दूर चले आए हैं। उपर हमने जितने कार्यों का उल्लेख किया है, वे सभी कार्यं पृथेंस या यूनान में नहीं हुए थे, तो भी वे सब कार्यं यूनानी जाति और यूनानी भाषा-भाषियों के अवश्य थे। जब पृथेंस का उत्तरांश-युग समाप्त हो गया, तब वहाँ के निवासियों का दिन-पर-दिन पतन होने लगा। पृथेंस-नगर के तुरे दिन आने लगे। जिन अंतिम युद्धों में पृथेंस को विफलता हुई थी, उनके कारण पृथेंसवालों को बहुत-सी शक्ति नष्ट हो गई थी, जन साधारण का उत्साह बहुत कुछ मंद हो गया था, और अब उनमें वे सब बातें नहीं रह गई थीं, जो पेरिक्लीज के युग में थीं। राजनीति, विचार और जीवन-चर्चाँ, सभी बातों में कमी होने लग गई थी। यदि हम इयान-पूर्वक देखें, तो शायद हमें यह भी पता चल जायगा कि जीवन की इस ऊपरी चमक-दमक के नीचे पहले से ही अनेक प्रकार की विपत्तियों के चीज़ उपस्थित थे। शायद पृथेंसवालों ने पहले यही सोचा था कि

जीवन इस समय वितना सरल है, बस्तुतः वह उसकी अपेक्षा और भी अधिक सरल है, और उसमें कहीं कठिनाहस्रों या जटिलताहस्रों आदि का नाम भी नहीं है। आत्म-संयम तो उन्होंने कभी सीखा ही नहीं था, और उनमें सम्य का अनुसंधान करने की उतनी सच्चा लगन नहीं रह गई थी। वेदमानी और धोकेवाङ्गी उनमें सदा और बहुत अधिक होती रही। वे बस्तुतः किसी बात को भी पाप नहीं समझते थे, और उनका व्यक्तिगत घर्म भी बहुत दुष्कर था, हसोखिये उन लोगों ने कभी उच्च कोटि का और शेष जीवन व्यतीत करने का 'कोई विशेष अथवा निरंतर प्रयत्न नहीं किया। सभी नवीन विचारों के संबंध में उनके मन में कुतूहल उत्पन्न होता था, और वे उन्हें जलदी-जलदी ग्रहण करने का प्रयत्न करते थे। साथ ही उनमें चाकाकी भी बहुत थी। पर वे लोग बहुत झगड़ालू और छिकोरे हो गए थे, और सत्यासत्य का नियंत्रण करने की उत्सुकता उनमें नहीं रह गई थी।

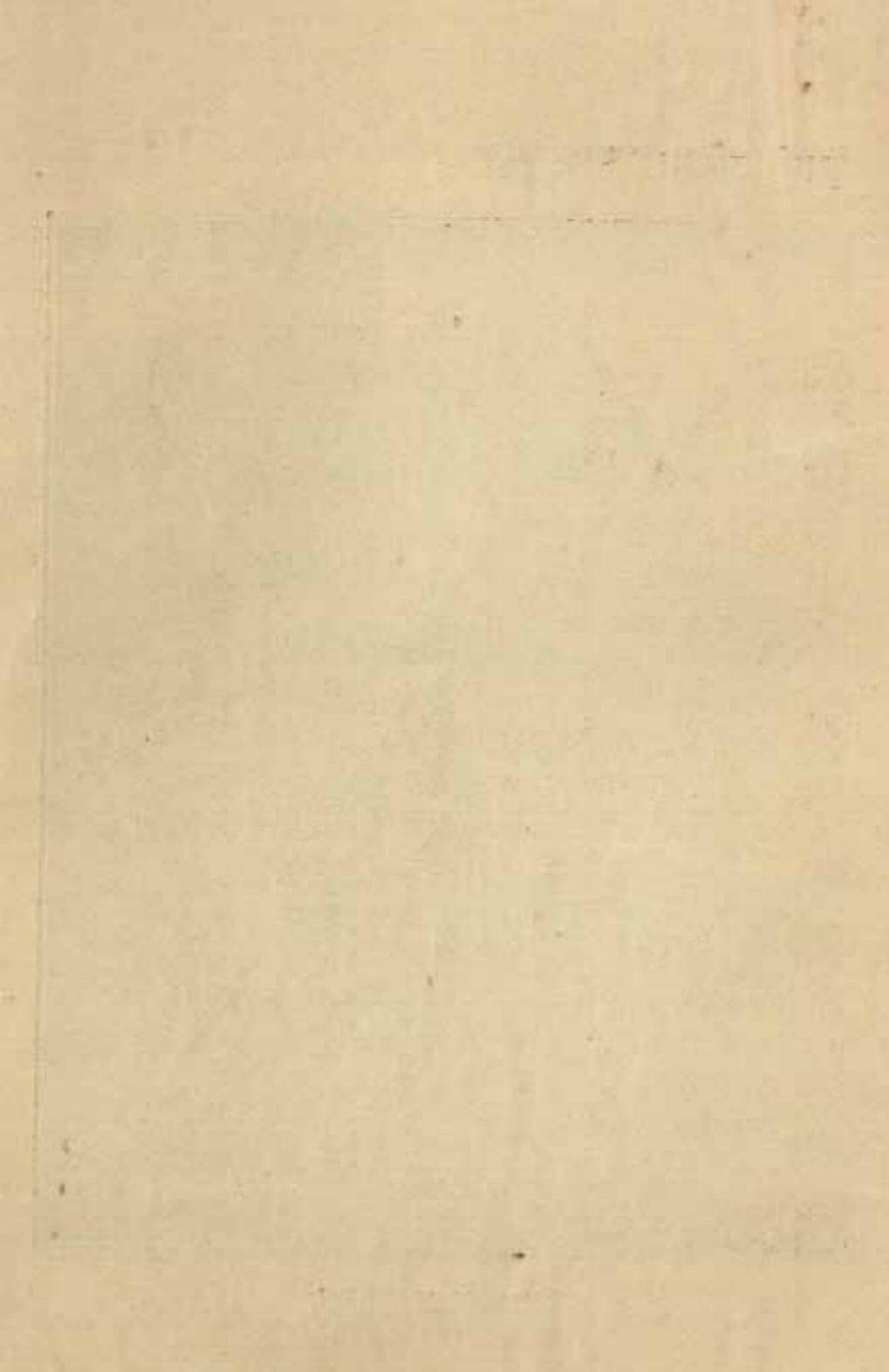
यूनानियों के पतन से हम यह गिराव ग्रहण कर सकते हैं कि हमें केवल शिक्षा, बुद्धि और चतुराई पर ही सारा भरोसा नहीं करना चाहिए। इन्हीं बातों को अपने जीवन का मार्ग-दर्शक नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि इसमें अनेक प्रकार की विपक्षियों के आने की संभावना है। पर साथ ही हमें यह भी मानना पड़ेगा कि इस प्रकार की शिक्षा के अतिरिक्त और भी अनेक बातों में पाश्चात्य संसार उनका ज्ञायी है, और अब पाश्चात्य संसार द्वारा शेष संसार भी उनका बहुत कुछ ज्ञायी है। जिन अनेक बातों से जीवन को सुंदर और महान् बनाने में सहायता मिलती है, उनमें से प्रायः सभी बातों में यूनान ही सबसे पहले अग्रसर हुआ, और उसी ने मार्ग-प्रदर्शन का काम किया था। कक्षा और साहित्य-क्षेत्र में शुद्ध तथा स्वच्छ सौंदर्य के स्थायी आदर्श

उन्होंने लोगों ने प्रस्तुत करके संसार के सामने रख दिये थे। उन्होंने हमारे सामने एक ऐसे राज्य का भी उदाहरण उपस्थित किया था, जो स्वतंत्रता के भावों और विचारों का पूरा-पूरा प्रोपक था, और जिसने यह बतलाया था कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह सदा यह ध्यान रखे कि हमारे राज्य का शासन-कार्य किस प्रकार चलता है; और जहाँ तक हो सके, उस शासन को उत्तम बनाने का प्रयत्न करे। दशंन-शास्त्र के चेत्र में यूनानियों ने स्पष्ट तथा सत्य विचारों का आदर्श इमारे सामने रखा है, जो सभी युगों में सत्य और उचित विचार-प्रणाली का सबसे अच्छा मार्ग-दर्शक है। साथ ही उन लोगों ने हमारे सामने एक ऐसे आनंद-पूर्ण नागरिक जीवत का चित्र उपस्थित किया है, जिसमें सौंदर्य स्वयं ही आनंद-रूप माना गया है, और जिसमें मनुष्य के सब्जे जीवन के लिये स्वतंत्रता एक परम आवश्यक वस्तु मानी गई है, और यह बतलाया गया है कि और सब बातों का विचार छोड़कर केवल सत्य के विचार से ही सत्य का मूल्य अंकित करना और उसका अनुसंधान करना चाहिए। रोमन संसार पर सैकड़ों वर्षों तक यूनान का प्रभाव बराबर बना रहा। इसके उपरांत श्रीज्ञ ही उस प्रभाव का सदुपयोग करने के लिये ईसाई-धर्म आ पहुँचा, और जब अंधकार-युग के बाद योरप आगा, तब उसने कला और ज्ञान के चेत्रों में एक अच्छा क्रदम आगे बढ़ाया। प्राचीन यूनान के जिन ज्ञान-कोशों का योरप ने फिर से पता लगाया था, उन्होंने योरप को आधुनिक उत्तरि का मार्ग दिखलाया, और उस मार्ग पर अग्रसर होने के लिये प्रोत्साहित किया था।

पुरानी दुनिया



भिंगोविया का राज-बहा



तीसरा भाग

रोम

१. रोम का उदय

इटली के परिचमी समुद्र-तट पर प्रायः आधी दूर तक वह मैदान है, जो इतिहास में 'लैटियम का मैदान' के नाम से प्रसिद्ध है, और ऐसा अनुमान किया जाता है कि आरंभ में इस लैटियम-शब्द का अर्थ चौड़ा या सुखा हुआ मैदान रहा होगा; इसके अतिरिक्त उसका और कोई अर्थ न रहा होगा। समुद्र-तट को छोड़कर और सभी ओर वह मैदान ऊँची ज़मीन से बिरा हुआ है। उसके उत्तर और दक्षिण में पहाड़ी प्रदेश है, और उसकी पूर्वी सीमा पर पृथीनाहन पवंत-माला है। इस मैदान की ज़मीन ऊँची-नीची और ढ्वड़-खाबड़ है, और बीच-बीच में कुछ छोटी-मोटी पहाड़ियाँ भी हैं। परंपरा भी इस मैदान के अधिकांश में नीची ही भूमि है।

प्राचीन काल में कुछ लोग दैन्यूच-नदी के आस-पास के प्रदेशों से चलकर इटली के उत्तरी भाग में आ बसे थे। कुछ दिनों बाद वे लोग वहाँ से भी आगे बढ़कर, इस मैदान में आकर रहने लगे थे। जब वे लोग दक्षिण की ओर बढ़ते-बढ़ते इस मैदान में आ पहुँचे, तब इसे अनेक इटियों से उपयुक्त समझकर इसी में स्थायी रूप से बस गए। ये ही वे लोग हैं, जो आजकल लैटिन कहलाते हैं (लैटिन शब्द का अर्थ है लैटियम के निवासी)। इस मैदान में उन लोगों ने अनेक घर बसाए थे। यद्यपि ये सभी नगर अपना-अपना शासन स्वतंत्र रूप से स्वयं ही करते थे, तो भी, ऐसा

बान पड़ता है, इन सबमें आपस में किसी-न-किसी प्रकार का संबंध या संबंध बन गया था, जो इतिहास में लैटिन लीग के नाम से प्रसिद्ध है।

इनमें से एक नगर टाइवर-नदी के दाहने किनारे पर, उसके सुहाने से प्रायः पंद्रह मील की दूरी पर, कहूँ छोटी-छोटी पहाड़ियों के समूह पर, बसा था। ये पहाड़ियाँ प्रायः ढेर सौ क्रुट ऊँची थीं। यही सुप्रसिद्ध रोम नगर था। रोमनों का कहना है कि इस नगर की नींव ही० ४० ७५४ में पड़ी थी। उन दिनों इटली के उत्तरी भाग में इट्टुस्कन खोग बसते थे। इस स्थान पर यह नगर कादाचित् इसी विचार से बनाया गया था, जिसमें इट्टुस्कन खोग टाइवर-नदी पार करके इस ओर न आ सके। अतः हम कह सकते हैं कि आरंभ में यह नगर लैटिन मैदान के किनारे पर केवल एक बड़े गड़ के रूप में बनाया गया था; और इसके अतिरिक्त उन दिनों इसका और कोहूँ विशेष महत्व नहीं था।

पहले लैटिन क्रास्टों में से कोई ऐसा क्रस्या नहीं था, जिसका इटली में कोई विशेष महत्व रहा हो। इटली के दक्षिणी भाग में बहुत-से यूनानी पहुँच गए थे, जिन्होंने वहाँ कहूँ नगर बसाए थे। उदाहरणार्थं रेगियम (ही० ४० ७१२), क्रोटन (ही० ४० ७१०) और टेरेटम (ही० ४० ७०८)। इन नगरों का जीवन यूनानी सभ्यता के आधार पर ही आरंभ हुआ था, और ये नगर शीघ्र ही संपत्ति तथा उत्तर छोड़ दिये थे। पर ये सब नगर लैटियम से बहुत दूर थे, इसलिये वहाँ के नगरों के कामों में न तो कोई इस्तेवेष ही कर सकते थे, और न उन पर इनका कोई प्रभाव ही पड़ सकता था। इसके अतिरिक्त उधर उत्तरी आफ्रिका में कारथेन की शक्ति बराबर बढ़ती जा रही थी, और उसके मुकाबले में इन यूनानी नगरों को अपनी स्थिति तथा व्यापार बनाए रखने के लिये

भी बहुत कुछ उच्चोग करना पड़ता था। पर हाँ, लैटिन क्रस्वों के लिये उनके आस-पास ही कई विपत्तियाँ थीं। इस मैदान के आस-पास ऊँचे और पहाड़ी स्थान पड़ते थे, जिनमें वालिस्यन तथा सबेलियन आदि कई छोटी-छोटी जातियाँ बसती थीं। इसके अतिरिक्त इन क्रस्वों को और भी विशेष भव इट्टुस्कन संघ के उन नगरों से भी बना रहता था, जो टाहबर-नदी के उत्तर में इट्टुरिया-नामक प्रदेश में थे। ये इट्टुस्कन लोग कदाचित् पूर्व की ओर से इटली में आए थे। उत्तरी तथा मध्य इटली में इन लोगों की शक्ति शीघ्र ही बहुत बढ़ गई थी। उनके पास जब-सेना भी बथेट थी और स्थल-सेना भी। इसके अतिरिक्त उनके द्वापार तथा सभ्यता में भी अपने पढ़ोसियों की अपेक्षा अधिक और शीघ्र उत्तरि तथा विकास हुआ था।

रोम के आरंभिक इतिहास का अभी इस लोगों को बहुत ही कम ज्ञान है। रोमनों में उनके आरंभिक इतिहास के संबंध में बहुत-सी कहानियाँ और आख्यायिकाएँ प्रचलित थीं। उन आख्यायिकाओं आदि में इस बात का वर्णन है कि इनियस किस प्रकार द्वाय से भागकर इटली में आया था, वहाँ उसने लैनूरियम-नामक नगर बसाया था; रोम्यूलस और रेमस के आश्रय में उनके उत्तराधिकारियों ने किस प्रकार रोम-नगर बसाया था; न्यूमा-नामक एक आरंभिक रोमन राजा पर देवतों की कैसी कृपा रहती थी; किस प्रकार अभिमानी राजा टारकिन ने लूपूर्फेसिया का अपमान किया था; और किस प्रकार रोमन लोगों ने उसे मार भगाया था; और जब उसने इट्टुस्कन लोगों की सहायता से फिर इधर जौटने का प्रयत्न किया था, तब किस प्रकार होरेशियस ने शत्रुघ्नों से रोम के पुजा की रक्षा की थी; और तब किस प्रकार रेगिलस-कील के किनारेवाले बुद्ध में कैस्टर तथा पोलक्स-नामक देवतों ने रोमन सेना का संचालन करके

उन्हें विजयी किया था। इन कहानियों में कदाचित् सत्य का तो उतना अधिक अंश नहीं है, पर किर भी ये बहुत उत्तेजक, रोमांच-कारिणी तथा सुंदर हैं। जो बात हम निश्चित रूप से जानते हैं, वह केवल यही है कि अंत में लैटिन नगरों में रोम सर्वं-प्रधान हो गया था। साथ ही बहुत कुछ संभावना इस बात की भी जान पड़ती है कि सबसे पहले उसकी उत्तरिति का आरंभ ई० प० छठी शताब्दी में उस समय हुआ था, जब कुछ दिनों के लिये उस पर इटू-स्कन सरदारों का अधिकार हुआ था। इन्हीं लोगों ने उस नगर का विशेष विस्तार किया होगा, और रोमन लोगों को इटू-स्कन सभ्यता की कुछ कल्पाएँ तथा शिखण्ड आदि सिखलाएँ होंगे। विशेषतः उन्होंने रोमनों को इतना तो अवश्य ही सिखलाया था कि वडी-वडी इमारतें कैसे बनानी चाहिए, और नगरों में नक्लों और नालियों आदि की व्यवस्था कैसे करनी चाहिए। रोम का सबसे बड़ा और मुख्य नक्ल, जो 'क्लोअका मैकिसमा' कहलाता है, संभवतः उसी समय बना था। इस प्रकार बहुत आरंभिक काल में ही रोमनों को यह शिक्षा मिल गई थी कि नागरिकों के स्वास्थ्य और सुधीते के लिये बड़े-बड़े सांवर्जनिक इमारतों काम किस प्रकार किए जाते हैं; और यह काम वे लोग बहुत दिनों तक बराबर करते रहे। यह बात प्रायः निश्चित-सी ज्ञान पड़ती है कि इटू-स्कन सरदारों की आधीनता में रहने के कारण ही रोम आगे चलकर लैटियम का सर्वं-प्रधान नगर बन सका था।

ई० प० छठी शताब्दी के अंत में इटू-स्कन लोग वहाँ से अगा दिए गए थे। रोम अपने विदेशी स्वामियों के धने से तो

कि पहले वहाँ एक बहुत बड़ी दलदल थी, जिसे सुस्थापन बत्ती के योग्य बनाने के लिये ही पहलेपहल यह बड़ा नह बनाया गया था।

निकल गया, पर इसके बाद ही उसे अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिये बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ा था। इसके बाद प्रायः साढ़े तीन सौ वर्षों तक उसे जगातार बड़े-छोटे अनेक युद्ध करने पड़े थे। इस बीच में उसे बड़ी-बड़ी बाधाओं का भी सामना करना पड़ा, और उस पर अनेक प्रकार की विपत्तियाँ भी आईं। पर इन सबके अंत में वह धीरे-धीरे पहले समस्त इटली का स्वामी बन गया, और तब उसने संसार के सबसे बड़े साम्राज्य का रूप घारणा किया। उस काल की समस्त घटनाओं को इम नीचे लिखे तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—(क) इटली के स्वामित्व के लिये युद्ध, जो है० प० ३०० से २६६ तक होते रहे, (ख) परिचमी समुद्रों के आविष्ट्य के लिये युद्ध, जो है० प० २६४ से २०० तक होते रहे, और (ग) पूर्वी युद्ध, जिनका समय है० प० २०० से १५० तक है।

(क) इटली के अच्छे दिन लें गए थे। उस पर दचिणा-पूर्व की ओर से सेमनाइट लोगों के आक्रमण होने लगे थे, और उत्तर की ओर से केल्ट या गाल लोग उन पर चढ़ाइयाँ करते रहते थे। (है० प० ३६० में तो ये गाल लोग रोम तक आ पहुँचे थे, और उन्होंने रोम पर अधिकार करके उसे जला दाला था। पर अंत में वे लोग लूट का बहुत-सा माल लेकर वहाँ से चले गए थे।) उधर यूनानी लोग भी धीरे-धीरे समुद्र पर से उनका अधिकार हाटाते जा रहे थे, और है० प० ४७४ में सायराक्यूजवालों ने उन्हें बद्द-युद्ध में इतनी तुरी तरह परास्त किया था कि फिर उनकी बद्द-एक्सिप्टी काम की न रह गई, और फिर कभी उठकर खड़ी न हो सको। इन्हीं सब कारणों से इटली के लोग धीरे-धीरे बहुत ही निर्बंध हो गए थे। पर रोम के सबसे अधिक भीषण शत्रु उसके आस-पास के पहाड़ी लोग थे, जो वाल्सियन, सैबायन,

विविधन तथा सेमनाइट कहताते थे। इनमें से सेमनाइट लोग रोम से कुछ अधिक दूरी पर रहते थे। रोम का बड़ता हुआ महारथ देखकर इन लोगों के मन में बहुत हृदयां उत्पन्न होती थी। फिर वे शब्द भी कुछ साधारण नहीं थे, इनके कारण रोम को प्रायः बहुत कष्ट पहुँचता था। इन शब्दों को बताने के लिये रोम को इनके साथ लगातार बहुत दिनों तक अनेक युद्ध करने पड़े थे। विशेषतः सेमनाइटों के साथ तो उन्हें तीन बार बहुत बड़े-बड़े युद्ध करने पड़े थे, जो ३०० प० ३४३ और २६० के बीच में हुए थे। परंतु लैटिन तथा इरनिकन लोगों की सहायता से अंत में सदा रोम की ही विजय होती रही। ३०० प० ३४३ में रोम ही समस्त मध्य इटली का स्वामी हो गया, और ३०० प० ३३८ में लैटिन संघ का अंत हो गया। अब केवल रोम ही सारे लैटिनम् और उसके आस-पास के प्रदेश का स्वामी रह गया।

जब रोमने सेमनाइट लोगों पर विजय प्राप्त कर ली, तब दक्षिणी इटली के यूनानी नगरों के साथ उसका संबंध हुआ। रोमन लोगों को बराबर आये बड़ते हुए देखकर टेरेंटम-निवासियों के मन में इतना भय उत्पन्न हुआ कि अंत में, ३०० प० ३८० में, उन लोगों ने पृथिवी के राजा पाइरस से सहायता माँगी। दस वर्ष तक रोमनों को पाइरस से कहीं चार परास्त होना पड़ा। परंतु भी शब्दों की ओर से संभिं की जो शर्तें आती थीं, उन्हें मानने से रोमन लोग साक्ष इनकार कर देते थे। अंत में जब पाइरस ने देख लिया कि इन विजयों का भी इमें कोई विशेष फल प्राप्त नहीं होता, तब अंत में, ३०० प० २७५ में वह इटली को छोड़कर चला गया। इसके बाद ही यूनानी नगरों ने बहुत सहज में रोम की अधीनता स्वीकृत कर ली, जिससे रोम का राज्य अरनो-नदी से लेकर दक्षिणी समुद्र-तट तक फैल गया। यह चेत्र वही है, जो आजकल इटली कहताता है। इसे,

अभी तक पो-नदी की तराई पर रोमनों का अधिकार नहीं हुआ था । वहाँ छोटी-छोटी कहुं गैलिक जातियाँ बसती थीं, जिन्हें रोम ने अभी तक स्पर्श नहीं किया था ।

(च) अब रोम का राज्य भूमध्यसागर तक पहुँच गया था । मेसिसना के जल-दमरूमध्य के उस पार सिसली टापू पहुँचता था, जहाँ की भूमि बहुत ही उपजाऊ थी । यहाँ बहुत दिनों से अनेक यूनानी नगर वसे हुए थे, जिन्हें बशावर कारथेजवालों का मुक्रावका करना पड़ता था, क्योंकि इस टापू के पश्चिमी भाग में कारथेजवालों के हाथ में कहुं बहुत दृढ़ स्थान थे । कारथेज एक बहुत बड़ा नगर था । टायर से आए हुए फ्रिनीशियन लोगों ने यह नगर बसाया था, और पश्चिम में यह सबसे बड़ा व्यापारी नगर हो गया था । योदे-से बहुत धनी व्यापारियों का एक दूज इस नगर पर राज्य करता था । उसके नागरिक सैनिक नहीं, बल्कि व्यापारी थे । कारथेज के आस-पास जो आफ्रिकन प्रदेश था, उसी में कुछ छोटी-छोटी न्यूमोदियन जातियाँ रहा करती थीं ; और कारथेजवालों को जब आवश्यकता होती थी, तब वे उन्हीं जातियों में से अपने लिये भाड़े पर सैनिक मौंगवा दिया करते थे । पर किर भी कारथेज के निवासी सदा समुद्र-वाहा में बहुत साहसी और चतुर होते थे । उनके व्यापारी व्हाङ्ग उत्तर में ब्रिटेन तक और दक्षिण में आफ्रिका के पश्चिमी समुद्र-तट पर बहुत दूर तक चले जाते थे । जब रोम की उच्चति होने लगी, तब कारथेजवालों के मन में इंध्यां भी उत्पन्न हुईं और भय भी । अब यह बात निश्चित-सी हो गई कि इन दोनों राज्यों में शीघ्र ही युद्ध होगा ।

रोमवालों के साथ कारथेजवालों के दो प्रसिद्ध और बड़े युद्ध हुए थे, जो प्यूनिक युद्ध कहलाते हैं । इनमें से पहला युद्ध है० प० २६४ से २४१ तक और दूसरा युद्ध है० प० २१६ से २०२ तक

होता रहा। इनमें से पहला युद्ध मुख्यतः समुद्र में हुआ था। सिसली में जो स्थल-युद्ध हुए थे, उनमें विश्वास कुछ भी न हो सका था; क्योंकि कभी एक पक्ष विजयी होता था और कभी दूसरा। पर रोम की जो सेवा आफिका के तट पर जाकर उतरी थी, वह विजय कुछ नह कर दी गई थी। रोम ने समझ लिया कि हम विजय उभी प्राप्त कर सकते हैं, जब हम कारथेज को समुद्र में परास्त करें। पर जल-युद्ध में कारथेज पर विजय प्राप्त करने के लिये एक अच्छे जहाजी बेड़े की आवश्यकता थी। इस प्रथम में उसने जितना अधिक अध्यवसाय दिखलाया था, वह अवश्य ही बहुत प्रशंसनीय है। यह ठीक है कि इस काम में रोम को यूनानी तथा इटलीन नाविकों से थोड़ी-बहुत सहायता मिल सकती थी, लेकिन फिर भी ऐसी अवस्था में, जब कि एक प्रबल शत्रु के साथ युद्ध लिया हो, एक स्थल-शक्ति के लिये अपनी एक नह जल-शक्ति खड़ी कर कोना और उसी से ऐसी शक्ति का मुकाबला करना बहुत ही कठिन है, जो संसार में सबसे बड़ी जल-शक्ति हो। जब रोम ने पहले पहले अपना नया और भारी जहाजी बेड़ा तैयार करना शुरू किया, तब भाग्य उसके विपरीत था। पहले उसने चार बेड़े तैयार किए थे, पर वे चारों था तो युद्ध में या तूकान में नह हो गए। पर रोमवालों के सौभाग्य से कारथेज की सरकार इतनी मूर्ख निकली कि वह अपने सौभाग्य का उचित उपयोग न कर सकी, और अपने जहाजी बेड़े को ठीक अवस्था में न रख सकी। इसके अतिरिक्त सिसली में कारथेज सरकार को और से हैमिलकर

७ रोम के पास पहले से कुछ जहाज तो अवश्य थे, पर रोमन लोग जहाजों पर और समुद्रों में काम करना कभी पसंद नहीं करते थे; औह उनका जहाजी बेड़ा सिफ़ू मज़ाक ही था।

नाम का जो सेनापति नियुक्त था, उससे स्वयं वह सरकार हतनी हैरानी रखती थी कि उसके पास सिसळी में उचित सहायता नहीं भेजती थी। इसलिये रोम को एक बार फिर अपना जहाज़ी बेड़ा तैयार करने का प्रयत्न करने के लिये एक और अस्त्रा अवसर मिल गया। पर उस समय रोम-सरकार के पास धन ही नहीं रह गया था, इसलिये रोम के कुछ धनियों ने स्वयं ही दो सौ जहाज़ी बनवाकर राज्य की भेंट कर दिए। बस, तभी से रोम का भाग्य पलटा। रोम के इस जहाज़ी बेड़े ने हगोशियन टापुओं के पास शत्रु के जहाज़ी बेड़ों को पूर्ण रूप से परास्त कर दिया, और कारथेज को विवश होकर शांति के लिये प्रार्थना करनी पड़ी; क्योंकि यदि उस समय वह शांति के लिये प्रार्थना न करता, तो रोम की सेना उसके देश में जा पहुँचती।

इस युद्ध के फल-स्वरूप रोम को सिसळी मिल गया और सिसळी ही रोमन साम्राज्य का पहला प्रांत बना। इसके कुछ ही दिनों बाद रोम ने कारसिका और सारहीनिया पर भी विजय प्राप्त कर ली, और इस प्रकार वह पश्चिमी समुद्रों का स्वामी बन गया। उधर उत्तर की ओर से कुछ गाज़ सैनियों ने फिर हटली पर आक्रमण किया था; पर रोम ने उन आक्रमणकारियों पर भी विजय प्राप्त कर ली, और पोन्ड्री तक का सारा प्रदेश जीतकर अपने अधिकार में कर लिया।

लेकिन इतना होने पर भी यह न समझना चाहिए कि कारथेज के साथ रोम के युद्धों का अंत हो गया था। कारथेजवाले रोम से इस पराजय का बदला लुकाने के लिये अधीर हो रहे थे, इसलिये सेनापति हैमिलकर को उसकी सरकार से यह आज्ञा मिल गई थी कि उसने के दिल्लियी भाग में कारथेज का राज्य स्थापित किया जाय। वहाँ हैमिलकर ने प्रायः नौ वर्षों तक परम स्वतंत्रता-पूर्वक शासन किया था, उस देश में आकर अनेक नए साधन प्रस्तुत किए थे,

और एक अच्छी सेना भी तैयार कर ली थी। ई० प० २२६ में जब हैमिल्कर की मृत्यु हुई, तब वह अपने अधिकार के साथ-साथ रोम से बदला चुकाने का भार भी अपने पुत्र इच्छीवाज्ञ को दे गया। ई० प० २२० में इच्छीवाज्ञ युद्ध करने के क्रिये तैयार हो गया।

इतिहास में जो पाँच-छ बहुत बड़े-बड़े सेनापति हो गए हैं, इच्छीवाज्ञ भी उन्हीं में से एक है। रोम के साथ धूणा करना वह सदा अपना परम पवित्र कर्तव्य समझता था। इटली पर बढ़ समुद्र के मार्ग से तो आक्रमण कर ही नहीं सकता था, क्योंकि समुद्र में रोमन बैड़े का पूरा-पूरा राज्य था। इसलिये वह अपने साथ एक जाति सैनिकों को लेकर स्थल के मार्ग से आगे बढ़ने लगा। पहले उसने पेरिनीज पर्वत-भाग को पार किया, और बढ़ता हुआ रहोन तक चढ़ा गया। रास्ते में स्पेन और गालिं की ओर छोटी-छोटी अनेक जातियाँ पहली थीं, उन्हें भी वह जीतता और अपने अधीन करता गया। इसके उपरांत आलप्स् पर्वत पार करने में उसे बहुत आदि के कारण बहुत अधिक कठिनाहयों का सामना करना पड़ा था। आलप्स् पर्वत पार करने के उपरांत उसके पास एक जाति सैनिकों में से केवल तीस हजार सैनिक बच रहे थे। बाकी सब रास्ते में मर-खप गए थे। उन्हीं तीस हजार सैनिकों को साथ लेकर उसने इटली में प्रवेश किया। संसार में अब तक जो इने-गिने परम साइस-पूर्ण तथा परम आश्चर्य-जनक अभियान या युद्ध-यात्रा हुई हैं, इच्छीवाज्ञ का यह अभियान या युद्ध-यात्रा भी उन्हीं में से एक है। पर कदाचित् इससे भी बड़कर आश्चर्य-जनक बात यह है कि सोलह वर्षों तक उसने इटली में अपनी स्थिति बनाए रखती थी। सोलह वर्षों तक इटली में शत्रु की भाँति रहकर वह बरायर रोमन सैनिकों को परास्त करता रहा। दिकिनस और द्रेविया-नामक स्थानों में, द्रेसिमेन-नामक मोज के किनारे और केनेहै के युद्ध-चेत्र में, सभी

जगह हस्तीबाल ने रोमन सैनिकों को परास्त किया । बलिक हम कह सकते हैं कि हटकी में रोमनों के साथ उसका पक भी ऐसा युद्ध नहीं हुआ, जिसमें उसकी हार हुई हो । गाढ़ लोगों ने भी अपने सैनिक देकर उसकी सहायता की थी । उधर दक्षिणी हटकी के निवासियों ने भी रोम के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया था, और रोम-नगर पर बहुत बड़ी विपत्ति आने की संभावना हो रही थी । पर फिर भी रोमन लोगों के सौभाग्य और इत्ता या हठ ने उनकी रक्षा कर ही ली ।

पहले रोम के सौभाग्य को ही लीजिए । कारथेजवालों ने हस्तीबाल को विलकुल यों ही छोड़ दिया था । वे न तो हस्तीबाल की सहायता के लिये सैनिक आदि भेजते थे, और न गढ़ों या परकोटों आदि को तोड़ने के यंत्र हो । हस्तीबाल ये सब यंत्र अपने साथ भी नहीं ला सका था, इसलिये वह रोम पर किसी प्रकार घेरा नहीं ढाल सकता था । फिर रोम के सब साथियों ने भी (केवल दक्षिणवाले साथियों को छोड़कर) बराबर इत्ता-पूर्वक रोम का साथ दिया था । हस्तीबाल को यह आशा थी कि रोम के ये सब साथी विद्रोही हो जायेंगे, पर यह बात नहीं हुई ।

अब रोम को इत्ता या हठ लीजिए । कठिन-से-कठिन विपत्तियाँ आने पर भी रोमन लोग कभी साहस नहीं छोड़ते थे । केव्हेह के युद्ध-यंत्र में रोमनों की हतनी बड़ी हार हुई थी कि उसमें उनके सत्तर हजार आदमी मारे गए थे, और अकेला सेनापति ही किसी प्रकार उस युद्ध-यंत्र से जीता बचकर जीता था । फिर भी उस अकेले सेनापति का स्वागत करने के लिये रोम की सिनेट के सब सदस्य और बहुत-से निवासी नगर के बाहर आए थे, और सब लोगों ने मिलकर इसलिये उसे धन्यवाद दिया था कि “वह अभी तक रोमन प्रजातंत्र की ओर से निराश नहीं हुआ था ।”

हच्छीबाल का एक भाई था, जिसका नाम हसद्रूबाल था। वह इच्छर कुछ दिनों से स्पेन में पढ़ा हुआ था, और रोमन सेनाएँ उसकी निगरानी कर रही थीं। हसद्रूबाल उन सैनिकों की निगाह बचाकर किसी तरह निकल आया, और अपने साथ एक बहुत बड़ी सेना लेकर हच्छीबाल की सहायता करने के लिये इटली आ पहुँचा। अब रोमवालों को सबसे बड़ी विपत्ति अपने सामने दिखाई दी। यदि इन दोनों भाइयों की सेनाएँ आपस में मिल जातीं, तो रोम का निस्तार इतना बहुत ही कठिन था। पर हच्छीबाल की गति-विधि की निगरानी करनेवाली एक रोमन सेना के प्रधान अधिकारी ने, जिसका नाम क्लाडियस नीरो था, हसद्रूबाल के उन दूतों को पकड़ लिया, जो कुछ संदेश लेकर हच्छीबाल के पास आ रहे थे। हच्छीबाल को धोखे में रखने के लिये नीरो ने अपने थोड़े-से सैनिकों को तो वहाँ लोड़ दिया, और अपनी मुख्य सेना को लेकर दूसरी रोमन सेना के साथ आ मिला। हसद्रूबाल के सैनिक भी मुस्ताने भी नहीं पाए थे कि उन्हें दोनों रोमन-सेनाओं ने उन पर आक्रमण कर दिया, और मेटारस-नदी के किनारे युद्ध करके उन्हें परास्त कर दिया। उस युद्ध-चंत्र में ही हसद्रूबाल मारा गया था। नीरो की दुर्दिमत्ता से रोमनों का यह काम बहुत मार्कें का हो गया और हच्छीबाल को सहायता पहुँचने का लो अंतिम अवसर था, उससे भी वह बंचित रह गया, तो भी दच्छियाँ इटली में हच्छीबाल चार बरस तक ठहरा रहा। पर वह रोम को कोई विशेष उत्ति न पहुँचा सका। इसी बीच में कुछ रोमन सेना आम्रिका में जा पहुँची, और कारथेज की रक्षा करने के लिये हच्छीबाल वापस लुका लिया गया। उस समय हच्छीबाल के साथ बहुत ही थोड़े-से पुराने सैनिक बच रहे थे। अतः उन्हीं थोड़े-से साथियों और बहुत अधिक नए सैनिकों को लेकर उसने

आफ्रिका में जामा-नामक स्थान में हैं। पूर्व २०२ में रोमनों का मुक़ाबला किया, पर वहाँ भी वह बुरी तरह से हार गया।

इस प्रकार कारथेजवालों के साथ रोमनों के युद्ध का अंत हो गया। कारथेज को बहुत कड़ी शर्तें मानकर संधि करनी पड़ी। विदेशों में जो उसके अधीनस्थ प्रदेश थे, वे सब उससे छीनकर रोमनों के हाथ में चले गए, और उसके बेड़े में केवल बीस जड़ाज्ञ रहने विष गए। अब कारथेज एक छोटा-सा नगर-राज्य रह गया, जिसे आस-पास की छोटी-छोटी जातियाँ बराबर तंग करती रहती थीं, ज्योंकि रोमन जोग उन जातियों को कारथेजवालों के खेत आदि लूटने के लिये बराबर उसकाया करते थे। इसमें रोमवालों का उद्देश्य यह था कि कारथेज के निवासी फिर से घनबान् या बदलवान् न होने पावें। हैं पूर्व १४६ में रोम ने फिर अपनी एक सेना कारथेज पर चढ़ाई करने के लिये भेज दी। इस बार जड़ाई का कोई वास्तविक कारण तो या ही नहीं, रोमवालों को केवल इस बात का भय था कि कहीं कारथेजवाले फिर से हाथ-पैर निकालने का प्रयत्न न करने लगें। कारथेजवाले दो वर्ष तक तो रोमनों के साथ बहुत अच्छी तरह छाड़ते रहे, पर अंत में रोमनों ने कारथेज पर अधिकार करके उसे नष्ट कर डाला। यह घटना हैं पूर्व १४६ की है। इतिहासज्ञ जोग इस युद्ध को तीसरा 'प्यूनिक युद्ध' कहते हैं। पर यदि वास्तविक इष्टि से देखा जाए, तो यह कोई युद्ध नहीं था, बल्कि रोमनों की ओर से कोरा पारविक दमन था। रोम ने अब तक जिस बीरता से कारथेजवालों के साथ इतने दिनों तक युद्ध किया था, उसका अंत उन्होंने इस अनुचित और अयोग्य रूप से कर डाला।

इन प्यूनिक युद्धों का परिणाम यह हुआ कि सारे स्पेन पर रोम का अधिकार हो गया, और उत्तरी आफ्रिका में उसकी शक्ति

सर्वधेष्ठ हो गई। इसके बाद कुछ ही वर्षों के अंदर रोमवाके अपना अधिकार बढ़ाते हुए आक्षय-पर्वत तक पहुँच गए, और शो-नदी के दस पार जितनी गाल-जातियाँ बसती थीं, उन सबको उन्होंने परास्त कर दिया। अब पश्चिमी संसार में रोम ही सबसे अधिक वलवान् राष्ट्र रह गया था।

(ग) अभी दूसरे प्यूनिक युद्ध का अंत हुआ ही था कि रोम को पूर्व की ओर ध्यान देना पड़ा। मकदूनिया के राजा फिलिप और सीरिया के राजा एंटियोकस ने आपस में मित्रता कर की थी। फिलिप उस समय यूनानी नगरों पर आक्रमण कर रहा था, और बच्चों से ऐसा जान पहुँचा था कि वह फिर से यूनान में अपना साक्रान्ति स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है। उसी समय रोम ने युद्ध को घोषणा कर दी, और ई० प० १६८ में साइनोसेफैज़ो-नामक स्थान पर उसने फिलिप को भली भाँति परास्त किया। उसका साथी एंटियोकस कुछ देर बाके बहुत बड़ी सेना लेकर बड़े ठाट से, ई० प० १६२ में, यूनान की ओर बढ़ा, पर वह भी यरमापिणी में हराकर पश्चिमा की ओर भगा दिया गया। रोमनों ने रहोइस और परगेम्म से सहायता की, जो पहले से ही सीरिया से हृथ्या रखते थे, और एंटियोकस के फिनीशियन बेड़े को उन्होंने दो बार परास्त किया। इसके बाद रोमनों की एक बड़ी सेना पश्चिमा में जा पहुँची, और उसने ई० प० १८० में मैगनेशिया-नामक स्थान में एंटियोकस की सारी शक्ति छिप-मिल कर ढाली। एंटियोकस को विवश होकर यह स्वीकृत करना पड़ा कि हम रोम को राज-कर दिया करेंगे; और साथ ही उसे पश्चिमी पश्चिमा की देशी रियासतों को स्वतंत्रता भी देनी पड़ी। उस समय रोम ने वहाँ अपना कोई नियी प्रांत नहीं स्थापित किया था। पर ही, तभी से पश्चिमा माझनर में वह सर्व-प्रधान हो गया था। सीरिया का राज्य धीरे-धीरे ढूँढ़ने लगा। उस, अब उसका अंत होने में यही

कसर रह गई थी कि रोम तैयार होकर स्वयं ही उसे अपने हाथ में कर ले ।

उस समय तक मेसिडोन अपने नए राजा परसियस के अधिकार में चला गया था, और अभी तक रोम को कुछ-न-कुछ तंग करता चलता था । पर अंत में ३० प० १६८ में पाइडना के युद्ध में वह भी पूरी तरह परास्त कर दिया गया । ३० प० १४८ और १४६ के बीच में मेसिडोनिया और सारा यूनान रोम के हाथ में चला गया, और अब ये दोनों प्रदेश रोमन साम्राज्य के प्रांत हो गए । ३० प० १६८ में ही रोम ने मिस्र पर भी पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया था, और सीरिया के आक्रमणों से उसकी रक्षा करने का भार अपने ऊपर ले लिया था । मिस्र में वहाँ के राजों का अधिकार सो रहने दिया गया था, पर तब से वे राजा खोग रोमन साम्राज्य के अधीनस्थ माने जाते थे ।

अब रोम सारे भूमध्य का स्वामी हो गया था, और उसने अधिकांश विजय मुख्यतः अपने सद्गुणों के कारण पाई थी । रोमन खोगों में प्राचीन रोमन वीरों के संबंध में जो कहानियाँ प्रचलित हैं, वे संभवतः मन-गढ़त ही हैं, पर फिर भी उन कहानियों से यह पता अवश्य चलता है कि रोमन खोग किस प्रकार के सद्गुणों के उपासक थे । उन खोगों में ब्रूटस के संबंध में एक दंतकथा प्रचलित है, जो ‘रोमन पिता’ था । कहते हैं जिस समय ब्रूटस ने स्वयं अपने पुत्र को राजद्रोह के अपराध में प्राण-दंड की आज्ञा दी थी, उस समय उसके चेहरे पर कहीं नाम को भी विकार नहीं दिखाई पड़ा था । एक और सेनापति के संबंध में, जिसका नाम सिनसिचेटस था, प्रसिद्ध है कि जिस समय उसके पास यह आज्ञा पहुँची थी कि तुम चलकर सेना का सेनापतित्व करो, उस समय वह अपने जेत में हज़ जोत रहा था । जब उसने युद्ध में विजय

ग्रास कर ली, तब वह फिर पहले की ही तरह आकर खेती-बारी करने लगा। इनके सिवा डेसियाई नाम के दो भाई थे, जो युद्ध-चेत्र में सबसे आगे कूदे थे, और सबसे पहले मरे थे; क्योंकि उनके मन में यह इह विश्वास था कि हमारे इस प्रकार के आत्म-विजिदान से रोम पर अवश्य ही देवतों की फूपा-दृष्टि होगी। चाहे ये कथाएँ सत्य न हों, पर फिर भी इनसे इतना अवश्य सूचित होता है कि जिन गुणों के प्रति इन कथाओं में आदर प्रकट किया गया है, वे वही गुण थे, जो आरंभिक काल के रोमनों ने कार्यतः प्रकट किए थे।

स्वयं रोमनों के ही कथनानुसार उन लोगों में जो गुण थे, वे इस प्रकार हैं—प्रतिभा, जिसमें मनुष्य को आत्म-प्रतिष्ठा का ध्यान रहता है, और वह धीर तथा गंभीर होता है। भक्ति, जिसमें दैवी और मानवी दोनों प्रकार के अधिकारियों या सत्ताओं के प्रति कर्तव्य-पालन का ज्ञान रहता है; और सरबता, जिसमें मनुष्य अपने जीवन के सब कार्यों में सदा सच्चा और इमानदार रहता है। रोमन नागरिकों में व्यवस्था और मर्यादा-पालन का सदा बहुत अधिक ध्यान रहता था। इस बात की शिक्षा उन लोगों को घर से ही मिलने लगती थी। घर में सारा और पूरा अधिकार पिता का ही रहता था। रोमनों का विश्वास था कि घर में दो कुछ-देवता रहते हैं; और इसी विश्वास के कारण उनके घरों में स्थवरस्था और मर्यादा-पालन का भाव बहुत अधिक होता था। कोई कभी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता था, और बड़ों की आज्ञा का सदा पालन करता था। जब बालकों को घर में ही आरंभ में इस प्रकार की पूरी-पूरी शिक्षा मिल जाती थी, तब वे बड़े होकर राज्य के प्रति भी अपने कर्तव्यों का उसी प्रकार पालन करते थे, और राज्य के देवतों की मर्यादा का भी बैसा ही ध्यान रखते थे। धीरे-धीरे रोमन लोगों के मन में यह विश्वास बैठ गया

कि हंशवर ने रोम की सहित अनेक महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिये की है ; और इसी से उनके मन में रोमन राष्ट्र की निष्ठा-पूर्ण सेवा करने का भाव चर्पज दुआ था । रोम के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना और उस पर पूरी-पूरी निष्ठा रखना उनकी 'भक्ति' का एक आवश्यक अंग था । इसके साथ ही उन्होंने पूर्ण मात्रा में साहस और अध्यवशाय को भी सम्मिलित कर दिया था । उनके सेनापतियों में बहुत ही योद्धे ऐसे हुए होंगे, जो बहुत अधिक कुशल हों । उनके अवैतनिक नागरिक सैनिक भी प्रायः पराजित हुआ करते थे ; पर रोम कभी किसी से पूर्ण रूप से परास्त नहीं हुआ । रोम के आरंभिक इतिहास में पग-पग पर यही देखने में आता है कि उसके निवासियों में सबसे बड़ा गुण यह था कि उनका निश्चय बहुत ही दृढ़ होता और कभी टलता नहीं था ।

रोम की इतनी अधिक उच्छ्रित होने का कदाचित् सबसे बढ़कर कारण यह था कि अपने जीते हुए प्रदेशों को अपने हाथ में रखने को उसमें असाधारण शक्ति थी । एक पारस को छोड़कर और किसी दूसरी शक्ति ने तब तक इतने बड़े साजाझे पर पूर्ण रूप से शासन करने और सबको मिलाकर एक में रखने की इस प्रकार की योग्यता और सामर्थ्य नहीं दिखाई ही । इटली के जितने जिक्रों को रोम ने जीता था, वे सब रोम के साथ संधि करके संबद्ध हो गए और उसके मित्र तथा साथी बन गए थे । रोम ने अपने इन मित्रों के साथ अनेक प्रकार की विआयतें की थीं । इस प्रकार रोम के भास्य के साथ उन लोगों का बनिष्ठ संबंध हो गया था । रोम इस प्रकार की नीति का प्रबोग प्रायः स्वार्थ की इष्टि से ही करता था, और कदाचित् रोमन शासन का मूख-सिद्धांत यही था कि शासियों में परस्पर विभेद

दृश्यमान करके उन पर शासन करना चाहिए। रोम के मिश्र और साथी राष्ट्रों को आपस में एक दूसरे के साथ मिश्रता या संघि आदि करने का अधिकार नहीं था। पर यदि रोम का कोई साथी या मिश्र राष्ट्र किसी प्रकार बहुत बकवान् या बहुत स्वतंत्र हो जाता था, तो रोम कभी उसके साथ कृतज्ञता का व्यवहार नहीं करता था। साधारणतः उसको जीति बुद्धिमत्ता और उदारता-पूर्ण ही होती थी। रोम ने जो सफ़ज़ताएँ प्राप्त की थीं, उनका कारण युद्ध तो था ही, पर साथ-ही-साथ उसकी यह जीति भी थी। यदि वालिसयनों और सेमनाइटों के सुक्रावले में उसे सौभाग्यवश लैटिन और हरनिकन खोग मिले थे, यदि हज़ारीबाल के सुक्रावले में उसे इटैलियन-सरीखे साथी पाने का सौभाग्य था, तो, इस कह सकते हैं, वह इस सौभाग्य का सर्वथा पात्र था।

रोम के बाद अपनी राजनीतिक व्यवस्थाओं के आधार पर ही अपने मिश्र और साथी राष्ट्रों का विश्वास नहीं करता था। उसने इटली के एक सिरे से दूसरे सिरे तक कहुं बड़ी-बड़ी सड़कें बनवाई थीं, जो वलेमानियन मार्ग और पृथिव्यन मार्ग के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन सड़कों पर सैनिक और व्यापारी सभी आ-जा सकते थे। इन सड़कों के मुक्क्य-मुख्य स्थानों पर रोम ने कहुं 'उपनिवेश' या ऐसे नगर स्थापित किए थे, जिनमें स्वयं उसकी ओर से बसाए हुए ऐसे ही नागरिक रहते थे, जिन्हें कहुं विशिष्ट अधिकार प्राप्त थे, और जो राज-मक्ति के सूचों द्वारा रोम के साथ पूर्ण रूप से संबद्ध होते थे। ये उपनिवेश सैनिक छावनियों का भी काम देते थे, और रोमन-प्रभाव तथा प्रभुत्व के भी केंद्र होते थे। इस प्रकार जहाँ-जहाँ रोमनों का राज्य स्थापित होता था, वहाँ-वहाँ उसके साथ रोमन-कानून और शासन-प्रब्लेमी, रोमन-व्यापार, रोमन-आचार-व्यवहार और रोमन-

बास्तु-कब्जा आदि भी जाती थी। रोम के साथी और अधीनस्थ राष्ट्र भी खोरे-खीरे रोमन-रंग में ही रँग जाते थे; अर्थात् उनकी रहन-सहन भी रोमन-साँचे में ही ढक जाती थी। यह बात इमें विशेष रूप से ध्यान में रखनी चाहिए, क्योंकि यह समस्त रोमन-इतिहास में समान रूप से पाई जाती है। जब रोम ने अपने अधीनस्थ विदेशों प्रांतों के साथ उसी नीति का व्यवहार करना आरंभ किया, जिसका व्यवहार उसने इटली के साथ किया था, तभी से रोमन साम्राज्य की उज्ज्वति का काल आरंभ हुआ था। रोम का सबसे बड़ा काम यही हुआ था कि उसने पहले पहल सारे संसार को यह दिखाया दिया कि किस प्रकार एक बहुत बड़े और संयुक्त साम्राज्य पर अधिकार रखता जा सकता तथा किस प्रकार उस पर शासन किया जा सकता है। इस विषय में रोम ने सबसे पहला काम यह किया था कि समस्त इटली को अपने अधिकार में करके एक में संयुक्त किया था, और उस समस्त प्रायद्वीप को एक रोमन देश के रूप में परिवर्त कर दिया था।

२. रोमन-प्रजातंत्र

आरंभिक काल में रोम में राजों का शासन था, जिनकी सहायता के लिये एक कौसिङ्ग या सिनेट होती थी। इस कौसिङ्ग के सदस्य अच्छे वंश के कुलीन लोग हुआ करते थे, जो पेट्रोशियन कहलाते थे। इसके अतिरिक्त और सब नागरिक प्लेब या प्लीबियन कहलाते थे। बस, रोमन राष्ट्र में यही दो प्रकार के लोग होते थे। उच्च विशिष्ट कार्यों के लिये ये दोनों ही प्रकार के लोग एक बड़ी सभा में पृक्षत्र होते थे, जो प्लेबली कहलाती थी, और जिसका सभापति स्वयं राजा हुआ करता था। समस्त वास्तविक शक्ति राजा और सिनेट के हाथ में हुआ करती थी।

पर जब इट्टुस्कन सरदारों को रोमनों ने अपने देश से भगा दिया, तब उन लोगों ने जिश्चित किया कि अब रोम में राजों का राज्य नहीं रहेगा। उन लोगों ने अपना एक प्रजातंत्र स्थापित किया, और राजा के स्थान पर दो प्रधान मजिस्ट्रेट रखे, जो कौसिङ्ग कहलाते थे, और जिनका निर्वाचन प्लेबली में होता था। ये मजिस्ट्रेट केवल एक वर्ष तक अपने पद पर रहने पाते थे, इनका दुवारा निर्वाचन नहीं हो सकता था। इन्हीं कांसलों को राज्य के धार्मिक, सैनिक तथा आंतरिक सब प्रकार के कार्यों के संचालन का पूरा-पूरा अधिकार होता था। इनके अधिकारों पर केवल दो प्रतिवंश होते थे—एक तो यह कि हरएक कांसल दूसरे कांसल की दी हुई आज्ञा रोक सकता था, और दूसरे यद माना जाता था कि वे सब कार्य सिनेट से परामर्श लेकर करेंगे। प्लेबली केवल मजिस्ट्रेटों का चुनाव ही कर सकती थी, इसके अतिरिक्त उसे और बहुत ही योद्दे अधिकार प्राप्त थे।

कुछ दिनों बाद जब कांसलों का काम बहुत बढ़ गया, उनके कुछ विशिष्ट विभागों की देख-रेख करने के लिये छोटे दरबे के कुछ और मजिस्ट्रेटों की नियुक्ति की भी आवश्यकता हुई। ये लोग प्राप्टर्स कहलाते थे। (पहले कांसल लोग ही प्राप्टर्स कहलाते थे, पर जब छोटे दरबे के और भी प्राप्टर्स नियुक्त होने लगे, तब दोनों सुख्य प्राप्टरों का नाम कांसल पड़ गया, और नए छोटे मजिस्ट्रेट प्राप्टर ही कहलाते रहे।) ये प्राप्टर लोग न्यायालयों में बैठकर सुकृदमे सुनते, राजकोश की व्यवस्था करते और नगर के कामों, ज़र्बों और गजियों आदि का प्रबंध करते थे। उयों-उयों रोम-नगर का विस्तार बढ़ने लगा, त्यों-त्यों इन पदाधिकारियों की संख्या भी बढ़ने लगी। पर इन सबका निर्वाचन एसेंब्ली में ही, केवल एक वर्ष के लिये, होता था।

पहले केवल पेट्रोशियन या कुलीन लोग ही कांसल हो सकते थे, और कोई कुलीन किसी अधिकारियन या साधारण आदमी के पहाँ शादी-ब्याह नहीं कर सकता था। पर नगर-चिकासियों में बहुत अधिक संख्या इसी प्रकार के साधारण आदमियों की थी, और फिर, आवश्यकता पड़ने पर, प्रत्येक साधारण मनुष्य को सेना में काम करना पड़ता था, इसकिये जनसाधारण इस प्रकार के भेदों का विरोध करने लगे, और कहने लगे कि हमारी मर्यादा भी प्रायः कुलीनों के समान ही मानी जानी चाहिए। कुलीन लोग जनसाधारण की इस माँग का बहुत दिनों तक घोर विरोध करते रहे। धोरे-धोरे जनसाधारण की जीत होती गई, और कुलीनों ने विवश होकर जनसाधारण को बहुत-से नए अधिकार दिए। उनमें से कुछ का यहाँ वर्णन किया जाता है।—

(१) इ० ४० ४६४ में जनसाधारण में से दो विशिष्ट मजिस्ट्रेट नियुक्त किए गए, जिनका निर्वाचन जनसाधारण ने

ही किया था। इन मजिस्ट्रेटों को यह अधिकार था कि आवश्यकता पड़ने पर जनसाधारण को तुलाकर उनकी समाएँ किया करें। ये लोग नए क्रानूरों के लिये प्रस्ताव तो नहीं कर सकते थे, पर यदि कोई दूसरा मजिस्ट्रेट काम करना चाहता था कि उसी नए क्रानूर के लिये प्रस्ताव करता, तो ये लोग उसे रोक अवश्य सकते थे। यदि नगर में किसी साधारण मनुष्य के प्रति कोई अत्याचार आदि होता, तो ये लोग उसे भी रोक सकते थे। इनका पद 'पवित्र' या 'अवध्य' घोषित कर दिया गया था। अथात् यह बात खुले आम मान ली गई थी कि जब तक ये मजिस्ट्रेट अपने पद पर रहें, तब तक इन लोगों पर हाथ छोड़ना धार्मिक दृष्टि से पाप है। धीरे-धीरे इन मजिस्ट्रेटों का महात्म्य बढ़ता गया। यहाँ तक कि है० ५० २८७ में इस आशाय का पूर्ण क्रानूर बन गया कि जनसाधारण की प्रसेवकी बो कुछ निर्णय करे, वे निर्णय भी उन्हीं क्रानूरों के समान माने जायें, जो समस्त जनता की पूरी प्रसेवकी के बनाए हुए होते हैं।

(२) आरंभिक काल में रोम के क्रानूर लिखे नहीं जाते थे, इसीलिये कोई निरिचत रूप से यह नहीं कह सकता था कि अमुक क्रानूर का स्वरूप यह है, अथवा उसमें ये-ये बातें हैं। इसका परिणाम यह होता था कि कुकीन लोग जनता के इस अज्ञान का उपयोग स्वयं अपने लाभ के लिये किया करते थे, और उनका प्रयोग जनसाधारण के विरुद्ध भी हो जाया करता था। पर है० ५० ४२० के कागमग रोमन क्रानूरों का पहलेपहल लिखित संग्रह प्रस्तुत किया गया, जो इतिहास में 'बारह कोष्ठ' (Twelve Tables) के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ ही दिनों बाद कुकीनों और जनसाधारण में विवाह-संबंध भी होने लगा।

(३) है० ५० ३६० में यह निरिचत हुआ कि जनसाधारण में

से तो कुछ लोग कांसक हो ही सकते हैं, साथ ही जनसाधारण का एक आदमी कांसक के पद पर अवश्य ही नियुक्त होना चाहिए।

उच्च और निम्न दोनों वर्गों में जो अंतर थे, वे इस प्रकार धीरे-धीरे दूर हो गए। जो राजनीतिक सुधीते अब तक केवल कुलीनों को प्राप्त थे, वे जनसाधारण को भी प्राप्त हो गए। फिर सिद्धांततः यही माना जाता था कि नागरिकों की प्रसेवकी का ही सब अधिकार है, और सब कानूनों का प्रसेवकी द्वारा स्वीकृत होना आवश्यक है। इसलिये, हम कह सकते हैं, रोम में उस समय तक पूर्ण रूप से लोकतंत्र स्थापित हो गया था। पर यह बात केवल सिद्धांत-रूप में ही मानी जाती थी, कार्य-रूप में निम्न-जिह्वित कारणों से परिणत नहीं होती थी। रोम को बहुत दिनों तक वरावर सब तरफ युद्ध ही करने पड़ते थे। वहाँ के मजिस्ट्रेट लोग अपने पद पर केवल एक वर्ष के लिये चुने जाते थे, और कांसलों को अपना अधिकांश समय युद्ध-चेत्र में, सेनाओं का संचालन करने में, ही बिताना पड़ता था। सिनेट में अधिकांश वहीं लोग हुआ करते थे, जो मजिस्ट्रेट रह चुके होते थे, और सिनेट सदा अपना काम करती रहती थी। इस प्रकार रोम में सिनेट एक ऐसी संस्था थी, जिसके पास समस्त अनुभव-जन्य ज्ञान रचित रहता था। जब कभी कोई विपक्षि आ चढ़ी होती थी, तब लोग यही समझते थे कि सिनेट ही हमें इससे बचने का मार्ग बतलावेगी। इसीलिये मजिस्ट्रेटों और प्रसेवकी का महसूत तो धीरे-धीरे घटने लगा, और सिनेट का प्रभाव बढ़ने लगा। फिर प्यूनिक युद्धों के समय सिनेट ने ऐसे अच्छे दंग से और उत्साह-पूर्वक काम किया था कि उसे देखते हुए, हम कह सकते हैं, उसने जो अधिकार और महत्व प्राप्त कर लिया था, उसकी वह पूर्ण रूप से पात्र और अधिकारिणी थी।

पर जब बड़े-बड़े युद्ध समाप्त हो गए, तब कुछ ऐसे परिवर्तन होने

जागे, जो रोमन जनता के लिये हानिकर थे, और जिनसे उनको स्थिति पहले की अपेक्षा कुछ गिरने लगी थी।

(१) रोम की शक्ति बराबर बढ़ती जा रही थी, रोमन लोग बराबर युद्ध में विजयी होते जाते थे, हससे रोम-नगर में बाहर से बहुत अधिक नहीं संपत्ति आकर भर गई थी। अब व्यापारी लोग बहुत अधिक धनवान् हो गए थे। वे भी राज्य के प्रतिचित्र कामों में सम्मिलित होना चाहते थे। पर सिनेटर लोग किसी प्रकार अपना पद और अधिकार छोड़ना नहीं चाहते थे। लहाँ तक हो सकता था, न तो नप् आदमियों को डैचे पदों पर पहुँचने देते थे, न सिनेट में ही आने देते थे। धनवानों और जनसाधारण के भलगड़ों का तो अंत हो गया था, पर उसका स्थान उस इंद्र्यां ने अर्हण कर लिया था, जो डैचे घराने के सिनेटरों और धनवान् व्यापारियों में उत्पन्न हो गई थी। इस इंद्र्यां के कारण सिनेट में बहुत-सी नहीं-नहीं विपत्तियाँ लही होने लगीं।

(२) साधारण जनता में अब उसके बे पुराने गुण नहीं रह गए थे। रोम को जो बराबर बहुत दिनों तक लड़ाइयाँ लड़ना पड़ी थीं, उनके कारण परिवारों के बड़े लोगों को प्रायः उसके बुद्ध-लेच में रहना पड़ता था, और उनमें से हजारों आदमी युद्धों में मारे भी गए थे। फिर जब रोम ने नप्-नप् प्रांत इस्तगत किए, तब उनमें स्थायी रूप से सेनाएँ रखना ज़रूरी हो गया, और बहुत-से लोग पेशेवर सिपाही बन गए। परिणाम यह हुआ कि गृह-जीवन शिथिल होने लगा। अब बालकों को पहले की तरह घर में अच्छी शिक्षा नहीं मिल सकती थी। देहातों में बड़े-बड़े खेत झाली रहने लगे, क्योंकि उन्हें जोतने-बोने के लिये काफ़ी आदमी नहीं रह गए थे। धनवानों ने बहुत-सी झमीनें झटीद लीं, और उन्हें चरागाह बनवा दिया। युद्धों में जो हजारों क्रैडी

पकड़कर हटकी जाए जाते थे, वे ही लोग गुलामों की तरह हन चरांगाहों में काम करते थे । रोमन लोगों पर हन गुलामों का बहुत ही ज्ञान प्रभाव पड़ा । एक और तो रोमन लोग विलकृज्ञ आकर्मणय हो चले, क्योंकि वे अपना सब काम-धंधा गुलामों पर छोड़ देते थे; और दूसरी ओर गुलाम लोग गूढ़ बोलने और चोरी करने लगे । देहातों में अब कोई खास काम नहीं रह गया था, हस्तिये शरीर किसान और मज़दूर, जिन्हें कुछ काम नहीं मिलता था, रोम-नगर में आकर रहने लगे थे । ऐसे किसानों और मज़दूरों की संख्या रोम में बहुत बढ़ गई थी । पर रोम में हतने अधिक आदमियों को काम नहीं मिल सकता था, क्योंकि वहाँ बहुत ही थोड़े आदमियों का काम था । हस्तिये रोम में अधिकतर ऐसे ही लोगों का निवास हो गया, जिनके पास कुछ काम-धंधा नहीं था । ऐसे लोग कहीं चोरी करते थे, कहीं ढाका ढाकते और कहीं भीष्म मर्मांगते थे । पसेंबली के उम्मेदवारों से भी हन लोगों को कुछ आमदनी हो जाया करती थी, क्योंकि जो उम्मेदवार अधिक धन देता था, उसी को ये लोग अपना घोट देते थे । फिर रोमनों की पसेंबली में भी अधिकतर ऐसे ही लोग पहुँचते थे । रोम में कभी उस तरह की प्रतिनिधिसञ्चात्मक शासन-प्रणाली प्रचलित नहीं हुई, जैसी आवकज्ज्ञ इंगलैंड अथवा दूसरे बहुत-से देशों में प्रचलित है । जो नागरिक पसेंबली में उपस्थित होते थे, उन्हीं के बोट गिने जाते थे, और पसेंबली में उपस्थित होनेवाले साधारणतः इसी बर्ग के लोग हुआ करते थे । वस, ऐसे ही लोग उस राज्य के क्रान्ति बनाने में बोट देते थे, जो सारे संसार का स्वामी हो रहा था ।

(३) जब नए-नए प्रांतों पर रोम का अधिकार होने लगा, तब उनके शासन की भी आवश्यकता पड़ी । पर रोम में मन्दिस्ट्रेटों के वार्षिक चुनाव की प्रथा प्रचलित थी, और रोम अपने प्रांतों में भी

यही प्रथा प्रचलित करने का प्रयत्न करता था। अब धोरे-धोरे यह भी एक नियम-सा हो गया कि रोम में जो लोग एक बार प्राप्ति या कांसक रह जुके होते थे, वे ही कोग किसी प्रांत में एक वर्ष तक शासन करने के लिये भेज दिए जाने थे। प्रांतों पर शासन करने का यह समय, विशेष बोट के आधार पर, कुछ दिनों के लिये बड़ भी सकता था; और प्रायः दो-दो या तीन-तीन वर्षों के लिये बड़ाया भी जाता था, पर साधारणतः शासक लोग एक ही वर्ष तक शासन करने के लिये भेजे जाते थे। इसका परिणाम यही होता था कि शासकों को अपने अधीनस्थ प्रांतों के संबंध की भीतरी बातें जानने का पूरा-पूरा अवसर ही नहीं मिलता था। फिर जहाँ तक हो सकता था, वे लोग प्रांतों के अधिकारियों को दबाकर उनसे छूट धन वसूल करते और अमीर बनने का प्रयत्न करते थे। ऐसी अवस्था में उन लोगों के मन में यह भी विश्वास रहता था कि यदि घर लौटने पर इम पर मुक्रदमा चलाया जायगा, तो इम अपने जजों को इसी धन में से रिश्वत देकर अपने अनुकूल कर सकेंगे, और दंड से बच सकेंगे। रोम की क्रान्ती अदाकरतों में रिश्वतद्वारी बहुत बड़ रही थी। सिनेट के जो सदस्य ऊरी बनकर अदाकरतों में बैठते थे, वे भी रिश्वत के धन से अपना घर भरना चाहते थे। प्रांतों से राजकर वसूल करने का अधिकार रोम के धनवानों के हाथ नीलाम करके बेच दिया जाता था। रोम के वे धनवान् पहले तो नीलाम के समय राज्य को बड़ी-बड़ी रकमें दे दिया करते थे, और तब जहाँ तक अधिक हो सकता था या जहाँ तक प्रांतों के शासक उन्हें आज्ञा देते थे, वहाँ तक वे प्रांतों से अधिक धन वसूल किया करते थे। प्रांतों के शासकों को वे लोग रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया करते थे, और तब प्रबा से मनमानी रकम वसूल कर चलते थे।

उन दिनों शायद ही कोई ऐसा प्रांतीय शासक या गवर्नर रहा हो, जो इमानदारी से अपना काम करता हो। उन दिनों रोम के अधीनस्थ प्रांतों की बहुत ही दुर्दशा थी। वे विद्रोह भी नहीं कर सकते थे, क्योंकि रोम बहुत बलवान् था। हाँ, उनके तबाह होने के अवश्य ही बहुत-से अवसर थे।

लच तो यह है कि प्राचीन रोमन शासन-प्रणाली, जिसमें अधिकारी और शासक जोग प्रतिवर्ष चुनकर शासन करने के लिये प्रांतों में भेजे जाया करते थे, पक्के ऐसे बड़े साम्राज्य के शासन के लिये बहुत ही अनुपयुक्त थी, जिसके प्रांत बहुत दूर-दूर तक और समुद्र-पार भी थे। इसके अतिरिक्त सिनेट के सदस्यों और बनता के अनेक उगाने गुण नष्ट हो जुके थे, इससे शासन में और भी बहुत-सी ख़राबियाँ होती थीं। अब रोम के अधिकार में बहुत-से नए देश या गप थे। ऐसे देशों से युक्त विस्तृत साम्राज्य के लिये पुगनी रोमन प्रजातंत्र-शासन-प्रणाली कभी काम नहीं दे सकती थी, और जबह इतने बड़े साम्राज्य के शासन का भार ही सह सकती थी। इसके बाद के रोमन प्रजातंत्र के पक्के सौ वर्षों के इतिहास से यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाती है कि उस प्रजातंत्र-शासन-प्रणाली में केवल छोटे-मोटे सुधार और परिवर्तन करने से कभी काम नहीं चल सकता था। रोम, इटली तथा उनके अधीनस्थ प्रांतों के उच्चम शासन के लिये यह बात परम आवश्यक थी कि शासन की पक्की विकाल नहीं प्रणाली की सृष्टि की जाय।

शासन-सुधार में सबसे पहले दो आदमियों ने प्रयत्न किया था, और ये दोनों आदमी आपस में भाई थे। इनमें से पक्का का नाम टाइबेरियस और दूसरे का गेयसप्रेक्स था। ये दोनों ही कुर्लीन, शिवित, सदाचारी और उदार विचारवाले थे। इन दोनों भाइयों के प्रयत्न अल्प-अल्प दृष्ट थे, और दोनों के बीच प्रायः

दस वर्ष का अंतर पड़ता है। इसके अतिरिक्त इन दोनों के उद्देश्य भी बिलकुल एक-से नहीं थे, बल्कि उनमें बहुत कुछ अंतर था। पर इसमें संदेह नहीं कि ये दोनों ही सुधारक थे, और इनके माम्य में भी वही भोगना चाहा था, जो प्रायः सुधारकों को भोगना पड़ता है। टाइवेरियस यह चाहता था कि नगर की जो आवादी बहुत बढ़ गई है, वह कुछ कम हो जाय, और जो ज्ञान सेती-यारी छोड़कर नगर में आ जाये हैं, वे फिर खोटकर गाँवों में चले जायें, और सेती-यारी करने लगें। बहुत-सो ज़मीनें ऐसी थीं, जो 'सावंबनिक भूमि' कही जा सकती थीं, अर्थात् जो वास्तव में सरकारी थीं। और ऐसी ज़मीनों पर बहुत-से धनवानों ने जिन किसी कारण के बों ही अपना अधिकार कर लखा था। टाइवेरियस चाहता था, उन अमीरों से यह ज़मीन छोन लो जाय, और रोम तथा इटली के ऐसे निवासियों को सेती-यारी करने के लिये दे दो जाय, जो बहुत शरीय हैं, और जिनकी जीविका का कोई ठिकाना नहीं है। गेयस का सुख्ल उद्देश्य यह था कि रोमन लोगों को नागरिकता के बो अधिकार प्राप्त हैं, वे ही अधिकार इटली की ओर प्रजा को भी दे दिए जायें, जिसको सहायता से रोम ने बहे-बहे युद्धों में सफलता प्राप्त की है। वह यह भी चाहता था कि सिनेट के अधिकार कुछ कम कर दिए जायें, और धनी व्यापारियों को भी अदालतों में ज्यूरी के तौर पर दैठने का अधिकार दिया जाय। उसके ये प्रस्ताव थे तो बहुत बुद्धिमत्ता-पूर्ण, और इनका उद्देश्य भी बहुत अच्छा था, पर फिर भी ये बहुत बुरी तरह से विफल हुए थे। धनवानों ने जो ज़मीनें अपने हाथ में कर लखी थीं, उन्हें वे किसी प्रकार छोड़ना नहीं चाहते थे, इसलिये उन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया। उधर सिनेट भी अपने अधिकार कम नहीं होने देना चाहती थी, और न रोम की प्रजा ही इस

चात के लिये सहमत होती थी कि नागरिकता के जो अधिकार स्वयं उसे पास थे, वे इटली के अन्यान्य निवासियों को भी दिए जायें। परिणाम यह हुआ कि ये दोनों ही भाई दंगों में मार डाले गए। टाइबेरियस की हत्या तो १० प० १३३ में हुई, और गेयस १० प० १२१ में मार डाला गया। इन दोनों भाईयों के समस्त प्रयत्नों के केवल दो ही परिणाम हुए—एक तो यह कि सिनेट के सदस्यों और धनी व्यापारियों में परस्पर हँध्यां और द्वेष उत्पन्न हो गया। दूसरा फज यह हुआ कि उन्होंने पक ऐपा निश्चय करा लिया कि रोम के दरिद्र निवासियों के हाथ सस्ते दाम पर अनाज बेचा जाय; और इस प्रकार उन्होंने जनता को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया था। इन दोनों के निहत हो जाने के उपरांत भी दरिद्रों को सस्ते दाम पर अनाज मिलता रहा; बल्कि आगे चलकर तो सुफ़त में ही मिलने लगा। पर इसका परिणाम भी उल्टा ही हुआ। अब रोम के बहुत-से विवासी और भी अकर्मण्य तथा उड़ंड ढो गए, वर्योंकि अब उन्हें कुछ काम-धंधा नहीं करना पड़ता था, और खाने को सुफ़त में मिलता था। इटली की प्रजा को भी अंत में नागरिकता के समान अधिकार दिए गए। पर कब ? जब १० प० ३० में इसके लिये पक गृह-युद्ध हो गया, तब। उस गृह-युद्ध से सिनेट के सदस्य और रोम की जनता इतनी अधिक भयभीत हो गई थी कि इस संबंध में इटैलियन प्रजा की जिस माँग का वे सब लोग इतने दिनों से अनादर और उपेक्षा करते आ रहे थे, और जिसे पूरा करने से वे चराकार इनकार करते रहे थे, उसकी वह माँग उन जोगों ने गृह-युद्ध के कारण चटपट स्वीकृत कर ली, और उन्हें भी अपने ही समान नागरिकता के अधिकार दे दिए।

पर अेक्स की हत्या का सबसे बुरा प्रभाव यह हुआ कि सब जोग समझ गए कि इन दोनों भाईयों को विफ़ज़ता क्यों हुई थी।

इन लोगों की विकल्पता का मूल-कारण यही था कि वे लोग प्रसेवकों पर ही निर्भर रहते थे, और इनकी सहायता के लिये इनके पास कोई सेना नहीं थी। अतः अब सब लोगों की समझ में यह बात स्पष्ट रूप से आ गई कि यदि कोई काम हो सकता है, तो केवल सैनिक शक्ति की सहायता से। इसके बाद ही ऐसे लोग निकलने लगे, जो इस शिक्षा से ज्ञान उठाने के लिये तैयार थे, और जिन्होंने अपने डडेश्वरों को सिद्धि के लिये अपने पास सेनाएँ रखना आरंभ कर दिया।

इस प्रकार काम करनेवालों में जो पहला आदमी हुआ, उसका नाम नेरियस था। एक तो न्यूमीडियन लोगों के साथ यूनानियों को बहुत दिनों तक भीषण युद्ध करना पड़ा था (१०० प० ११२ से १०६ तक), और दूसरे उत्तर की ओर से किंवी और व्यूटन नाम की दो जमीन जातियाँ चढ़ाई कर रही थीं। इन जातियों से युद्ध करने के लिये रोमनों ने चार बार बड़ी सेनाएँ भेजी थीं, पर चारों बार वे सेनाएँ परास्त हो गई थीं (१०० प० ११३ से १०५ तक)। इन दोनों युद्धों के कारण जिस समय सारे रोम में भीषण आतंक छाया हुआ था, उस समय नेरियस जनता का बहुत ही भ्रम-पात्र हो रहा था। जनता ने पहले प्रसन्न होकर उसे कांसज चुना, और तब उसके कार्यों से वह इतनी प्रसन्न हुई कि वह जागातार व बार फिर कांसज-पद के लिये चुना गया। उसने न्यूमीडियन युद्ध का भी अंत कर दिया, और जमीन बर्बरों को भी १०० प० १०२ और १०१ में दो स्थानों पर दुरी तरह परास्त किया। इच्छाओं का परिणाम यह हुआ कि रोम में सारी शक्ति अब उसी के हाथ में चढ़ी गई। यहाँ तक कि अब सेना भी वह समझने चाहे गई कि इमारा मालिक मेरियस है, और सिनेट का इस पर कोई अधिकार नहीं है। अपना वेतन और पेंशन आदि भी वह उसी

से माँगती और पातो थी, और सदा सब कामों में उसकी सहायता करने के लिये तैयार रहती थी। मेरियस ने अपनी इस शक्ति और अधिकार का उपयोग यह किया कि एक तो अपने मित्रों की सब प्रकार से सहायता की; और दूसरे सिनेट के अधिकारों पर आक्रमण किया। अब रोम में दंगों, हत्याओं और अराजकता की वृद्धि होने लगी।

मेरियस और उसके दलवालों का (स्वयं मेरियस की है० प० ८३ में सृच्यु हो गई थी।) एक दूसरा सैनिक नेता लका हो गया, जिसका नाम सिहा था। हवे एक बार पश्चिया में एक युद्ध करने के लिये विशेष रूप से सेनापति नियुक्त किया गया था, और इसी कारण इसकी कीर्ति तथा प्रसिद्धि बहुत बढ़ गई थी। है० प० ८३ में सिहा अपनी सेना लेकर इटली पहुँचा। उस समय वह अपने मन में इड़ निश्चय कर चुका था कि जैसे होगा, मैं मेरियस के दल का पूरी तरह से नाश करके ही छोड़ूँगा। सिहा के इस आक्रमण के बाद रोम में जो-जो भीषण घटनाएँ हुईं, उन्हें रोमवाले फिर कभी भूल नहीं सके। पाँच हजार आदमियों की एक साथ ही हत्या कर दाढ़ी गई थी, और इससे कहीं ज़्यादा आदमी रोम छोड़कर भाग गए थे। इन सब लोगों की सारी जायदादें झब्त कर ली गई थीं। जिस समय मेरियस के हाथ में अधिकार और शक्ति थी, उस समय वह अपने शत्रुओं पर ज़ंगली लानवर की तरह दृढ़ता था। पर सिहा उसकी अपेक्षा कुछ भीठा और चाला क था, और इसीलिये अधिक भीषण भी था। उसने जो हत्याएँ कराई थीं, उनका रूप और भी अधिक भीषण था। इसके उपरांत उसने सिनेट की शक्ति और अधिकार बढ़ानेवाले कानून बनाए, और तब वह ऊपचाप तथा शांति-पूर्वक पकांतवास करने लगा। इसके एक बर्ष बाद ही वह मर गया।

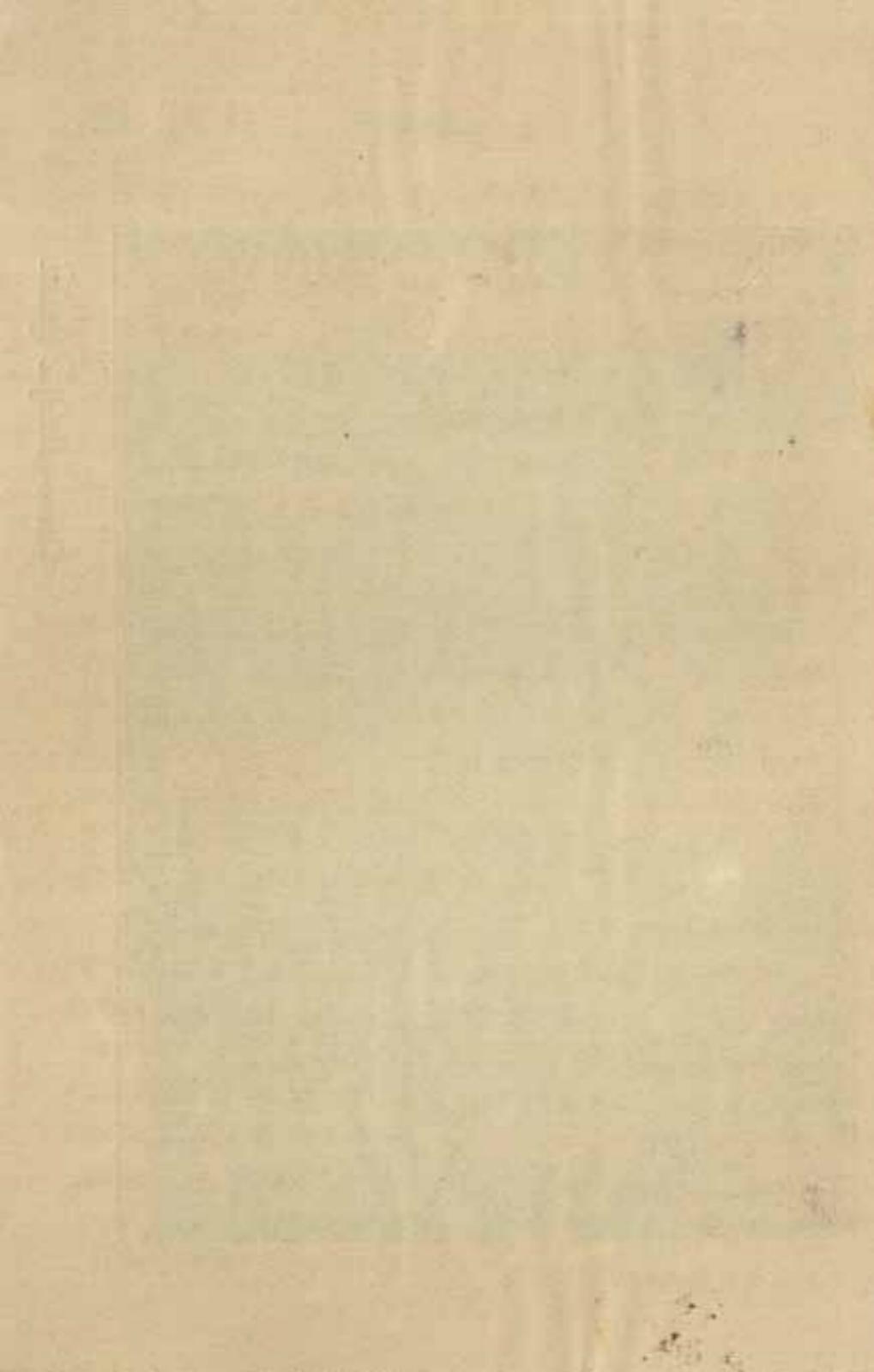
सिल्का की माथु होते ही उसकी की हुई अनेक व्यवस्थाओं में बहुत बड़ा उलट-फेर हो गया। वर्षों तक अवधिवस्था बनी रही, और कोई निश्चित या ठीक प्रबंध नहीं होने पाया। कुछ लोगों ने, जिनमें सुप्रसिद्ध व्याख्याता सिसरो भी था, इस बात का बहुत कुछ प्रयत्न किया कि सिनेट के सदस्यों, जिनी व्यापारियों और इटली के निवासियों में परस्पर सद्माव उत्पन्न हो, और इस प्रकार फिर से सुंदर तथा सुव्यवस्थित शासन स्थापित हो। परं सिनेट के सदस्य बहुत ही सक्रिय-हृदय और स्वार्थी थे, और जिनी व्यापारी भी अपने ईर्ष्यां-भाव के कारण इस प्रकार उनके साथ सम्मिलित होना नहीं चाहते थे। उधर रोम के सभी अशिक्षित और निम्न कोटि के निवासी एसेंबली में भरे रहते थे, और इटलीवासी के हाथ में किसी प्रकार की शक्ति नहीं थी, इसलिये इन सब प्रयत्नों का कुछ भी शुभ फल न हो सका। इसके अतिरिक्त मेरियस और सिल्वा ने खोगों के सामने यह उदाहरण भी उपस्थित कर दिया था कि सैनिक अधिकारी और नेता किस प्रकार और कितनी अधिक शक्ति अपने हाथ में कर सकते हैं, इसलिये अब लोग जलदी-जलदी इन्हीं दोनों उदाहरणों का अनुकरण करने लगे।

अपनी-अपनी सेनाओं की सहायता से उच्च अधिकार प्राप्त करनेवाली दूसरी लोडी पांपी और सीजर की निकली। पांपी ने पूर्वीय रण-चत्वारों में (इ० प० ६३-६२) सेनाओं का संचालन करके प्रसिद्ध प्राप्त की थी। परं उसकी योग्यताएँ तथा गुण बहुत कुछ परिमित थे। न तो वह स्वयं किसी विषय में शीघ्र और उचित निर्णय ही कर सकता था, और न अपने पद, मर्यादा तथा प्रसिद्धि का ठीक-ठीक उपयोग करना ही जानका था, जिसमें लोग उसका सम्मान करें या उससे ढरें। पांपी के कुछ दिनों बाद सीजर की समाति और महार बड़ा। संसार में आज तक जितने लोग

पुरानी दुनिया —



हेरिप्स (दारा) की पूरानी चत्ताई की त्रियारियाँ



हुए हैं, उनमें सीजर शायद सबसे बढ़कर विजयण और विच्छयण पुरुष था। युवावस्था में उसने अपना समय बहुत ही उद्देश्य-पूर्वक और वाहिनी कामों में बिताया था। पर जब उसने महारथ प्राप्त करना आरंभ किया, तब सब लोगों ने अच्छी तरह समझ लिया कि यह एक बहुत योग्य सेनापति, एक अच्छा लेखक, प्रत्येक बात का तथ्य और वास्तविक रूप समझनेवाला, सदुहेत्य रखनेवाला और साइरी पुरुष है। उसका व्यक्तिगत बहुत मोहक और आकर्षक था। वह उपर्युक्त समय की प्रतीक्षा करना जानता था, और भली भाँति समझता था कि मेरे अमुक कार्य की सिद्धि के लिये अमुक समय उपर्युक्त होगा। और, सबसे बढ़कर बात यह थी कि राजनीतिक विषयों में उसने अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया था। समस्त रोमनों में कदाचित् वही एक ऐसा आदमी था, जो वस्तुतः यह समझता था कि किन कारणों से प्रजातंत्र की उद्दिष्ट रही है, रोमन-पंसार को इस समय किन बातों की आवश्यकता है, और किन उपायों से फिर से सुंदर शासन स्थापित किया जा सकता है।

इ० प० ६३ और ६८ के बीच में पांपी और सीजर में जो प्रतियोगिता चलती रही, उसकी पेचीजी कहानी यहाँ देने की हम आवश्यकता नहीं समझते। एहते तो ये दोनों आपस में साथी और भिन्न थे। उस समय सीजर तो गाल की ओर चला गया (इ० प० ६८), व्योंकि वह वहाँ का गवर्नर नियुक्त हुआ था, और पांपी रोम में ही रह गया। पर जब सीजर की खाति बढ़ने लगी, और उसकी आकांक्षाएँ इष्ट होने लगीं, तब घोर-घीरे दोनों आदमियों में प्रतियोगिता आरंभ हो गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि इ० प० ६४ में दोनों में गृह-युद्ध खड़ गया। सीजर ने बहुत शीघ्र सारे इटली पर अधिकार कर लिया, और पांपी यूनान में जाकर

सेनापूर्व एकत्र करने लगा। उस समय स्पेन में पांपी-दल के कुछ सैनिक सरदारों ने उपद्रव लगा कर रखा था, इसलिये सीजर पहले उनकी तरफ़ बढ़ा। यद्यपि वह युद्ध थोड़े ही समय में समाप्त हो गया था, पर फिर भी उसका रूप भीषण हो गया था। इसके बाद पांपी की घट्टबर लेने के लिये सीजर यूनान की तरफ़ बढ़ा। पहले तो दोनों दलों के सैनिकों में लुक-छिपकर छोटी-मोटी लड़ाइयाँ होती रहीं, पर अंत में, ३० प० ४८ में, दोनों सेनाओं का फरसेलस-नामक स्थान पर सामना हो गया। वहाँ पांपी पूर्ण रूप से पराजित हुआ, और भागकर मिल चक्का गया, वहाँ वह मार डाका गया। फिर भी मिल, पश्चिम, यूनान, आफ्रिका और स्पेन में सीजर के जो थोड़े-से विरोधी बचे रह गए थे, उन्हें दो वर्षों में सीजर ने अपने अधीन कर लिया। इसके बाद (३० प० ४८ में) वह लौटकर रोम आया, और समस्त रोमन-संसार का एकमात्र स्वामी हो गया।

इसके बाद जो कुछ हुआ, उसका वर्णन करने से पहले हम संचेष में यहाँ यह बतला देना आवश्यक समझते हैं कि हन अनेक सेनापतियों के कार्यों का एक बड़ा परिणाम यह हुआ था कि विदेशों में रोमन-साम्राज्य का विस्तार बहुत बढ़ गया था। हन सभी सैनिक नेताओं ने अपने-अपने समय में प्रसिद्ध प्राप्त करने के लिये अपनी सेनाओं को बहुत कुछ यिचित किया था। इसमें उनका उद्देश्य यही रहता था कि हम हन सैनिकों को अपने साथ लेकर रोम पहुँचें, और वहाँ सर्वश्रेष्ठ अधिकार प्राप्त करें। उनके इस प्रकार के कार्यों का फल यह होता था कि रोमन-साम्राज्य में एक-एक करके नए प्रांत सम्मिलित होते जाते थे। मेरियस ने न्यूमीदियन तथा गाल-जातियों पर जो विजय प्राप्त की थी, उसके कारण आफ्रिका, काइ-गुरिया और दक्षिणी गाल में रोमन-राज्य का बहुत कुछ विस्तार हो

गया था। गाल के दक्षिण नारबो-नामक स्थान में, है० प० ११८ में, इटली के बाहर रोमनों का पहला उपनिवेश स्थापित हुआ था। गाल में भी वर्षों तक रहकर सीजर ने इंगलिश चैनेल तथा पट्टलांटिक महासागर तक का बाड़ी का भी सारा प्रदेश जीत लिया, और जर्मनी की रहाइन-नदी को रोमन-साम्राज्य की सीमा बनाया। यहाँ तक कि वह ब्रिटेन में भी जा पहुँचा, और वहाँ के दक्षिणी भाग के निवासियों पर भी उसी प्रकार विजयी हुआ। उधर पूर्व में जब है० प० १३३ में परगमम का झाँसिम राजा मरने लगा, तब वह अपना सारा राज्य रोम को सौंप गया, जिससे रोम ने पुशिया में भी अपना एक प्रांत बना लिया। इसके बाद है० प० ११४ से ६६ तक रोमन खोग पॉटस के राजा मिथ्रूडेटिज और उसके साथी आरमीनिया के राजा टाइट्रनीज से लड़ते रहे। मिथ्रूडेटीज ने बहुत-सी लडाइयाँ जीती थीं, और एक बार सारे पुशिया-माहवर का चबकर लगाया था। सिल्वा, वयूकुलास और पांगी, इन तीनों रोमन सेनापतियों ने बारी-बारी से मिथ्रूडेटीज को पुशिया-माहवर से निकाल बाहर करने का प्रयत्न किया था। परं फिर भी अंत में वह परास्त हो ही गया, और उसे आरमहत्या करनी पड़ी। फल यह हुआ कि सीरिया, जूदिया, सिलीशिया और विथीनिया पर रोमनों का अधिकार हो गया। इस प्रकार फ्रात-नदी तक सिङ्कंदर का जितना पूर्वी साम्राज्य था, वह सब रोमनों के हाथ में आ गया। पूर्व में अधिक-से-अधिक, यही सीमा थी, जहाँ तक रोमन-साम्राज्य का विस्तार हो सका था। फ्रात-नदी के उस पार पारथिया का बड़ा राज्य था, जिसके साथ आगे चलकर रोमनों को बहुत दिनों तक बड़ी-बड़ी लडाइयाँ लड़नी पड़ी थीं।

लेकिन इतनी लडाइयाँ और देश जीतने पर भी रोमन प्रजातंत्र की किसी प्रकार रक्षा न हो सकी। जो लडाइयाँ और

देश आदि जीते गए थे, वे सेनापतियों और सेनाओं की कृपा से जीते गए थे। उसमें स्वयं रोमन-संकार की कोई बड़ाई नहीं थी। जिस समय सीजर ने रोम में एकमात्र शासक का पद घटया किया था, उस समय की परिस्थिति इस प्रकार थी। हठली और उसके साथ-साथ सारे संसार की शांति और सुधृतवस्थित शासन की आवश्यकता थी। पर रोमन प्रजातंत्र इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकता था। सिनेट के बीच अपने स्वाधीन की सिद्धि की ही चिंता में रहती थी, और रोमन-जनता किसी प्रकार विश्वास-योग्य नहीं थी। यह एक प्रथा-सी चल गई थी कि सैनिक नेता अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर अपनी ही आकांचाओं की पूर्ति का प्रयत्न करते रहते थे, और प्रजातंत्र की शक्ति घटाकर स्वयं अपनी शक्ति बढ़ाने की चिंता में रहते थे। यदि सीजर भी सिल्ला तथा उसी प्रकार के दूसरे सैनिक नेताओं का अनुकरण करता, तो उसका यही परिणाम होता कि अवश्यवस्था और बड़ाई-भगवान् और भी बढ़ जाता, जिससे रोमन-संसार पूर्ण रूप से मिट जाता, सभ्यता के समस्त संचित कोश नष्ट हो जाते, और सारा योरप फिर पहले की तरह नंगली हो जाता। इस प्रकार, इस कड़े सकते हैं, उस समय संसार का भविष्य उस शक्ति के सदुपयोग पर ही निर्भर था, जो उस समय सीजर के हाथ में आई हुई थी। यह एक ऐसा बड़ा अवसर था, जब एक आदमी के किए हुए अद्वेत्या तुरे काम समस्त सभ्य-संसार पर अपना प्रभाव ढाले बिना नहीं रह सकते थे, और इस प्रकार का इससे बड़ा अवसर सीजर को छोड़कर और किसी के हाथ में नहीं आया था।

३. आगस्टन-युग

सीजर बहुत ही थोड़े दिनों तक शासन कर सका था । वह ई० प० ४६ के आरंभ में लौटकर इटली आया था, और १५ मार्च ४४ ई० प० को रोम में कुछ पद्यंत्रकारियों के हाथों मारा गया था । इन पद्यंत्रकारियों में से कुछ लोग सिक्के इसलिये सीजर से नाराज़ थे कि उसने उन लोगों पर कुछ विशेष कृपाएँ करने से इनकार कर दिया था । पर कुछ लोग ऐसे भी थे, जिनका सीजर से नाराज़ होना बाबिल भी था, क्योंकि सीजर का शासन प्रजातंत्र-शासन-प्रणाली के विपरीत होता था, और वे लोग समझते थे कि सीजर इस साम्राज्य का बादशाह बन बैठना चाहता है । पर इन कुछ ही महीनों में सीजर को यह दिल्लाने का समय मिल गया था कि वह किस प्रकार संसार का शासन करना चाहता था । उसने जो आदर्श उपस्थित किया था, उसका ग्रभाव बहुत दिनों तक बना रहा । और जब उसके उत्तराधिकारी आवटेवियन ने शासनाधिकार अपने हाथ में लिया, तब उसने बहुत-सी बातों में उन्हीं सिद्धांतों के अनुसार कार्य किया, जो सीजर ने स्थिर किए थे ।

सीजर ने मुख्यतः दो बड़े काम किए थे—एक तो यह कि उसने दिल्ला दिया था कि मैं एकमात्र शासक बनकर स्वयं अपने व्यक्तिगत अधिकार से ही शासन करना चाहता हूँ । उसने सिनेट से अपने को बिकटेर या सर्वाधिकार-प्राप्त शासक नियुक्त करा लिया था । प्राचीन काल में विशेष अवसरों पर जब कोई भारी विपत्ति आती थी, और जब इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती थी कि राज्य के समस्त अधिकार एक ही आदमी के हाथ में

रहने चाहिए, तब कोई योग्य और कार्य-कुशल व्यक्ति इस पद पर नियुक्त किया जाता था। सीजर अपने सृखु-काल तक डिक्टेटर बना रहा, और उसने स्पष्ट रूप से यह बतला दिया कि मेरी सम्मति में सुन्यवस्थित शासन स्थापित करने के लिये स्थायी रूप से किसी एक ही आदमी का शासन होना आवश्यक है। दूसरा यह कि उसने कभी किसी विशिष्ट दल के स्वार्थों के साधन के लिये अपनी शक्ति और अधिकार का उपयोग नहीं किया। उसका कोई विशिष्ट कृपा-पात्र नहीं था। उसने सिज्हा के हुंग पर काम नहीं किया था, बल्कि समस्त दलों के साथ उचित और उदारता-पूर्ण व्यवहार किया था, सभी प्रकार के लोगों को अपना सदाचार बनाने का प्रयत्न किया था। उसने जब तथा स्थल-सेनाओं, राजकोश और न्यायालयों आदि का सुधार किया था, और यह विख्लाला दिया था कि मैं सब लोगों का समान रूप से कल्याण करना चाहता हूँ। और, इसके लिये सुंदर तथा सुन्यवस्थित शासन स्थापित करना चाहता हूँ।

सीजर की इत्या के कारण जगतातार घौंदह वर्षों तक सारे देश में अराजकता फैली, और प्रजा आपस में जाती-भिजती रही। यह युद्ध क्या था, मानो प्रजातंत्र का मरते समय हाथ-पैर पटकना था। उस समय एक सिसरो ही ऐसा योग्य आदमी था, जिसका यह हड़ विश्वास था कि अब भी प्रजातंत्र की रक्षा की जा सकती है। उसने सच्ची इच्छा और साइस के साथ सिनेट को फिर से बीरता-पूर्वक तथा उचित रूप से काम करने के लिये तैयार करने का प्रयत्न किया था। पर इस प्रयत्न में उसे सफलता नहीं हुई। यदि सच पूछिए, तो सफलता हो भी नहीं सकती थी। इस विफलता का दंड उसे यह भोगना पड़ा कि उसकी हत्या कर डाली गई। उस युद्ध में सुख्य प्रश्न यह था कि रोमन-साम्राज्य पर कौन

शासन करे। इसके लिये दो हक्कदार मैदान में थे—एक तो सीजर का एक अफसर एंटोनी था और दूसरा आक्टेवियन। पहले तो कुछ समय तक ये दोनों साथ काम करते रहे। उस समय एंटोनी तो मिश्र में रहता और पूर्वी प्रदेशों का शासन करता था, और आक्टेवियन इटली में रहकर पश्चिमी प्रदेशों की देख-भाल करता था। धीरे-धीरे इन दोनों में शक्ति उत्पन्न हो गई। अंत में, पक्षियम के युद्ध में (इ० प० ३१), एंटोनी की सेनाएँ आक्टेवियन की सेनाओं के सामने पूर्ण रूप से परास्त हो गईं। उस युद्ध में हारकर एंटोनी ने तो आरम्भित्या कर ली, और आक्टेवियन ने, जो इतिहास में आगस्टस के नाम से प्रसिद्ध है, सीजर का काम अपने हाथ में लिया।

आक्टेवियन में उतनी अधिक प्रतिभा नहीं थी, जितनी सीजर में। पर वह सीजर के भतीजे का लड़का और स्वयं सीजर का दत्तक पुत्र था, साथ ही उसमें कुछ ऐसे गुण भी थे, जिनके कारण वह उस काम के लिये बहुत उपयुक्त था, जो उसने हाथ में लिया था। वह शांत स्वभाव का था, और सब काम खूब समझ-बूझकर करता था। वह अपने विचारों और मनोभावों पर पूरा-पूरा अधिकार रखता था। वह कभी ऐसे उद्देश्य-पूर्ण कामों में हाथ नहीं लगाता था, जिनका होना असंभव या दुष्कर होता था। वह कभी केवल उपरी बातों या दिल्लावे पर नहीं भूलता था। वह कभी अपने सैनिक बल का प्रदर्शन नहीं करना चाहता था। और, अच्छी तरह समझता था कि इस समय संसार को सबसे अधिक आवश्यकता शांति और सुध्यवस्था की है। वह सब काम बहुत ही सावधानी और समझदारी के साथ करता था। अपने उद्देश्यों की सिद्धि बहुत शांति-पूर्वक करता था, केवल उपरी तब्दि-भद्र से अपना काम नहीं निकालना चाहता था। उसके विचार बहुत ही स्पष्ट और

च्यवस्थित होते थे। वह अपना कोई काम अवसर या संयोग के भरोसे नहीं छोड़ता था, और न कोई काम कभी अधूरा ही छोड़ता था।

आगस्टस ने अपने इन सब गुणों का उपयोग अपने साक्रान्ति के लिये एक संतोष-जनक शासन-प्रणाली का निर्माण करने में किया था। उसने अपना यह काम बहुत अच्छी तरह किया। इसका एक बड़ा प्रमाण यह है कि उसने जो प्रणाली चलाई थी, वह सैकड़ों वर्षों तक प्रचलित रही। उसे सौभाग्य-वश जो ऐसे प्रधान मंत्री भी मिल गए थे, जो बहुत योग्य थे। उनमें से एक का नाम एविष्पा और दूसरे का मिसानस था। दोनों में ही बहुत उच्च श्रेणी के गुण थे। विशेषतः सैनिक कार्यों में एविष्पा और राजनीतिक कार्यों में मिसानस बहुत ही कुशल था। दोनों ने अपने स्वामी की सेवा बहुत निष्ठा और भक्ति-पूर्वक की थी।

अब हम संचेप में यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि आगस्टस ने कौन-कौन-से सुख्य कार्य किए थे। एकाहरा-नामक स्थान पर (जो आजकल एंगोरा कहलाता है) एक ऐसा मंदिर मिला है, जिसकी दीवारों पर एक बहुत बड़ा लेख अंकित है। यह वास्तव में एक ऐसे लेख की प्रतिलिपि है, जो सन्नाद् आगस्टस ने अपने जीवन के अतिस दिनों में स्वर्यं लिखवाया था, जिसमें उन सभी बड़े-बड़े कामों का वर्णन है, जो उसने अपने जीवन-काल में किए थे। यह एन्कायरन मान्यूमेंट के नाम से प्रसिद्ध है। हम यहाँ उसी लेख की कुछ बातें अपने शब्दों में उद्धृत करेंगे।

आगस्टस ने जो शासन-प्रणाली प्रचलित की थी, उसमें एकतंत्री शासन और प्रतातंत्री शासन दोनों का सम्मिश्रण या समन्वय था, और यह सम्मिश्रण या समन्वय असाधारण त्रुदिमत्ता-पूर्वक किया गया था। यह आवश्यक था कि वस्तुतः सारा अधिकार इस

प्रकार स्वयं उसी के हाथ में रहे कि वह जब चाहे, तब उसका उपयोग कर सके। इस उद्देश्य की सिद्धि उसने दो रीतियों से की थी—(१) वहले तो सात बयाँ तक वह कांसल के पद पर रहा, पर ई० प० २३ में उसने अपने इस पद का परित्याग कर दिया, और अपने लिये वही प्रधान न्यायाधीशक का पद रखा, जो उसे ई० प० ३६ में जन्म-भर के लिये मिला था। और, अपने लिये केवल वही पद रखकर वह संतुष्ट रहा। इस पद के कारण वह 'परम पवित्र और अवश्य' हो गया था, और रोम-नगर में उसे वे सब अधिकार प्राप्त हो गए थे, जिन्हें उसकी आवश्यकता थी। (२) वह सदा के लिये और स्थायी रूप से साम्राज्य की समस्त सेनाओं का प्रधान सेनापति हो गया था। समस्त सैनिकों को उसके प्रति आज्ञाकारी रहने की शरण स्वानी पढ़ती थी। साथ ही उसने ऐसी व्यवस्था कर रखी थी कि वे अपने बेतन और पेशन आदि के लिये उसी के मुख्यापेची होते थे।

वह समस्त सेनाओं का अध्यक्ष था, इसलिये उसकी शक्ति और समस्त राज्याधिकारियों की शक्तियों से बड़ी-बड़ी थी, तथा प्रायेक विषय में प्रायेक राजकर्मचारी उसी से अंतिम आज्ञा लेता था। उसके पास काम भी बहुत अधिक रहता था, इसलिये उन बड़े हुए कामों को सम्भालने के लिये उसने सिनेटरों के बदले धनवान् व्यापारियों को अपने कार्यालय में नियुक्त करना आरंभ किया। ये ज्ञाग वज्रों था

* वह कुलीन वंश का था, इसलिये न्यायाधीश Tribune तो नहीं हो सकता था, परं फिर भी उसे प्रधान न्यायाधीश Tribune के समस्त अधिकार दे दिए गए थे। यद्यपि वह बस्तुतः प्रधान न्यायाधीश के पद पर नियुक्त नहीं हुआ था, और व्यवहारतः वह इस पद का पदाधिकारी नहीं था, तो भी इस पद के समस्त अधिकार उसे अद्यम प्राप्त थे।

स्थायी अक्सरों की भाँति उसके कार्यालय में काम करते थे । यह एक प्रकार की सिविल सर्विस का आरंभ था, और इसके सदस्य साधारण मजिस्ट्रेटों की भाँति हर सात बदले नहीं जाते थे, बलिक स्थायी ढोते थे ।

इस प्रकार वास्तव में सिनेट और मजिस्ट्रेटों के अधिकार बहुत कुछ बदा दिप गए थे, पर किर भी आगस्टस ने इन सब बातों का उपरी रंग-दंग ऐसा ही रखा था कि साधारणतः कोई इसका वास्तविक तथ्य समझ नहीं सकता था । वह जान-बूझकर न तो स्वयं बादशाह ही बनना चाहता था और न डिप्रेटर ही । वह 'इंप्रेटर' कहलाता था; और अँगरेझी का एम्प्रेटर शब्द, जिसका अर्थ शाहंशाह है, इसी शब्द से निकला है । पर लैटिन भाषा में इसका अर्थ होता था सैनिक शासक । और, इसका यह मतलब नहीं था कि जो इस पद पर रहे, उसे एकत्री और स्वेच्छाचार-पूर्ण शासन करने का पूरा अधिकार हो । आगस्टस समस्त रोमन-सेनाओं का सर्व-प्रधान सेनापति था, हस्तीबिये उसे यह उपाधि दी गई थी । उसने अपने क्षिये केवल दो विशिष्ट उपाधियाँ रखती थीं, जिनमें से पहली उपाधि प्रिसेप्ट थी, जिसका अर्थ होता है सुख्य नागरिक । इसके बाद उसने दूसरी उपाधि आगस्टस की धारणा की थी, जिसका अर्थ है पूर्व या माननीय । इसके साथ उसकी बंशगत उपाधि सीजर भी (जिससे आगे चलकर 'क्रैसर' और 'जार' शब्द निकले थे) थी । यह सोजर उपाधि आगे चलकर सभी सचारों के नाम के साथ रहने लगी; पर ये दोनों ही समान-सूचक उपाधियाँ थीं (जैसे आजकल के बादशाह हिज़ मजिस्ट्री कहलाते हैं । इन्हें पदों का नाम नहीं समझना चाहिए ।) ।

यह दो शासन का भीतरी स्वरूप था, पर इसके अतिरिक्त अपने

बाहरी या उपरी रूप में भी वह प्रणाली प्रजातंत्री ही बनी रही। मजिस्ट्रेटों का निर्वाचन अभी तक दैर्घ्यवाली ही करती थी, पर बस्तुतः कोई आदमी तब तक अपना पद ग्रहण नहीं कर सकता था, जब तक सन्नाट् डसका निर्वाचन मान्य न कर ले। सिनेट में अब भी सब विषयों का विवेचन होता था, पर अंत में सन्नाट् ही निश्चित करता था कि किसी विषय में क्या कारंवाही होनी चाहिए। मजिस्ट्रेट जोग अब भी अपने पदों पर रहते थे, पर वास्तव में वे जोग सन्नाट् की इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं कर सकते थे। पर फिर भी आगस्टस कभी जोई ऐसी बात नहीं कहता था, जिसमें यह सूचित हो कि डसका उत्तराधिकारी ही (डसका कोई पुत्र नहीं था) डसके स्थान पर बैठेगा। सिद्धांततः यही माना जाता था कि डसकी मृत्यु के उपरांत डसके समस्त अधिकार फिर सिनेट के ही हाथ में आ जायेंगे; और इस विषय में फिर जनता का मत लिया जायगा कि डसका स्थान कौन ग्रहण करे। पर कार्यतः सन्नाट् ने ऐसी व्यवस्था करने का प्रयत्न किया था कि जोग डसी के मनोनीत व्यक्ति को डसके आसन पर बैठाने के लिये निर्वाचित करें। इस प्रकार ऊपर से देखने में यह एक ऐसी प्रणाली थी, जिसमें सन्नाट् और सिनेट दोनों साम्नोदार जान पढ़ते थे। पर वास्तव में इसका सुख्य और बड़ा साम्नोदार स्वयं सन्नाट् ही था, क्योंकि सारी सेनाओं डसी के हाथ में थी, और इसीलिये यह प्रणाली बस्तुतः राजतंत्री थी। इसका उपरी या बाहरी प्रजातंत्री स्वरूप केवल इसलिये रखा गया था कि रोमन जोग शांत रहें, और उपद्रव न मचावें। क्योंकि यह निश्चित था कि यदि राजतंत्री शासन की मुख्य-मुख्य बातें स्पष्ट रूप से जनसाधारण के सामने न आयेंगी, तो पुरानी प्रणाली प्रचलित रखने के लिये डनका उत्तरा अधिक आग्रह न रह जायगा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आगस्टस के अधिकार असीम थे। अतः अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि उसने अपने हच अधिकारों का एक तो रोम और इटली में और दूसरे विदशी प्रांतों में किस प्रकार उपयोग किया था।

(१) रोम और इटली के साथ उसने सबसे पहला उपकार यह किया था कि वहाँ शांति स्थापित की थी। जो देश वर्षों तक गृह-युद्ध आदि करता-करता नितांत शिथिल हो गया था, और धोरे-धीरे नाश के गढ़े की ओर गिरता जा रहा था, उसके लिये यह शांति अमृत-स्वरूप हो थी। जब देश में भक्ति शांति स्थापित हो चुकी, तब आगस्टस ने उसे फिर से संपत्ति बनाने का प्रयत्न आरंभ किया। उपर जिस भित्ति-ज्ञेय का इमने वर्णन किया है, उसमें एक स्थान पर लिखा है—“देश में जल लाने की जो वही-वही धर्म-प्रणालियाँ या राजवड़े थे, वे अनेक स्थानों पर टूट-फूटकर नष्ट हो रहे थे। मैंने उनकी मरम्मत कराई.....। मारकियन नाम के राज-वडे की मैंने ऐसी व्यवस्था की कि उसमें पहले से दूना जल आने लगा.....। प्रखंगीनियन मार्ग मैंने एविमीनम-नामक स्थान तक फिर से बनवाया, और साथ ही उस पर के सब पुल भी फिर से तैयार कराए.....।” इसके कुछ दिनों बाद आगस्टस ने इटली की सदकों और सावंजनिक इमारतों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया। कहने को तो यह एक बहुत साधारण-सा काम है, पर इटली की तरकाकोन दशा देखते हुए यह बहुत ही कठिन काम था। उसने पुराने नगर फिर से तैयार कराए थे, और कहं नए नगर भी बसाए थे। वह कहता है—“मैंने इटली में २८ उपनिवेश स्थापित किए, जिनमें बहुत-से और संपत्ति कोग बसाते हैं।” इस प्रकार उसने उन पुराने सैनिकों के निवास और जीवन-निवाह की व्यवस्था की, जो पहले परम असंतुष्ट रहते थे। रोम में इधर-उधर घूमकर

उपद्रव मचाया करते थे, और हटकी की शांति भंग करने के लिये जिससे घन पाते थे, उसी की सहायता के लिये सदा तैयार रहते थे। बहुत-से लुटेरे और भागे हुए गुलाम आम रास्तों पर उपद्रव मचाते और खून-पाट करते थे। इसके अतिरिक्त बहुत-से समुद्री ढाकू भी थे, जो जहाज़ों को लूटा करते थे। उसने इस प्रकार के सब लुटेरों का दमन किया, और इटेंजियन नगरों में ऐसे स्थानिक अधिकारियों की नियुक्ति को प्रोत्साहित दिया, जो स्थानिक कार्यों को देख-भाल करते थे। इस प्रकार हटकीवाले फिर से व्यापार करनेवाले हो गए, और उनका वैभव तथा संपत्ति बढ़ने लगी।

रोम में भी आगस्टस ने यथेष्ट शांति स्थापित की थी। उसने पुलिस और आग बुझानेवाले कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि की, और ऐसी व्यवस्था की, जिससे नगर के दरिद्रों को बराबर और नियमित रूप से सुश्वत में अनाज मिलने लगा। यद्यपि उसने व्यसेवको के हाथ से समस्त राजनीतिक अधिकार छोड़ दिए थे, पर फिर भी उसने नगर-निवासियों के मनोविनोद आदि के साधन प्रस्तुत करके और उनमें धन-वितरण करके उन्हें सदा प्रसन्न रखा। वह कहता है—“मैंने आठ बार जनता को ग्लैडिप्टरों (गुलाम या खदाई में पकड़े हुए आदमी, जिन्हें हथियार देकर जनता के सामने खखाड़ी में छोड़ दिया जाता था, और जो आपस में लड़ते-जड़ते या तो एक दूसरे को मार डालते थे, या पूरी तरह से हरा देते थे।) के तमाशे दिखलाए; तीन बार बड़े-बड़े दंगल कराए, और सत्ताहेस बार व्यावाम-संबंधी खेल कराए थे। प्रतिवर्ष होनेवाले सैनिकों के जो खेल बंद हो गए थे, वे मैंने फिर से जारी कराए, छब्बीस बार जंगली जानवरों के सामूहिक शिकार कराए थे, और एक बार झास तौर पर तैयार कराइं हुई झीका में जड़ाई के जहाज़ों को नक्की लड़ाई कराई थी।” इसके अतिरिक्त

लोगों को दान-स्वरूप धन देने में उसने अनेक बार जो व्यय किए थे, उनकी भी एक सूची उसने दी है। उसने रोम-नगर में इतने अधिक पुराने मंदिरों की मरम्मत कराई थी, और इतने अधिक नए मंदिर और दूसरे भवन आदि बनवाएँ थे कि वह उचित रूप से इस बात का अभिमान कर सकता था कि “रोम सुझे हैंट के रूप में मिला था, और मैंने उसे संगमरमर बनाकर छोड़ा।” इस प्रकार की इमारतों की सूची में उसने एक सिनेट-भवन, इमारतों के आगे की संमेदाह मेहराबें, सार्वजनिक सभाओं और न्यायालय के लिये एक बड़ी इमारत, जो रंगशालाएँ या थिप्टर, दो बहुत बड़े-बड़े बाज़ार और सत्राद मंदिर गिनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त वह यह भी कहता है—“मैंने बयासी पुराने दंदिरों की मरम्मत कराई हैं”, जिनके नाम नहीं दिए गए हैं।

(२) प्रांतों में आगस्टस ने दो प्रकार के काम किए थे—एक तो शासन-संबंधी और दूसरा सैनिक-रक्षा-संबंधी। (क) अनुभव से यह सिद्ध हो चुका था कि प्रजातंत्र शासन-प्रणाली हानिकारक है। अतः इस संबंध में सुधार करने के लिये आगस्टस ने प्रांतों के दो प्रकार के विभाग किए थे। जो प्रांत पुराने थे, और जहाँ अपेक्षाकृत अधिक शांति रहती थी, उनमें पुराने प्रजातंत्री शासन की भाँति प्रतिवर्ष निवाचित मजिस्ट्रेट लोग शासन करते थे। पर नए प्रांतों में और विशेषतः ऐसे प्रांतों में, जो सीमाओं पर पड़ते थे, और जहाँ बहुत-सी रोमन-सेनाएँ रखनी पड़ती थीं, सत्राद् अपनी ओर से अपनी पर्सद के गवर्नर या शासक नियुक्त करता था। ये शासक आगस्टस के प्रतिनिधि कहलाते थे, और वब तक सत्राद की इच्छा होती। थी, तब तक ये उस पद पर रहकर काम करते थे। उनका निवाचन भी आगस्टस ही करता था; वही उन्हें पुरस्कार दे सकता था, और वही उनकी

पद-वृद्धि कर सकता था ; इसलिये उनके राजमहल बने रहने की भी विशेष संभावना रहती थी । आगस्त्य ने प्रत्येक प्रांत से लिया जानेवाला राज-कर भी निश्चित कर दिया था, जिससे प्रांतों की प्रजा को यह मालूम रहता था कि हमें कुल मिकाकर कितना राज-कर देना पड़ता है । ऐसी अवश्या में कर-संग्रह करनेवाले उन्हें सताकर उनसे अधिक कर नहीं बचूल कर सकते थे । यदि प्रजा के साथ किसी प्रकार का अन्याय-पूर्ण व्यवहार होता था, तो वह सन्नाट से अपील कर सकती थी, और सन्नाट उसका न्याय करता था । पहले प्रबालंत्र-शासन में कुछ ऐसी अवश्या थी कि यदि कोई प्रांतीय शासक या गवर्नर अपनी प्रजा पर किसी प्रकार का अन्यायाचार करता था, उसे पीड़ित करता था, अथवा अपने कर्तव्यों का उचित रूप से पालन न करता था, तो उसे सहसा किसी प्रकार का दंड नहीं लिया सकता था । क्योंकि सारे सान्नाट्य में कोई ऐसा एक अधिकारी नहीं होता था, जो उसे दंड दे सकता । पर अब यह बात नहीं रह गई थी । आगस्त्य इस प्रकार के गवर्नरों को दंड दे सकता था । (ख) सान्नाट्य की सीमाओं के बाहर पूर्व में पारियान खोग रहते थे, और उत्तर तथा पश्चिम में द्वार जातियाँ वसती थीं, जिन्होंने अनेक बार इटली पर आक्रमण किय थे, और भविष्य में भी इस बात की संभावना थी कि अवसर पाते ही ये खोग फिर सान्नाट्य पर आक्रमण पर सकेंगे । इन खोगों से अपने सान्नाट्य की रक्षा करने के लिये आगस्त्य ने सीमाओं पर सैनिक-रक्षा की भी एक अच्छी प्रणाली प्रचलित की थी । पूर्व की ओर उसने अपने सान्नाट्य की सीमा फ्रात-नदी निश्चित की थी । यद्यपि बाद के ट्रेजन-गामक सन्नाट ने फ्रात-नदी के उस पार भी रोमन-राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया था, और योद्धे-से प्रदेश जीते भी थे, पर उसके उत्तराधिकारी ने वे प्रदेश अपने अधि-

कार से निकालकर छोड़ दिए थे। इस प्रकार फ़रात-नदी ही रोमन-साम्राज्य की पूर्वी सीमा बनी रही। योरप में आगस्टस ने यह निश्चित कर दिया था कि रहाइन और डैन्यूब नदियों तक हमारे राज्य की सीमा रहेगी। पूर्क यार आगस्टस ने अपनी सेनाएँ रहाइन-नदी के उस पार एलव तक भी भेजी थीं, परंतु सन् ६ ई० में बरमारों ने रोमन-सेना को बहुत खुरी तरह से परास्त किया था, जिससे आगस्टस ने अच्छी तरह समझ किया था कि रहाइन-नदी के उस पार अपनी सेनाओं को भेजना ठीक नहीं है। डैन्यूब-नदीवाली सीमा पर सन् ६ ई० में पेक्षोनिया तथा डेन्मेरिया-नामक प्रांतों में विद्रोह हुए थे, जिन्हें आगस्टस ने दबा दिया था; पर उनसे और आगे के प्रदेशों को वह कभी जीतना नहीं चाहता था। वह अपने साम्राज्य की सीमाओं के विषय में बहुत सचेत रहता और प्रत्येक कार्य समझ-बूझकर करता था। इस संबंध में उसकी बुद्धिमत्ता का एक सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उसके बाद के किसी भी सम्भाद ने उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन करने का कोई विशेष उद्दोग नहीं किया। आगस्टस के बाद केवल विटेन का प्रांत ही रोमन-साम्राज्य में मिलाया गया था, जो उन दिनों पूर्क प्रकार से गाज़ का बाहरी भाग ही समझा जाता था। इसके अतिरिक्त थोड़े-से और प्रांत भी रोमन-साम्राज्य में मिलाए गए थे; जैसे साम्राज्य की डैन्यूबवाली सीमा ठीक करने के लिये डेनिया और थ्रोस। पश्चिया का केप्पाढोशिया-प्रांत और आफ्रिका का मारेटेनिया-प्रांत जो पहले से ही रोम पर निर्भर रहता था, वे सब थोटे-थोटे देश के बज्जे उनके शासन के सुवोते के लिये ही रोमन-साम्राज्य के प्रांत बनाए गए थे। द्रेजन ने पूर्व में अवश्य कुछ प्रदेश जीते थे, पर, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, उन पर रोमनों का अधिक समय तक अधिकार नहीं रह सका, वे फिर साम्राज्य से अलग हो गए थे।

रोमन-साम्राज्य के लिये एक बहुत बड़े गौरव की बात यह है कि उसने अपनी सीमा के बाहर के वर्षों के आक्रमणों से केवल अपनी सम्यता और संस्कृति की ही रक्षा नहीं की थी, बल्कि जिन प्रांतों पर उसने अधिकार करके शासन किया था, उनके निवासियों को भी उसने सम्म बना दिया था। साम्राज्य का सर्वश्रेष्ठ कार्य इन्हीं प्रांतों में हुआ था। यह ठीक है कि पूर्व में बहुत दिनों से सम्यता चली आ रही थी, और वहाँ रोम ने केवल वही काम अपने हाथ में किया था, जो पारसी और यूनानी राजा पहले से करते चले आए थे। हाँ, पश्चिम में रोम ही सम्यता का सबसे पहला प्रचारक था। योरप में रोम ने सम्यता के प्रचार का काम इतनी उत्तमता से किया था कि स्पेन, गाल और यहाँ तक कि ब्रिटेन के अनेक भाग भी बहुत-सी बारों में उसी प्रकार रोमन हो गए थे, जिस प्रकार स्वयं इटली था। और, साम्राज्य में जो अनेक लैटिन लेखक हुए थे, उनमें से कई सर्वश्रेष्ठ लेखक रोमन-साम्राज्य के अधीनस्थ प्रांतों में ही हुए थे।

योरप में सम्यता के प्रचार का यह काम भी रोम ने उसी ढंग से किया था, जिस ढंग से उसने आरंभ में इटली में किया था। सभी प्रांतों में बड़ी-बड़ी सड़कें बनाई गई थीं। रोमन-सड़कों का नक्शा देखने ही कायक है। उससे पता चल सकता है कि गमनागमन, व्यापार आदि काम उन सड़कों के कारण कितने अधिक सुगम हो गए थे। साम्राज्य के अनेक भागों में 'उपनिवेश' स्थापित किए गए थे, जो आस-पास के प्रदेशों के लिये रोमन आचार-विचार आदि के आदर्श-स्वरूप थे, और रोमन-प्रभाव के केंद्र थे। आगस्तस कहता है—मैंने आक्रिका, सिसिली, मेसिडोनिया, स्पेन के बोनो प्रांतों, पकेह्या, पश्चिया, सीरिया (नरबोनीज या दक्षिणी), गाल और पिसीडिया में उराने सैनिकों के उपनिवेश स्थापित किए

है। परवर्ती सब्राट् भी बराबर हसी नीति का अनुसरण करते रहे। उदाहरणार्थ, बिटेन में आगस्टस के बाद रोमनों ने डोरसेट समुद्र-तट से लिंकन और यार्क तक एक बहुत बड़ी सड़क बनाई थी, जो सिरेजसेस्टर से होती हुई गई थी। एक दूसरी सड़क चिचेस्टर से लिंकन और यार्क तक बनाई थी, जो लंदन होती हुई गई थी। और, एक तीसरी बड़ी सड़क ढोबर से रायब्रीटर और चेस्टर तक बनाई थी, जो लंदन होती हुई गई थी। हसके अतिरिक्त बिटेन में कोलचेस्टर, लिंकन, यार्क, बलीसेस्टर और चेस्टर में रोमनों के उपनिवेश स्थापित हुए थे।

इन उपनिवेशों की स्थापना से एक अच्छा आदर्श खदा हो गया था। जगह-जगह रोमन ढंग के क्रम्बे बनने लग गए, जिनका शासन भी रोमन ढंग पर ही स्थानिक अधिकारी और स्थानिक या ज़िले की कौंसिलें करती थीं। परिचमी योरप में छोटे-छोटे क़स्तों और देशाती प्रांतों की जो कौंसिलें हैं, और आजकल संसार के अधिकांश भागों में जो म्युनिसिपल-प्रशासन प्रचलित है, वह प्रथम रूप से रोमन-साम्राज्य की शासन-प्रणाली से ही निकली हुई है। घोरे-घीरे रोमन क्रान्तिकारों का भी प्रचार होने लगा, और रोमन ढंग पर शिष्ठा-प्रचार के लिये विद्यालय और कारीगरों आदि के संघ बनने लगे। भिज्ञ-भिज्ञ स्थानों में हस प्रकास्त के कार्यों में परस्पर बहुत कुछ अंतर भी था। यदि किसी प्रांत की प्रजा अपने पुराने रीति-व्यवहार और पुराने धर्म ही प्रचलित रखना चाहती थी, तो उसमें भी रोम की ओर से कोई बाधा नहीं होती थी। पर फिर भी सब बातें धीरे-धीरे रोमन ढंग की होती चलती थीं, और रोम के प्रभाव से प्रांतों के शिक्षण और व्यापार आदि की उन्नति होती चलती थी, और उनकी आव के साधन बढ़ते चलते थे। रोम ने अपने प्रांतों की प्रजा को यह सिखाया था कि ज़मीनों और खानों से किस प्रकार

काम लेना चाहिए, किस प्रकार नहीं-नहीं चीज़ें तैयार करनी चाहिए, किस प्रकार व्यापार बढ़ाना चाहिए, और किस प्रकार अपने क्रस्ते तथा ज़िक्रे के कामों का आप प्रबंध करना चाहिए।

आगस्टस की प्रचलित को हुई प्रणाली पृष्ठ सुंदर यंत्र के समान थी, और आश्चर्य-जनक रूप से सोच-समझकर प्रस्तुत की गई थी। पर वह समझता था कि जब तक स्वयं प्रजा में राजभक्ति, सुख्यवस्था और सुंदर रहन-सहन का भाव न होगा, तब तक यह यंत्र कभी संतोष-जनक रूप से काम नहीं कर सकता। अतः अब इस यह बतलाना चाहते हैं कि इस प्रकार के भावों की सुष्ठि और प्रसार के लिये उसने क्या-क्या प्रयत्न किए थे।

रोम और इटली में कई दुरी बातों और प्रथाओं को रोकने के लिये क्रान्ति बनाए थे, और विवाह के संबंध में लोगों की जो पुरानी, शिथिल धारणा थी, उसने उसे इद करना चाहा था। पहले कोग विवाह-संबंध को खेड़वाड़ समझते थे, और जब चाहते थे, तब उसे तोड़ देते थे। पर आगस्टस ने यह बात बहुत कुछ बंद कर दी। इसके उपरांत उसने धर्म का पुनरुद्धार करने का प्रयत्न किया। रोम का प्राचीन धर्म अनेक बातों में बहुत अच्छा था, और प्राचीन काल में रोम पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव था। पर अब वह धर्म बहुत कुछ नष्ट हो गया था, केवल पुराने दंग के कुछ शाँत वंशों में ही बच रहा था। पुराना राष्ट्रीय धर्म, जिसमें ज्यूपिटर और मार्स आदि राष्ट्रीय देवतों की पूजा होती थी, अब नष्टप्राप्य हो गया था, और लोगों का उस धर्म या उनके देवतों पर विश्वास नहीं रह गया था। उसके स्थान पर अब पूर्व को और से आप हुए कई धर्मों का प्रचार हो गया था, और जन-साधारण में उन धर्मों का आदर बहुत बड़ गया था। ये धर्म उत्तेजक तो थे, लोगों को कट्टर तथा उदंड

अवश्य बना देते थे, पर उनकी लीबन-चर्यां सुंदर नहीं रह जाती थी। आगस्टस ने पुराने राष्ट्रीय धर्म को फिर से प्रचलित करने का प्रयत्न किया था। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, वह स्वयं बतलाता है—“मैंने बहुत-से पुराने देव-मंदिरों का जीणांदार कराया है, और बहुत-से नए मंदिर बनवाए हैं।” पर हन सब बातों से जनता का कोई उपकार नहीं हुआ। रोमवंश के सब पुराने गुण नष्ट हो गए थे, और रोम की तथा कुछ अंशों में इटली की भी नैतिक तथा धार्मिक स्थिति बहुत तुरी हो गई थी, और दिन-पर-दिन बराबर बिगड़ती ही जाती थी। जन-साधारण किसी प्रकार अपना सुधार ही नहीं कर सकते थे। ऐसे समय में इसाई-धर्म का आविर्भाव हुआ। और, जब इटली में उसका प्रचार हुआ, तब जनता के आचरण आदि पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। शिक्षित लोगों के आचार-विचार तो पृक् सीमा तक इसलिये अच्छे बने रहे कि उन्होंने यूनानियों से एक प्रकार का दर्शन-शास्त्र सीख लिया था, जो ‘स्टोइसिझम’ कहलाता था। इसका उन लोगों में प्रचार भी बढ़ रहा था। इसका फल यह हुआ कि लोग सुंदर रूप से लीबन व्यतीत करने लगे, उनका उनमें आत्म-प्रतिष्ठा का भाव आ गया, वे विपत्तियों आदि को वीरता-पूर्वक सहन करने लगे, और वे न्यायशील तथा विचारवान् होने लगे। रोम के उच्च वर्ग के निवासियों में इस प्रकार के विचारों का उन दिनों फ्रैशन-सा चल गया, और इसके कारण उन लोगों में तब तक कुछ-कुछ उच्च विचार चलते रहे, जब तक इसाई-धर्म ने आकर यह काम अपने हाथ में नहीं डाला लिया।

प्रांतों में आगस्टस ने एक नए धर्म का प्रचार करने का भी प्रयत्न किया था। इस धर्म में ‘जीनियस आगस्टी’-नामक देवता की एक होती थी, जिसका अर्थ है सन्नाट की रक्षा करनेवाली हंश्वरीष

शक्ति । आगे चलकर इसमें केवल सम्राट् की ही पूजा आकी बच रही । सम्राट् की पूजा और भक्ति के सिवा और कुछ रह ही न गया । पूर्व में इस धर्म का अवलोक्या आदर हुआ । पूर्वी देशों की प्रजा पहले से ही अपने शासकों को देवता-रूप में पूजने की अभ्यस्त थी । पूर्व से यह पूजा और भक्ति इटली और पश्चिमी प्रांतों में फैली । पर वहाँ धार्मिक चेत्र में उसका उत्तना अधिक प्रभाव नहीं था, जितना राजनीतिक चेत्र में था । इससे लोगों की जीवन-चर्याँ में तो कोई सुधार नहीं हुआ, पर हाँ, लोगों के मन में यह भाव बैठ गया कि साम्राज्य की रक्षा ईश्वर करता है, भृत; लोगों के मन में रोम के प्रति धार्मिक अद्वा और भक्ति उत्पन्न हो गई । दो सौ वर्षों तक रोमन-साम्राज्य में इस 'सीज़र-भक्ति' का बहुत ज़ोरों से प्रचार रहा, और विशेषतः जन-साधारण में तो यह और भी अधिक प्रचलित हुई । पर रोम और प्रांतों के अधिक शिक्षित निवासियों में स्तोइसिज़म का ही अधिक चार रहा । सेना में एक नए पूर्वी धर्म का यथेष्ट प्रचार हुआ, जो मिथू-इडम कहलाता था । धीरे-धीरे यह धर्म भी बहुत शक्तिशाली हो गया । पूर्व से आए हुए अन्यान्य धर्म में तो यह बात नहीं थी, पर हाँ, इस धर्म के कारण बहुत-से लोग उत्तम रूप से जीवन व्यतीत करने लगे गए थे ।

साधारणतः हम कह सकते हैं, जब तक रोमन-संसार में हँसाहँ-धर्म का प्रचार नहीं हुआ था, तब तक वहाँ कोई ऐसा धर्म नहीं था, जो लोगों को एक सर्वशक्तिमान् ईश्वर पर विश्वास करना सिखलाता, और उन्हें यह शिचा देता कि इस प्रकार के धार्मिक विश्वास के साथ-ही-साथ यह भी आवश्यक है कि सदाचार-पूर्ण जीवन व्यतीत किया जाय ।

रोमन-साम्राज्य में आगस्टस ने जो प्रणाली चलाई थी, उसकी सुकृद-मुख्य बातें ये हैं—

(१) सच्चाट् की शक्ति उसके सैनिक अधिकार पर निभंर करती थी; अर्थात् सच्चाट् ही समस्त सेनाओं का प्रधान सेनापति होता था, और इसीलिये सब लोग उसकी आज्ञाएँ मानने के लिये विवश होते थे । यदि सच्चाट् बुद्धिमान् और दृढ़ होता, तब तो इससे कोई हानि नहीं हो सकती थी, पर यदि वह दुर्बल या मूर्ख होता अथवा अपने सेनापतियों और सैनिकों को अपने प्रति निष्ठ न रख सकता, तो फिर अवश्य ही भारी विपत्तियाँ और संकट आ सकते थे । रोमन-साम्राज्य में ये विपत्तियाँ और संकट इसलिये और भी भारी हो सकते थे (जैसा हम पहले बतला चुके हैं) . कि वहाँ यह आवश्यक नहीं या कि कम-से-कम सिद्धांततः साम्राज्य का स्वामित्व पिता के उपरांत उसके पुत्र को अथवा पृक् सच्चाट् के उपरांत उसके उत्तराधिकारी को ही प्राप्त हो । इस प्रकार किसी सच्चाट् के मरते ही वहाँ कुछ लोगों में सच्चाट्-पद पाने के लिये प्रतिहंतिता खड़ी हो सकती थी । यदि सेनापतियों में भी उच्चाकांचापैं होतीं, तो वे सैनिकों को भी समझा-बुझाकर या और किसी प्रकार अपने वश में कर सकते थे, और स्वयं सच्चाट् का पद प्राप्त करने में उनसे सहायता ले सकते थे । दूसरे शब्दों में हम यही बात इस प्रकार कह सकते हैं कि रोमन-साम्राज्य में सारा शासन सदा एक ही मनुष्य पर निभंर रहता था । और, ऐसी प्रणाली की सफलता अधिकांश में उस सच्चाट् के गुणों पर ही निभंर करती है ।

(२) प्रांत और उनमें के क्रृष्णे स्वयं अपने स्थानिक विषयों की तो देख-रेख कर सकते थे, पर समस्त साम्राज्य के शासन-संबंधी कार्यों में वे किसी प्रकार का सहयोग नहीं कर सकते थे । इसीलिये धीरे-धीरे उन्हें इस बात की परवा कम होने लगी कि योग साम्राज्य पर क्या बीत रही है । उन्हें जो कुछ चिंता रहती थी, वह स्वयं अपने वहाँ की और अपने पास-पड़ोस की बातों की ही रहती थी ।

(३) रोम में सदागुणों और धार्मिक भावों का जो हास हो गया था, उसके परिणाम-स्वरूप उस नगर के समाज की अवस्था दिन-पर-दिन घ्रनाव होती गई, और आदरणीय नहीं रह गई। यों-यों समय चलता गया, स्यों-स्यों उच्च कोटि के रोमन और इटैलियन बाहरी प्रांतों में जाकर बसने लगे, क्योंकि वहाँ की सामाजिक अवस्था बहुत कुछ अच्छी थी। इस प्रकार साम्राज्य के केंद्र का धीरे-धीरे पतन होने लगा। और, जिस साम्राज्य की पेसी अवस्था हो, वह अधिक दिनों तक नहीं बना रह सकता।

इन सब दुर्बलताओं के दुष्परिणाम एक साथ ही नहीं दिखाई पड़ने लगे थे, बल्कि धीरे-धीरे प्रस्तुत हुए थे। इस साम्राज्य का ढाँचा पेसी घूबी के साथ खड़ा किया गया था कि वह बहुत दिनों तक जैसे-तैसे चलता रहा, और उसके बहने के लक्षण बहुत दिनों बाद दिखाई पड़े। तो भी इसमें संदेह नहीं कि आगस्टस ने साम्राज्य में जो शासन-प्रणाली प्रचलित की थी, उसमें यह एक बहुत बड़ा गुण था कि वह प्रायः दो सौ वर्षों तक, बल्कि इससे भी कुछ और अधिक समय तक चलती रही, और तब कहीं जाकर उसका नाश आरंभ हुआ। अंत में यह सारी हमारत उस समय ढह गई, जब बर्बरों ने आकर उस पर आक्रमण करने आंभ किए। पर इन्हीं दो सौ वर्षों में उसने समस्त योशप में एक पेसी सम्पत्ता स्थापित कर दी थी कि जब बर्बर जोग आए, तब वे उस सम्पत्ता को किसी प्रकार नष्ट न कर ही नहीं सके, उक्ते उन्हें विवश होकर इसकी प्रशंसा करनी पड़ी, और उससे बहुत-सी बातें सीखनी पड़ीं।

स्वयं आगस्टस के शासन-काल में पेसा जान पड़ता था कि स्वर्ण-युग जल्दी-जल्दी चला आ रहा है। कम-से-कम बरनिल और होरेस-सरीखे कवियों ने तो उसका पेसा ही सुंदर वर्णन किया है, और

वह वर्णन है भी बहुत-से अंशों में ठीक। सारा संसार शांति और वैभव के लिये आशा-पूर्ण इष्ट से केवल आगस्टस की ओर ही टक जागए हुए था। वह स्वयं कहता है—“सिनेट ने यह घोषणा कर दी है कि प्रति पाँचवें वर्ष मेरे आरोग्य के लिये मन्त्रों मानी जाया करें।” हो सकता है, सिनेट ने लिंगं गुलामों को तरह खुशामद करने के लिये ही ऐसी घोषणाएँ की हों। पर जब वह आगे चलकर कहता है—“समस्त नागरिकों ने व्यक्तिगत और निजी रूप से भी तथा भुनिसिपैजिटिवों के रूप में सामृद्धिक रीति से भी समस्त देव-मंदिरों में मेरे नीरोग रहने के लिये निरंतर बिदान चढ़ाए थे।” तब मानो इमें उसकी सबंधिता का एक ऐसा प्रमाण मिल जाता है, जिसके विषय में किसी को कुछ कहने की जगद ही नहीं रह जाती। इटकी और प्रांतों के असंख्य लोकों से यह बात निर्विवाद रूप से सूचित होती है कि सारे साक्षात् य में जोग कितने शुद्ध हृदय से और व्यक्तिगत या निजी रूप से उसका सम्मान करते थे, और कितने शुद्ध हृदय से वे जोग यह बात स्वीकृत करते थे कि सभ्य और शांति-पूर्ण जीवन का भोग करने की सारी आशाएँ एकमात्र आगस्टस पर ही निभंग करती हैं।

आगस्टस का युग रोमन-काव्यों में स्वर्ण-युग माना जाता है। अतः यहाँ रोमन-साहित्य के संबंध में भी कुछ मुख्य-मुख्य बातें बताना देने का यह एक अच्छा अवसर जान पड़ता है। रोमनों की प्रकृति ऐसी थी कि वे कलाओं आदि की ओर बहुत ही कम ध्यान देते थे। अधिकांश में उनका जीवन व्यावहारिक होता था। और, किर उनके इतिहास के आरंभिक पाँच सौ वर्ष तो इन्हें अधिक जाड़-झाड़ों में बीते थे कि उन्हें कलाओं आदि की ओर ध्यान देने का विलक्षण समय ही नहीं मिला था। जब है० प० तीसरी शताब्दी में रोमन लोगों का

यूनानियों के साथ संबंध स्थापित हुआ, तब कहीं जाकर रोमन-साहित्य का आरंभ होने लगा।

यहीं हमें यह बात अचली तरह ध्यान में रखनी चाहिए कि यूनानी कला या ज्ञान का सिकंदर के युग के साथ ही अंत नहीं हो गया था। यद्यपि हेलास का धीरे-धीरे पतन हो गया था, पर फिर भी पृथिव्या के नगरों, इडस, सिसिया और विशेषतः असकंदरिया में यूनानी संस्कृति बराबर बनी रही, और बढ़ती रही। असकंदरिया में तो मिली राजों ने एक बहुत बड़ा पुस्तकालय और अजायब-घर भी खोल रखा था। जितने अच्छे-से-अच्छे यूनानी काम हैं, उनमें से अधिकांश हैं० प० तीसरी या चौथी शताब्दी में ही हुए थे। हेलिकारनेसस का मोसोक्षियम (जो राजा मोसोलस ने अपनी पत्नी की सृति में बनवाया था।), साइडन के तावूत (जिनमें से एक पर सिकंदर के युद्धों के चित्र अंकित हैं।), परगमन की वेदी और एफिसस-नामक स्थान आरटेमिस का मंदिर आदि हेलेनिस्टिक या यूनानी ढंग की कला में के बहुत ही बड़िया नमूने हैं। सेमोथ्रेस-नामक स्थान पर विजय-स्तम्भों की जो सूर्ति बनी थी (जो आजकल पेरिस में है), वह यूनानी तत्त्वज्ञ कला के रसनों में से एक है। और, ये सभी चीज़ें सिकंदर के समय के बाद बनी थीं। उसी समय से साहित्य में भी हमें बहुत बड़े-बड़े कवि और लेखक आदि मिलते हैं। जैसे मेनैंदर, जो हास्य-नस का बहुत अच्छा कवि था, और यियोकाइटस, जिसने आम्य जीवन के संबंध में छोटी-छोटी कविताएँ लिखी थीं। यूनानी-साहित्य में इन सब ज्ञानों की कृतियाँ सबसे अधिक मनोहर और आनंददायिनी हैं। उस समय तक यूनानी दर्शन-शास्त्र का उत्तरि-युग तो समाप्त हो चुका था, पर फिर भी ऐसे ज्ञान दर्शन होते रहते थे, जो बड़े-बड़े प्रश्नों के संबंध में अनुशीलन और उपदेश करते

ये, और लोगों को उचित रूप से विचार तथा कार्य करने का मार्ग दिखलाते थे। इनमें से स्टोडक और प्रिवियोरियन शास्त्र के लोग बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं। और फिर, सबसे बढ़कर बात यह है कि यूनानी विज्ञान की वज्रति का भी यही युग है। इस युग में असंकेंद्रिया तथा दूसरे अनेक स्थानों में ज्योतिष, चिकित्सा-शास्त्र, गणित, ज्यामिति, भूगोल आदि लोगों में बड़े-बड़े विद्वान् बहुत अच्छा काम कर रहे थे। लोगों में साहित्य के अध्ययन का बहुत अधिक प्रचार था। जब रोम ने यूनानी संसार को जीत लिया, उसके बाद भी यह सब काम बहुत दिनों तक जारी रहा।

इस प्रकार जब रोम को यूनान का परिचय हुआ, तब उसे एक ऐसी संस्कृति दिखलाई दी, जो अभी तक जीवित थी, और बहुत कुछ काम कर रही थी। रोमनों में जो लोग अधिक गिरिजित थे, वे यूनानी चीज़ों को बहुत पसंद करने लगे, और उनका बहुत आदर करने लगे। इसी प्रेरणा के कारण रोमन-साहित्य का विकास जाना भी आरंभ हुआ। स्वयं रोमन लोग ही बात बहुत शौक से कहा करते थे कि इमने जो कुछ सीखा है, वह सब यूनानी प्रभाव के कारण ही सीखा है। एक दृष्टि से यह बात विकल्प की भी है। काव्य में उन्होंने यूनानी रूप ग्रहण किया था, और दर्शन-शास्त्र में यूनानी विचार अपनाएँ थे। परं फिर भी रोमन-काव्य में एक ऐसा आनंद और महसूस है, जो यूनानी नहीं, बलिक उसका निजी है। ब्लाटस और टेरेस के हास्यन-स के नाटक (जो ३०० प० २३० और १६० के बीच में लिखे गए थे।) यद्यपि यूनानी नाटकों की नकल ही है, परं फिर भी उनमें खास ज्ञान है। कवियों में ल्यूक्रेशियस (३०० प० १६-१५) एक ऐसा कवि है, जिसमें औरों की अपेक्षा सबसे अधिक रोमन भाव और रंग-हँडग पाया जाता है। वह

केवल बहुत बड़ा प्रतिभाशाली कवि ही नहीं है, बल्कि उसके काव्यों में बहुत अधिक औज है, साथ ही बहुत ऊँचे दर्जे का नैतिक उत्साह भी है, जिसके कारण उसकी कविता संसार की बहुत ऊँचे दर्जे की धार्मिक कविताओं में गिनी जाती है, यद्यपि उसमें एक बहुत बड़ी विशेषता यह भी है कि धार्मिक मिथ्या विश्वासों पर उसमें भीषण आक्रमण किए गए हैं। कटजास (३०० पू० ८४-८५) की कविताएँ संसार के सर्वभेद गीति-काव्यों में गिनी जाती हैं। वरजिल और होरेस की, जो आगस्टन-युग में हुए थे, कविताओं में रोमन-काव्य-कला अपनी पूर्णता को पहुँच गई है। वरजिल अपने समय में आगस्टन सम्राट् का राजकवि था। वरजिल को सृदु, गंभीर, औज-पूर्ण तथा संगीतमय भाषा लिखने पर पूरा-पूरा अधिकार था। उसकी कविताओं से यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है कि रोमन-चरित्र में सबसे अचूक बातें कौन थीं। होरेस के सर्वभेद काव्यों को भी आगस्टन सुधारों से ही प्रोत्साहन मिला था। उसके बहुत-से ग्रेय पदों में पूर्ण रूप से यह बतलाया गया है कि जीवन के संबंध में उन दिनों जोगों के विचार कैसे व्यावहारिक और सुन्दर होते थे। आगस्टस के शासन-काल में अंगिड नाम का एक और लेखक तुआ था, जो कहानियाँ लिखने में बहुत दब था। उसके पदों का रूप भी विकल्प निर्दोष है, पर वह कोई वास्तविक कवि नहीं है। अयूक्तन (सन् ३६-६२ है०) ने अपनी कविता बहुत-से अलंकारों से लादकर ख्राच कर दी है। वह केवल इसलिये सुन्दर अलंकारों से युक्त पद्य लिखा करता था कि वे सुनने में अच्छे जान पढ़ते थे, और इस बात का उसे कुछ भी ध्यान नहीं रहता था कि वे सब बातें सुननेवालों को ठीक और सच्ची जान पड़ेंगी या नहीं। अयूवेनेज (सन् ६७-१४७ है०) के संबंध में भी विकल्प यही

यात है। फिर भी उसने बहुत ही सुंदर और आश्चर्य-जनक भड़ौप लिखे थे। उसने रोमन-चरित्र के दायों और दुर्बलताओं पर बहुत कड़ी शीका-टिप्पणी की है। उसके बाद के भड़ौआ लिखनेवाले बहुत-से कवियों ने उसका अनुकरण किया है।

लैटिन ग्रन्थ को सीबर और सिसरो ने पूर्णता को पहुँचाया था। सीबर ने अपने युद्धों आदि का जो इतिहास लिखा है, उसमें इमें सबसे अधिक शुद्ध लैटिन भाषा मिलती है। उसके लेख जितने मनोरंजक हैं, उतने ही स्पष्ट और सरक भी। हाँ, उनमें केवल पृक ही विषय का विवेचन किया गया है। सिसरो ने सभी प्रकार के विषयों पर बहुत ही दक्षता-पूर्वक लिखा है, और उसकी भाषा भी बहुत प्रशंसनीय है। उसके भाषणों प्रायः बहुत ही सुंदर हुआ करते थे। अच्छे-अच्छे ज्ञानकारों का कहना है कि इस विषय में डिमास्थिनीज के उपरांत उसी का स्थान है। दर्शन-शास्त्र के संबंध में उसने जो कुछ लिखा है, वह चाहे उतना अधिक गहन और गंभीर न हो, पर फिर भी उसमें यूनानी विचार बहुत ही अच्छी लैटिन भाषा में प्रकट किए गए हैं। उसने भाषण-कथा और नैतिक प्रश्नों (सत् और असत्) पर जो विचार प्रकट किए हैं, वे बहुत ही मौखिक और मनोरंजक हैं। पर सबसे अधिक आनंद उसके निजी और व्यक्तिगत पत्र आदि पढ़ने में आता है। इस प्रकार के आठ सौ से अधिक पत्र मिलते हैं, जिनमें कुछ तो बहुत महाव के हैं और कुछ साधारण। वे सब पत्र प्रकाशित करने के लिये नहीं लिखे गए थे, इसलिये उन पत्रों में इमें उसका विलक्षण ठीक-ठीक और सच्चा चित्र मिलता है। उन पत्रों से उसके गुण और दोष सभी प्रकट होते हैं। उनसे यह भी पता चलता है कि उसमें कौन-कौन-सी अच्छी बातें थीं, और कौन-कौन-सी दुर्बलताएँ। इन पत्रों के कारण इमें उसके जितने सच्चे और वास्तविक रूप का पता

चक्रता है, किसी और प्राचीन व्यक्ति के उत्तरे सच्चे और वास्तविक स्वरूप का नहीं। उसके उपरांत जितने पश्च-ज्ञेयक हुए, उन सबका वह जनक और आदर्श है। उसके पत्रों में लैटिन भाषा तो अपने बहुत सुंदर और शुद्ध रूप में मिलती ही है, किन्तु वह संग्रह भी आज तक के लिखे हुए परम मनोहर और मुग्धकारी ग्रंथों में से पक है। उसके समय का इतिहास समझने में उससे अमूल्य सहायता मिलती है।

सिसरो के उपरांत लैटिन ग्रन्थ की मुक्य कीर्ति इतिहास के खेत्र में देखने में आती है। लिखी (इ० प० ४२—सन् इ० १७) ने १४२ अंथों या खंडों में रोम का इतिहास लिखा था, जिनमें से इस समय के बीच ३२ ग्रन्थ या भाग बच रहे हैं। टैसिटस (सन् ४२—१२० इ०) ने अपने शवशुर प्रियोजा की एक सुंदर जीवनी और अपने समय के जमीनी देश और जमीन लोगों का एक मनोरंजक वर्णन लिखा है। इसके अतिरिक्त उसने आगस्टस की मृत्यु के समय से लेकर सन् ८६ इ० तक का रोम का एक इतिहास, कहीं खंडों में, लिखा है। यद्यपि इनमें से कोई लेखक प्रथम अध्याय का इतिहास-लेखक नहीं माना जा सकता, तो भी, इसमें संदेह नहीं, ये दोनों ही प्रथम अध्याय के लेखक हैं। लिखी ने जो कुछ लिखा है, वह सब आदि से अंत तक बहुत ही मनोरंजक है। वह जितनी सरस और मनोहर रीति से किसी घटना का वर्णन कर सकता है, उतनी सरस और मनोहर रीति से और कोई नहीं कर सकता। टैसिटस का चरित्र-चित्रण बहुत ही आश्चर्य-जनक है। वह छोटे-छोटे, पर अर्थ-गमित वाक्य लिखने में बहुत ही सिद्ध-हस्त है। वह बहुत ही योड़े-से शब्दों में अर्थों का असाधारण भंडार भर देता है।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से रोमन-लेखक हैं, पर उनमें से कोई प्रथम अध्याय का नहीं है। यह ठीक है कि यूनानी-साहित्य

के सुकावचे रोमन-साहित्य में बहुत बड़े और नामी लेखक बहुत कम हुए हैं। यहूत-सी बातों में, विशेषतः दर्शन तथा विज्ञान के चेत्र में, रोम ने मुख्य कार्य यहाँ किया है कि यूनानी विचारों की स्थापना करके उन्हें संसार के सामने रखता है। मानो इस त्रुटि की पूर्ति करने के लिये रोमन-भाषा ने योरप की शिक्षा पर इतना अधिक प्रभाव डाला है, जिसका पूरा-पूरा अनुमान नहीं हो सकता। यह ठीक है कि रोमन-भाषा उतनी सुंदर नहीं है, जितनी सुंदर यूनानी भाषा है, पर ठीक-ठीक अर्थ व्यक्त करने में कोई भाषा (आजकल की फ़ॉंसीसी भाषा औरों की अपेक्षा इस विषय में उसकी सबसे अधिक प्रतियोगिता कर सकती है।) लैटिन की कभी वरावरी नहीं कर सकी। लैटिन भाषा को उसकी यह विशेषता मुख्यतः सिसरों की हुपा से ही प्राप्त हुई थी। सिसरों से पहले एक यूनानी ही ऐसी भाषा थी, जिसमें शिक्षित लोग गहन विषयों पर वार्तालाप कर सकते थे। सिसरों के बाद यूनानी-भाषा का यह स्थान लैटिन ने ग्रहण कर लिया था। शताव्दियों तक सारे योरप में या कम-से-कम पश्चिमी योरप में लैटिन ही समस्त शिक्षित लोगों की भाषा थी। सभी लोग उच्च और गहन विषयों पर केवल लैटिन भाषा में ही वार्तालाप करते थे। राज्यों के राजदूत और मंत्री आदि भी इस लैटिन भाषा में ही अपने सब काम करते थे। पश्चिमी योरप के इंसाई-गिरजों में सदा लैटिन भाषा में ही हंश्वर-प्राथंना होती थी, और रोमन कैथोलिक गिरजों में तो आज तक इसी भाषा में हंश्वर-प्राथंना की जाती है। योरप की अनेक आधुनिक भाषाओं—यथा इटैलियन, फ़ॉंसीसी और स्पेनी भाषाओं—का मुख्य आधार लैटिन ही है, और अँगरेजी-भाषा का भी अधिकांश लैटिन भाषा से ही निकला है। यदि यूनानियों ने योरपवालों को ठीक तरह से गहन विचार करना सिखलाया, तो रोमनों ने उन्हें स्पष्ट रूप से

ठीक-ठीक अभिप्राय प्रकट करना सिखलाया। एक ने पश्चिमी संसार को विचार करने के लिये प्रोत्साहित किया, तो दूसरी ने उन्हें भाव-व्यंजन का साधन प्रदान किया। उचित रूप से शिक्षित धर्म के विकास के लिये ये दोनों ही बातें ऐसी हैं, जिनके बिना उसका काम नहीं चल सकता।

४. रोमन-साम्राज्य

आगस्टस की मृत्यु सन् १५ ई० में हुई थी। उसके बाद ज्यूलियन-राजवंश के (इस वंश का यह नाम ज्यूलियस सीजर के नाम पर पड़ा था।) चार और सत्राद् हुए थे, जिनमें से नीरो अंतिम था। नीरो के शासन-काल के अंत में बहुत-से सैनिक विद्रोह हुए थे। रेपेन, जर्मनी और पूर्व की सेनाओं के सेनापतियों ने एक के बाद एक विद्रोह करके राजसिंहासन पर अधिकार करना चाहा था। चारह महीनों (सन् ३८-३९ ई०) में रोम में युक्त-एक करके चार सत्राद् राजसिंहासन पर बैठे थे। इनमें से अंतिम या चौथे सत्राद् वेस्पेसियन ने दस वर्षों (सन् ६६-७५ ई०) तक राज्य किया था। इसके उपरात उसके दो पुत्र क्रम से सिंहासन पर बैठे थे, जिनमें से पहला टाइटस (सन् ७३-८१ ई०) और दूसरा डोमीशियन (सन् ८१-९६ ई०) था। ये जोग फ्लेवियन सत्राद् कहलाते हैं। डोमीशियन की हत्या कर ढाली गई थी, और उसके बाद नरवा को सिंहासन मिला था, जिसका निर्वाचन सिनेट ने किया था, और जिसने केवल दो वर्षों तक शासन किया था। पर नरवा ने अपनी मृत्यु से पहले ट्रेबन को अपना दत्तक बनाकर उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। ट्रेबन (सन् ९८-११७) ने हेड्रियन को, हेड्रियन (सन् ११७-१३८ ई०) ने प्रोटोनियस पायस को और प्रोटोनियस (सन् १३८-१६१ ई०) ने मारकस आरेलियस को दत्तक खेकर अपना उत्तराधिकारी बनाया था। आरेलियस (सन् १६१-१८० ई०) के उपरात उसका पुत्र कोमोडस (सन् १८०-१९२ ई०) सिंहासन पर बैठा था। इस प्रकार प्रायः सौ वर्षों तक राजसिंहासन के

पुरानी दुनिया



इटीडॉरस के अखाड़े का ध्वंसावशेष

उत्तराधिकार के लिये कोई भगवा नहीं हुआ । हम कह सकते हैं, आगस्टस के बाद एक तो वेस्पेसियन और फिर नरवा के पहले चार उत्तराधिकारी रोम के सबसे अधिक योग्य और सबसे अच्छे शासक हुए थे । कोमोडस बहुत ही निकटमा शासक था । उसके शासन-काल के उपरांत प्रायः सौ वर्षों तक कभी कोई सेना किसी को सत्राद् बनाकर सिंहासन पर बैठा देती थी और कभी कोई सेना किसी को । हनमें से अधिकांश सत्राट् बहुत ही योद्दे दिनों तक शासन करने पाते थे; और कोई दूसरी सेना विद्रोह खड़ा कर देती थी, और अपनो पसंद के किसी नए आदमी को लाकर सिंहासन पर बैठा देती थी । इसी प्रकार डायोक्सेशियन नाम का एक सत्राट् सन् २८४ है० में लाकर सिंहासन पर बैठाया गया था, जिसने साम्राज्य को फिर से संगठित करने और मर्यादा तथा स्थवरस्था स्थापित करने का घोर प्रयत्न किया था । पर उब सन् ३०४ है० में उसने स्वयं ही सिंहासन परित्याग कर दिया, तब फिर साम्राज्य में गृह-युद्ध होने लगा । सन् ३०८ है० में तो सिंहासन पर अधिकार करने के लिये एक साथ ही छ उत्राट् उठ खड़े हुए । पर कांसटेंटाइन ने अपने समस्त प्रतिझंडियों को परास्त करके सन् ३११ से ३१७ है० तक राज्य किया । उसकी मृत्यु के उपरांत भगवे और भी बड़ गए, और सन् ३१७ है० में साम्राज्य दो बराबर भागों में खंट गया । उन दोनो भागों में अलग-अलग दो सत्राट् शासन करने लगे । ये दोनो विभाग बराबर अंत तक बने रहे ।

इस काल के आरंभ के दो सौ वर्ष रोमन-साम्राज्य की उत्तराधिकारी के हैं । फ्लेबियन सत्राटों और उनके उत्तराधिकारियों के शासन-काल में रोमन-साम्राज्य अपने सुख और वैभव की परा काढ़ा को पहुँच गया था । उबके समय में शासन-कार्य बहुत ही अच्छी और

पूरी तरह से होता था। सीमांधों पर रक्षा की पेसी व्यवस्था रहती थी कि कोई शत्रु आक्रमण करके सफल नहीं हो सकता था। शांति-कान्च की कलाओं का बहुत ही अच्छा विकास हुआ था। इन दो शताब्दियों की ये ही मुख्य बातें हैं। इस समय रोमन-कला और वास्तु-विद्या की सर्वाङ्गेष कृतियाँ प्रस्तुत हुईं थीं, और रोमन-कानून को एक निश्चित और नियमित रूप प्राप्त हुआ था।

चित्र और मूर्तियाँ आदि बनाने में रोमन लोग सुख्यतः यूनानियों की नक़ल करके ही रह गए थे। वे लोग या तो इन कामों के लिये यूनानी कलाकारों को ही नियुक्त करते था या स्वयं यूनानी कलाओं को नक़ल करते थे। पर न तो वे इस नक़ल में कोई नई बात ही पैदा करते और न असल की बराबरी ही कर सकते थे। रोमन लोगों ने केवल दो ही प्रकार की अच्छी मूर्तियाँ बनाईं थीं—

(१) समारों तथा कुछ अन्य बड़े-बड़े लोगों की पूरी या भाँधी मूर्तियाँ और समाजिक-चिह्न आदि जो रोम में स्थापित किए गए थे। इनमें सबसे बड़ी विशेषता यही है कि ये मूर्तियाँ देखने में विकल्प कुछ सलीव-सी जान पड़ता है। इनके तैयार करने में बहुत अच्छी कारीगरी फूर्च की गई है। रोम में जो मारकस आरेजियस की अरवारूप मूर्ति और हेटाराह का जो स्मृति-चिह्न है, वे दोनों इस प्रकार की तच्छ्वा-कला के बहुत अच्छे नमूने हैं।

(२) समारों के जो बड़े-बड़े विजय-स्तंभ बनाए गए थे, उनके लंबों और मेहराबों पर भी बहुत ही अच्छी-अच्छी मूर्तियाँ और दश आदि नक़ाशे गए हैं। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध टाइटस की मेहराब, टेजन का स्तंभ और कांसटेंटाइन की मेहराब है, और ये तीनों रोम में हैं। इनके अतिरिक्त बेनेवेंटो-नामक स्थान में इसी तरह की ट्रिबन की मेहराब भी बहुत अच्छी है।

इहीं, वास्तु-कथा या भवन-निर्माण में रोम को सबसे अधिक यश प्राप्त हुआ। स्थापत्य-विभाग में रोम ने सुंदर और बड़े मंदिर नहीं बनवाए थे, बल्कि लोगों की सामान्य आवश्यकताओं और सुविते के लिये बहुत-सी अच्छी और बड़ी इमारतें बनवाई थीं। जैसे रहने के मकान, सढ़कें, दीवारें, हमाम, पुजा, राजबहेर या बड़ी-बड़ी जल-प्रणालियाँ (जिनके द्वारा बहुत दूर-दूर से पीने का पानी नदों द्वारा शहरों और ग्रामों में खाया जाता था।), पानी रखने के बड़े-बड़े टौज़, बांध, नल और दीपस्तंभ आदि। इसके अतिरिक्त रोमनों ने एक विशेष प्रकार के बहुत बड़े-बड़े अस्त्रादे भी बनवाए थे, जो एंफी यिप्टर कहलाते हैं। ये अस्त्रादे आवकल के सरकसों के अस्त्रादों की तरह विचकुल गोकाकार होते और इनमें घारों और दर्शकों के बैठने के लिये स्थान बने होते थे। रोमन-साम्राज्य में प्रायः इन्हीं अस्त्रादों में बहुत बड़े-बड़े इंड-युद्ध और हिंसक पशुओं के साथ मरुषों के युद्ध हुआ करते थे, जिन्हें देखने के लिये इन्हाँरों आदमी हकटे होते थे। योरप के बहुत-से भागों में अभी तक ऐसी इमारतें पाई जाती हैं, जो रोमनों ने बनवाई थीं, जिनमें से प्रांत, इटली और सिसली में ऐसे कई एंफी यिप्टर हैं, और सबसे बड़ा फ्रेडियन एंफी यिप्टर है, जो रोम में है, और कोलीनियम कहलाता है। इसके अतिरिक्त मेरिदा या रिमिनी के पुजा, निमेस के पास के सेगोविया के राजबहेर या जल-प्रणालियाँ, रोम के सार्वजनिक मैदान की दीवारें, टिकोंडो के पास हेड्रियन की कोठों, रोम में केराक्षां और यादोक्लोहियन के स्नानागार तथा अन्यान्य अनेक स्थानों में रोमनों की बहुत-सी इमारतों के स्नेहदार अवभी दिखाई देते हैं। ये सब बड़ी-बड़ी इमारतें अपने आकार और भव्यता के विचार से तो प्रशंसनीय हैं ही, पर साथ ही उन्हें देखने से यह भी पता चलता है कि

इनके बनानेवालों का वास्तु-कला-संबंधी ज्ञान भी बहुत बड़ा-चड़ाया, और इमारतें बनाने के लिये उन्होंने अनेक प्रकार के बहुत बड़े-बड़े चंच मी आवश्य ही बनाए थे। प्राचीन काल के सभी राष्ट्रों में रोमवाले इमारतें बनाने में सबसे आगे बढ़े हुए थे। वे अपने मकानों में सिक्के शीशे की खिड़कियाँ ही नहीं लगाते थे, बलिक मकान के मध्य भाग में ऐसी इयस्या भी करते थे, जिससे सारा मकान गम्भीर हो जाता था। हैटों, पथरों और मसालों का बना हुआ उनका काम इतना पक्का और मज़बूत है कि इतना समय बोल जाने पर भी उनका बहुत-सा अंश आभी तक उयों-का-स्थान बना है। फिर सबसे बड़कर उन्हें एक ऐसी समस्या का सामना करना पड़ा था, जो स्वयं यूनानियों के सामने भी नहीं उपस्थित दूँहे थी। वह समस्या यह थी कि हठनी बड़ी-बड़ी छाली जाहें किस तरह भरी जायें। इस समस्या का निराकरण उन लोगों ने बड़ी-बड़ी गोल मेहराबें, मेहराबदार लौंगें और गुंबद आदि बनाने की युक्तियाँ निकालकर किया था। पैथियन नाम की इमारत, जो एग्रिप्पा ने बनवाई थी, गुंबददार इमारतों का आदर्श है, और आभी तक उयों-की-स्थान खड़ी है।

विज्ञान की अन्य शास्त्राओं में रोम ने केवल यूनान के दिक्षिणाप द्वारा मार्ग का ही अनुसरण किया था। यह लीक है कि सीजर ने ३६५ दिनोंवाले साल और अधिमासवाली गणना का रोम में प्रचार करके एक वास्तविक सुधार किया था, और आगस्टस ने सारे साक्षात्क की नाप वा पैमाहश कराई थी। परं रोम में कभी कोई ऐसा वैज्ञानिक अधिकारी लेखक नहीं हुआ, जो प्रथम श्रेणी में रक्खा जा सके। इस प्रकार के जितने लोग वहाँ हुए, वे सब दूसरी ही श्रेणी में रखने योग्य थे। यहाँ तक कि चिकित्सा-शास्त्र-जैसा महस्त-पूर्ण विज्ञान भी उन्होंने यूनानियों के ही हाथ में

क्षोष दिया था । पर और-और चेत्रों में रोमनों ने अवश्य ही बहुत काम किया था । उन्होंने अपने नगरों में नक्ष और मकानों में पनाके आदि बनाने में बहुत अधिक परिश्रम किया था, और सावंतव्यिक स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये बहुत बड़े-बड़े काम किए थे । सबसे पहले उन्होंने अपने सैनिकों के लिये और तब बाद में सामान्य नगर-विवासियों के लिये ऐसे विशिष्ट स्थान बनवाए थे, जिनमें रोगी और विकलांग लोग रह सकें । इस प्रकार मानो अस्पतालों की प्रथा चलाई थी । आगे चलकर इस्ती घौथी शताब्दी में और उसके बाद इंसाई पादरियों ने इस प्रथा का बहुत अधिक विकास किया था, जिससे अंत में इस प्रथा ने आधुनिक बोरप के जीवन में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया ।

रोम ने सप्ताह को जो सबसे अधिक महस्त्र की वस्तु प्रदान की, वह उनका दीवानी क्रान्ति है । फ्रौजदारी क्रान्ति में उन अपराधों के लिये दंड नियत किए जाते हैं, जो स्वर्य राष्ट्र के प्रति होते हैं; जैसे हथ्या, चोरी, राजदोष आदि । ऐसे क्रान्ति प्रत्येक देश और प्रत्येक युग में अत्यन्त-अलग हुआ करते हैं । जिस युग और जिस देश में इस प्रकार के अपराधों से जनता को बचाने के संबंध में जोगों की जैसी धारणा होती है, वैसे ही फ्रौजदारी क्रान्ति वे जोग बनाते हैं; और समाज को ऐसे अपराधों से बचाने के लिये वे अपनी समझ से जो उपाय सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, वही वे लोग काम में जाते हैं । इस विषय में हम साधारणतः यही कह सकते हैं कि उयों-ज्यों समाज अधिक उत्तम होता जाता है, त्यों-त्यों उनके फ्रौजदारी क्रान्तिओं में से निर्दयता और कठोरता कम होती जाती है । दीवानी क्रान्ति वह कहलाता है, जिसमें संपत्ति, उत्तराविकार, व्यापार और नागरिकों के साधारण अधिकारों से संबंध रखनेवाले नियम आदि होते हैं । यह बात स्पष्ट ही है कि मनुष्यों के पारस्परिक लेन-देन और अवधार

आदि के संबंध में जैसा न्याय किया जाता है, मनुष्यों का सामान्य जीवन भी वैमा ही रचित और सुख-पूर्ण होता है।

रोमनों का दीवानी क्रान्ति एक साथ एक ही समय में नहीं बन गया था, बल्कि धीरे-धीरे और समय पाकर बना था। एक के बाद एक, हम प्रकार बहुत-से क्रान्तियाँ जोगों और मजिस्ट्रेटों ने मिलकर उसका विकास किया था। वे जोग पुराने न्यायाधीशों के निर्णयों और निश्चित किए हुए नियमों आदि का प्रयोग करते थे, और नए सुक्रियों में आवश्यकतानुसार बहुत कुछ परिवर्तन और परिवर्धन आदि भी करते थे। जिस समय रोमन-प्रजातंत्र का अंत हुआ था, उस समय तक इस विषय का बहुत कुछ विस्तार हो जुका था; पर फिर भी उस समय तक दीवानी क्रान्ति का कोई निश्चित और स्थिर स्वरूप प्रस्तुत नहीं हुआ था। इसी देवियन के समय में उसे एक निश्चित स्वरूप दिया गया था, और बड़े-बड़े क्राविज क्रान्तियाँ जोगों को यह अधिकार दिया गया था कि वे निश्चित करें कि पुणे वियमों और क्रान्तियों आदि का क्या अर्थ और क्या अभिप्राय है। उसी समय से रोमन-क्रान्ति कुछ निश्चित नियमों के संग्रह के रूप में मान्य होने लगा। इसके उपरांत कुछ तो समय-समय पर पेचीदे सुक्रियों में बड़े-बड़े क्रान्ति-पेशा जोगों से उनकी राय माँगी जाती थी, और कुछ सुक्रियों में अपोल की सबसे बड़ी अदाकल अर्थात् स्वर्य सन्नाट् और उसकी कौंसिज के नियम हुआ करते थे। इन्हीं दोनों बातों के बोग से इस दीवानी क्रान्ति का धीरे-धीरे विकास होने लगा। पर यह उन्हीं नियमों और क्रान्तियों आदि का विकास था, जो पहले से साक्रान्ति में प्रचलित थे।

रोमन-क्रान्ति में कहे बड़ी-बड़ी विशेषताएँ थीं। वह सर्वोंग-पूर्ण था, उसमें प्राचीन प्रथाओं और निश्चित अधिकारों का आदर किया जाता था, और मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार में

समाजाधिकार का पूरा-पूरा व्याज स्वता जाता था। रोमन लोग कभी उन नई बातों या प्रयोगों को पसंद नहीं करते थे, जिनका संबंध लोगों के सामान्य जीवन से होता था। वे समझते थे, अदि मनुष्यों को इस बात का ज्ञान नहीं होगा कि हमारे कौन-कौन-से निरिचित अधिकार हैं, तो उनका जीवन अरचित और कष्टकर हो जायगा। वे यह बात बहुत अच्छी तरह समझते थे कि प्रत्येक मनुष्य को अपने साथ डचित और न्याय-पूर्ण व्यवहार कराने का पूरा-पूरा अधिकार है। इसी का यह परिणाम था कि उन्होंने ऐसा सुन्दर दीवानी क्रान्ति बनाया था, जो दृतना अधिक तुदिमत्ता-पूर्ण, न्यायोचित और सर्वोग-पूर्ण था कि अभी तक योरप के अधिकांश देशों के क्रान्ति उसी के आधार पर बने हुए हैं। यहाँ तक कि आजकल भी वहाँ जो लोग ज्ञानून सीखना चाहते हैं, उन्हें पहले रोमन-क्रान्ति के सिद्धांतों का अध्ययन करना पड़ता है।

अब हम संचेप में यह बतलाना चाहते हैं कि आगस्टस ने जो शासन-प्रणालीं प्रचलित की थी, उसका विकास या सुधार उसके उच्चाधिकारी सम्राटों ने किन-किन दिशाओं में किया था—

(१) धीरे-धीरे सम्राट् के अधिकार बढ़ते गए, और मंत्रियों, कौसिलियरों आदि का उनमें हस्तांतर करने का अधिकार घटता गया। आगस्टस ने यह एक तुदिमत्ता-पूर्ण कार्य किया था कि पुरानी श्रावांत्री प्रणाली की बहुत-सी बातों को उन्होंने पुराने रूपों में रहने दिया था, और सिनेट तथा मजिस्ट्रेटों के हाथ में कुछ अधिकार रहने दिए थे। पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, ज्यों-ज्यों मजिस्ट्रेटों और सिनेट के नए सदस्यों के निर्वाचन का अधिकार सम्राट् के हाथ में आता गया। रोम और इटली में जो सबसे अधिक महत्व के सरकारी पद आदि होते थे, उन पर स्वयं सम्राट् के नियुक्त किए

हुए आदमी ही काम करते थे। ऐसे लोग 'विफेस्ट्स' कहलाते थे, जिसका अर्थ होता है कमांडर या सेनापति। इस प्रकार के फिफेस्ट्स नागरों में, सम्राट् की अंगरच्छ क सेनाओं में, जहाज़ी बैरों में, अनाज की मंडियों में और आग बुझानेवाले दबों में होते थे। धीरे-धीरे हज़ राजकर्मचारियों का महश्व बराबर बढ़ता गया, और पुराने मजिस्ट्रेटों, कांसलों और प्रायटरों आदि का अधिकार धीरे-धीरे घटता गया। हेड्विगन ने साम्राज्य का शासन करने के लिये अपनी एक अखंग कमेटी बनाई थी, जो बड़े-बड़े राजकर्मचारियों का एक प्रकार की प्रिवी कॉसिल थी। आगस्टस ने जो सिविल सर्विस की प्रथा चलाई थी, उससे आगे चलकर एक ऐसी नियमित अवस्था उत्पन्न हुई, जिसमें राजकर्मचारियों का, उनके कामों के महश्व के अनुसार, एक नियिचत क्रम बन गया; और उन राजकर्मचारियों की पद-नृदि केवल सम्राट् ही कर सकता था। अब तक प्रकार की शासन में जो कुछ कमी थी, वह द्वायोक्तेशिवन ने पूरी कर दो। अब रोम के मजिस्ट्रेटों और सिनेट के सदस्यों अथवा सिनेट की प्रायः वहाँ हैसियत रह गई, जो राजकर्मचारियों की मुनिसिपल अथवा इसी प्रकार की और किसी कमेटी या कॉसिल को होती है। साम्राज्य के शासन के आदि से अंत तक सभी काम केवल सम्राट् और उसके द्वारा नियुक्त कर्मचारियों के हाथों ही होने लगे।

(१) परवर्ती सम्राटों ने, विशेषतः क्लाउडियस तथा फ्लोरियन सम्राटों ने, वे अधिकार प्रांतों की प्रबा को भी प्रदान कर दिए, जो अब तक केवल रोम के नागरिकों को ही प्राप्त थे। इस काम में जो कुछ कमी रह गई थी, वह सम्राट् करकलाकीसन (२१२ है०)-वाली उस राजकीय घोषणा से पूरी हो गई, जिसमें उसने अपने समस्त साम्राज्य के स्वतंत्र नागरिकों को (गुखामों को

चोइकर) नागरिकता के वे सब अधिकार प्रधान कर दिए थे, जो सबंहं रोमन नागरिकों को प्राप्त थे । साथ ही इसका मतलब यह भी समझना चाहिए कि रोमन-क्रान्ति सारे रोमन-साम्राज्य में समान रूप से प्रचलित हो गया । इसका परिणाम यह हुआ कि अब साम्राज्य के कामों में रोम और इटली का पहले के समान महात्व नहीं रह गया, बहुत कुछ कम हो गया । डायोक्लेशियन ने ही सबसे पहले इटली के नाथ, शेष सब प्रांतों के समान ही, स्वतंत्र होकर करना आरंभ किया, और इटली पर भी और प्रांतों के समान ही राजकर लगाया था । इससे पहले इटली पर किसी प्रकार का राजकर नहीं था । इसके उपरांत जिस स्थान पर पहले बाइजैटियम-नगर बसा था, उसी स्थान पर कांस्टेंटाइन ने अपने नाम पर कांस्टेंटिनोपलिस या कुस्तंत्रुनिया-नामक नगर बसाया था, जिसका महात्व आगे बढ़ाकर सभी बातों में रोम के महात्व से बहुत बढ़ गया । उसके बाद जो सम्राट् हुए, वे प्रायः रोम में नहीं, बल्कि और-और स्थानों (जैसे रेवेन्ट्रा और पेंचिया) में जाकर रहा करते थे । इसके बाद योरप में बहुत दिनों तक रोम का महात्व बहुत कुछ घटा रहा, उसकी गणना दूसरी ओरी के नगरों में होती रही । फिर जब इंसाइं पोपों का अधिकार बहुत बढ़ गया, और उन्होंने रोम को ही अपना प्रधान निवासस्थान बना लिया, तब कहीं जाकर रोम को फिर वह अपना पुराना महात्व प्राप्त हुआ ।

(३) ज्यूलियन तथा उनके उत्तराधिकारी सम्राटों के शासन-काल में प्रांतों को रोमन दंग का बनाने का काम बराबर ज़ोरों से जारी रहा । शेषतम वर्ग के रोमन नागरिक अब प्रायः इटली में नहीं, बल्कि उसके बाहरी प्रांतों में अधिक संख्या में पाए जाते थे । प्रांतों के ब्यापार, शिव्य और विद्यालयों आदि का विशेष

विकास और उन्नति होने लगी। परंतु साम्राज्य के आरंभिक दो सौ वर्षों के अंत में इसे कुछ ऐसे लच्छा दिखाई पड़ते हैं, जिसे सूचित होता है कि प्रांतों के बीचन में धीरे-धीरे कुछ दोष आने लग गए थे। प्रांतीय प्रजा अब केवल रोम की अच्छी बातों की ही नकल नहीं करती था, बल्कि दुरी बातों की भी नकल करने लग गई थी। अब प्रांतीय निवासी भी ऐसे एंकी शिप्टर बनाने लग गए थे, जिनमें भीषण रक्षात्-युक्त दंड-युद्ध आदि होते थे, जिन्हें देखकर लोग अपना मनोरंजन करते थे। धीरे-धीरे ऐसे आदमियों का मिलना कठिन होने लगा, जो नगर के शासन का कार्य अपने हाथ में ले सके। अब प्रांतों में साम्राज्य के प्रति पहले का-सा अनुराग भी नहीं रह गया था। सन् २००० ई० के बाद, इस देखते हैं, प्रांतीय प्रजाप० सहज में उसी को सम्भाट् मानने के लिये तैयार हो जाती थीं, जो साम्राज्य के केंद्र के पास रहकर अपना दावा पेश करता था। साम्राज्य के शासन में उनका कोई अंश नहीं होता था; और इसीबिये उन्हें इस बात की भी कोई परवा नहीं होती थी कि हम पर कौन शासन करता है। सीबर की पूजा अब केवल दोंग के रूप में रह गई थी, उसका सारा प्रभाव नष्ट हो गया था। युद्धों, विद्रोहों और आकर्षणों के कारण जनता पर कर का भार बहुत बढ़ गया था। जो लोग प्रांतों में उच्च तथा उच्चरदायिस्त्व-पूर्ण पद ग्रहण करते थे, उनके प्राणों पर संकट आने की सदा आशंका थी। डायोक्सेशियन और उसके उत्तराधिकारियों के समय में साम्राज्य के ब्रह्मुक्त व्यक्तियों के पीछे गुप्तचर जगाने की प्रथा भी बहुत बढ़ गई थी। इस आशय के भी कुछ उल्लेख मिलते हैं कि कांस्टेंटाइन के समय में बहुत से लोग नगर की कौमिलों में तथा स्थानिक यदों पर काम करने से अपनी जात बचाने के लिये केवल सेनाओं में ही नहीं भरती होने लगे थे, बल्कि

बहुत-से लोग अपनी सुशी से गुलाम तक बनने लग गए थे । इस प्रकार प्रांतों को अवस्था बिगड़ने लगी, उनके नवरों का जीवन दूषित होने लगा । अब साम्राज्य बहुत इयादा पके और सहे हुए कद्द के समान हो गया था ।

(४) ये सब बारे सन् २०० ई० से पहले नहीं हुए थीं । तब तक रोमन-साम्राज्य का उत्तरि-युग था, तब तक वहाँ बड़े-बड़े और योग्य सम्राट् होते थे । पर आरेक्षियस के बाद साम्राज्य के इतिहास में परिवर्तन होने लगा, वहाँ बड़े-बड़े सैनिक-विद्रोह होने लगे । साथ ही साम्राज्य पर बाइर से बर्बरों के आक्रमण भी होने लगे । इन दोनों ही बारों का वास्तव में परस्पर कुछ संबंध है । उयों-उयों कोई साम्राज्य निर्भल होता जाता है, और तब बाइरी आक्रमणों के कारण साम्राज्य की जबने-भिन्ने और सुकावला करने की शक्ति भी कम होती जाती है । अब साम्राज्य में बहुत जल्दी-जल्दी नए सम्राट् सिंहासन पर बैठाए और राज्य-स्थृत किए जाने लगे थे । सम्राटों को सिंहासन पर बैठाने और उतारने का काम या तो सम्राटों की अंगरक्षक सेना करती थी, या प्रांतीय सेनाएँ करती थीं, और कभी-कभी सिनेट भी ऐसा कर बैठती थी । इसका मुख्य कारण यही था कि आरंभ से ही कभी यह सिद्धांत स्थापित नहीं हुआ था कि पिता के मरने के बाद उसका सिंहासन उसके पुत्र को ही मिलना चाहिए । इसकिये जब कोई सम्राट् मरता था, तब सिद्धांतः लोगों के सामने यह प्रश्न उठ सका होता था कि उसका उत्तराधिकारी कौन बने । जूँगियन लोगों ने यह कठिनता दूर करने का यह प्रयत्न किया था कि जिन लोगों को वे अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे, उन्हें पहले से ही विशेष रूप से सम्मानित करना आरंभ कर देते थे । नववा और उसके उत्तराधिकारियों ने इसके लिये

यह उपाय निकाला था कि जिसे वे अपना सिंहासन देना चाहते थे, उसे पढ़के से ही उम्मकर शासन-संबंधी बड़े-बड़े कार्यों में सम्मिलित करने लगते थे, और समय आने पर वही शासक सचिवाल्ड का उत्तराधिकारी होता था। दायोक्लेशियन ने इसके लिये कुछ और भी विस्तृत व्यवस्था की थी। उसने एक आदमी को 'आग्रहस्टस' की संबंधी पदवी देकर राजकार्यों में अपना सामोदार बना लिया था। इसके अतिरिक्त उसने दो और आदमियों को सीजर की उपाधि दी थी, जो उपसेनापतियों के रूप में काम करते थे। अंत में साम्राज्य पूर्वी और पश्चिमी, इन दो भागों में विभक्त हो गया। पर फिर भी इस समस्या का कभी कोई निराकरण नहीं हुआ। साम्राज्य पर सदा किसी एक ही आदमी का शासन रहता और उसका वह शासन केवल सैनिक शक्ति पर निर्भर रहता था। सन् २०० है० के बाद से कुछ यह प्रथा-सी चल गई थी कि जिसमें अधिक शक्ति होती थी, वही राजसिंहासन पर अधिकार कर बैठता था।

सैनिक-विद्रोहों का परिणाम यह हुआ कि सीमा-प्रांतों की रक्षा का चीरे-धीरे कड़ भी ग्रंथंध न रह गया। टेजन, हेड्रियन और आरेजियस ने तो साम्राज्य की सैनिक-रक्षा पर बहुत अधिक ध्यान दिया था। वे अपना अधिकांश समय अपनी सेनाओं की व्यवस्था में ही लगाया करते थे। हेड्रियन ने सीमाओं की रक्षा के लिये उन पर जगह-जगह किसे बनवाए थे, और कुछ स्थानों पर जगावार बहुत दूर तक बड़ी-बड़ी दीवारें भी बनवाई थीं। इस प्रकार की एक दीवार उसने गिटेन में कारकाइल के उत्तर में एक सिरे से दूसरे सिरे तक बनवाई थी, जिसमें पिकट और स्काट लोग आक्रमण न कर सकें। पर जब सन् २०० है० के बाद रोम और इटली दिन-पर-दिन अधिक निर्दल होने लगे, तब सेनाओं और उच्चके सेनापतियों का विद्रोह करने का हौसला बहुत बढ़ने लगा।

इस कारण सारे साम्राज्य में अव्यवस्था फैल गई, और वे सेनाएँ बहुत कमज़ोर हो गईं, जो मुख्यतः प्रांतों की रक्षा करने के लिये रक्खी जाती थीं। दायोक्लेशियन और कांस्टेंटाइन ने इस प्रकार के विद्रोहों को कम करने के लिये कुछ विशिष्ट उपाय किए थे। उन्होंने प्रांतों की गवर्नरी बाट दी थी, और प्रांतों के शासन का कार्य एक आदमी को और सेना का सेनापतित्व दूसरे आदमी को सौंपा था। पर इसका भी परिणाम केवल यही हुआ कि सभी प्रांतों में इन दोनों मुख्य अधिकारियों में परस्पर ईर्ष्यां-द्वेष बढ़ने लगा; और बाहरी शत्रुओं का सामना करने की जो बची-बुची शक्ति थी, वह भी धीरे-धीरे कम होने लगी।

इस प्रकार सन् २०० ई० के बाद से बाहरी आक्रमणों का युग आरंभ हुआ। ये आक्रमण पूर्व की ओर से भी होते थे और उत्तर की ओर से भी। सन् २५० ई० के लगभग तो साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लग गया था। कुछ सज्जाठों ने इस स्थिति को सुधारने और आपत्तियों से साम्राज्य की रक्षा करने के लिये विकट परिश्रम किया था; पर उनके प्रयत्नों का कुछ भी फल नहीं हुआ। यह चर्य स्वयं साम्राज्य के केंद्र से आरंभ हुआ था, और बराबर बाहर की ओर फैलता जाता था। आक्रमणकारी सैनिक ताज़े भी होते थे, और उनके आक्रमण भी बहुत भीषण होते थे, और साम्राज्य में उन आक्रमणों को सहने की कुछ भी शक्ति नहीं रह गई थी। अब रोम के इतिहास में यदि कोई बतलाने योग्य बात रह गई है, तो वह यही कि किस प्रकार बर्बरों ने इस पर आक्रमण किए, और अंत में किस प्रकार चर्य का पूर्ण पतल हो गया।

५. बर्वरों के आक्रमण

बर्वरों के आक्रमणों के युग को प्रायः राष्ट्रों के भटकने का युग कहते हैं। उन दिनों मध्य और उत्तर योरप की जातियों और उनसे भी आगे की रूस और मध्य पश्चिम में बसनेवाली जातियों में एक विशेष प्रकार की इलाचल-सी सच्ची हुई थी, इसीलिये उन जातियों के लोग बड़े-बड़े दल बौद्धकर अपने रहने के लिये नए स्थान ढूँढने निकल पड़े थे। वे दल चलते-चलते रोमन-साम्राज्य की सीमाओं के बाहर बसनेवाली जातियों के पास तक आ पहुँचे थे, जिसके कारण सीमाओं पर बसनेवाली वे जातियाँ रोमन-साम्राज्य के भीतरी भागों में पहुँचने लग गई थीं। इन लोगों की गति बाद-बाकी नदी के समान होती थी। इन लोगों के अमय आदि का इतिहास बहुत ही पेचीला है। कभी कुछ दल यहाँ निकल पड़ते थे, तो कभी कुछ दल वहाँ दिखाई देने लगते थे। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि कुछ दल कहे छोटे-छोटे भागों में विभक्त होकर निष्ठ-मिष्ठ दिशाओं में चल पड़ते थे। आज शाल पर उनका आक्रमण होता है, तो कल स्पेन पर और परसों आफिक का या ब्रिटेन पर। पर सभी आक्रमणों में चाहे पहले हो और चाहे पीछे, रोमन और हटली की ही हानि होती थी। नाम के लिये हटली ही रोम-साम्राज्य का केंद्र था, और उसका नाम ही इन आक्रमणकारियों को बतात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था।

बर्वरों का पहला आक्रमण आरेक्युस के शासन-काल (सन् १६६ ई०) में हुआ था, जब कि मार्कोस्की तथा कुछ दूसरी जातियों आकर दैन्यूबवाली सीमा के आस-पास के प्रदेशों पर कैल-

बहुत थीं। कगातार तेरह वर्षों तक भीषण युद्ध करने के उपरांत रोमनों ने किसी प्रकार उन्हें आपने साम्राज्य की सीमा से निकाल बाहर किया था। पर फिर भी शांति-पूर्वक उन लोगों के साप समझौता करने के बिचार से आरेखियत ने उनमें से बहुत-न्यौलोगों को साम्राज्य के धर्मों के रूप में आकर वसने के लिये निमंत्रित किया, और उनसे कहा था कि जिन प्रांतों पर आप लोगों ने आक्रमण किया है, उनमें आकर आप लोग शांति-पूर्वक वस सकते हैं। यह एक बहुत महस्त-पूर्ण उदाहरण था, और परवर्ती संखाटों ने बराबर इसका अनुकरण किया था। उस समय ऐसा करना आवश्यक भी था, क्योंकि सीमा-प्रांत की भूमि गैर-आवाद तो रक्खी ही नहीं जा सकती थी। यदि वह भूमि छाली और गैर-आवाद रक्खी जाती, तो उन पर बर्बरों का आक्रमण और भी अधिक होता। पर आगे चढ़कर इसका परिणाम यह हुआ कि अधिकाधिक बर्बर आकर साम्राज्य में वसने लगे। ये लोग अन्यान्य नागरिकों की अपेक्षा बहुत उम्र और बलिष्ठ होते थे। धीरे-धीरे सीमा-प्रांतों की रक्षा करनेवाली सेनाओं में इन बर्बरों की संख्या बहुत बढ़ गई। अब वर्षों-जयों उनकी संख्या और महस्त बढ़ता गया, त्यों-त्यों उनके सरदार भी साम्राज्य के बड़े आदिमियों में गिने जाने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे साम्राज्य, सेना और राजदरबार सभी बर्बरों से भरने और बर्बर होने लगे। अंत में केवल बाहरी बर्बरों की बाइ के कारण ही नहीं, चलिक भीतरी सीमाओं में वसे हुए बर्बरों की शक्ति के कारण भी रोमन-साम्राज्य का अंत हो गया।

साम्राज्य को इन आक्रमणों का सामना करने के लिये वो प्रयत्न करने पहले थे, वे उसकी शक्ति के बाहर थे। विशेषतः पूर्व की ओर की अवस्था तो और भी शोचनीय हो गई थी, क्योंकि उधर आरमेनिया के अधिकार के लिये बराबर पारिष्या या पारस के बड़े

राज्य के साथ युद्ध होता रहता था। फल यह हुआ कि इटली जल्दी-बहस्ती बराबाद होने थगा। इटलीवालों के व्यापार का पूरा-पूरा नाश हो गया, और एलेग तथा आकाश आदि के कारण वहाँ की आवादी बहुत कम हो चली। बड़े-बड़े ज़िन्दे शैर-आवाद पढ़े रहने लगे। पर फिर भी आक्रमणकारी बराबर आते ही चलते थे। गाल, स्पेन तथा आफ्रिका में बर्बरों ने स्वर्यं अपने राज्य स्थापित कर लिए थे, जो कहने के लिये तो साम्राज्य के अधीनस्थ प्रांत होते थे, पर वस्तुतः उनकी यह अधीनता तभी तक रहती थी, जब तक उनका कोई मतलब निकलता था। अंत में, सन् ४७३ ई० में, यहाँ तक नौबत आ पहुँची कि स्वर्यं इटली में ही बर्बरों का एक राज्य स्थापित हो गया। इस प्रकार मानो परिचमी साम्राज्य का अंत हो गया। सन् ४०० ई० में स्पेन और इटली में गायिक-राज्य स्थापित हो गए, आफ्रिका में एक बैंडल-राज्य स्थापित हो गया, गाल में बलोविस का फ्रांसिश-राज्य स्थापित हो गया, और ब्रिटेन में एक सैक्सन-राज्य स्थापित हो गया।

पर एक बात थी। वह यह कि यद्यपि परिचमी साम्राज्य का अंत हो गया था, किन्तु परिचमी सभ्यता का अंत नहीं हुआ था। बर्बरों ने बहुत-सी चीज़ें नष्ट कर दी थीं, पर फिर भी वे सर्वनाश नहीं कर सके थे, और बहुत-सी चीज़ें उनके नाशक हाथों से बच रही थीं। डिटेन में तो बर्बरों ने रोमनों का कोई चिह्न बाकी नहीं छोड़ा था, और सभी रोमन बातें नष्ट कर दी थीं, पर और सब स्थानों में, विशेषतः गाल में, उन्होंने रोमन सभ्यता की बहुत-सी बातें बर्मी रहने दी थीं। अविक कुछ दिनों बाद इन नवागंतुकों ने उन बातों को अपनाकर और उनमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन करके उनका कुछ उपयोग करना आरंभ कर दिया था। ज्यों-ज्यों साम्राज्य दुर्घट होकर बह दोता गया, ख्यों-ख्यों रोम के इसाई पोष उसके

स्थान पर अपना अधिकार करने और सभ्यता के संरचना बनने लगे। उन लोगों ने वर्षरों को भी हँसाई बनाना आरंभ किया। इस प्रकार उन्हें शिक्षा देने का अधिकार अपने हाथ में ले लिया। जब शिक्षा का सारा काम हँसाई पादरियों के हाथ में आ गया, तब उस नए युग में वे लोग रोमन-संस्कृति का प्रचार करने लगे। तब तक पश्चिमवालों ने जितनी बातें सीखी थीं, उन सबको पश्चिमी योरप में कहूँ शताब्दियों तक केवल हँसाई पादरियों ने ही रचित रचना और नष्ट होने से बचाया था।

यह एक आशय की हो बात है कि रोम का पूर्वी साम्राज्य बहुत दिनों तक बना रहा। उसका विस्तार प्रदिव्याटिक सागर से प्राचीन-नदी तक था, और वह पश्चिमी साम्राज्य की भैपेज़। अवश्य ही बहुत अधिक बलशाकी और संपत्ति था। यह ठीक है कि उसे बहुत दिनों तक पारस के साथ युद्ध करने में अनेक विपत्तियाँ भोगनी पड़ी थीं, और उहुत कुछ व्यव भी करना पड़ा था। उसके उत्तरी प्रांतों को हँस्वी पाँचवीं शताब्दी में हूँगों और शकों ने खूब लूटा, और बरबाद किया था; पर फिर भी सम्राट् जस्टीनियन (सन् ४२७-४६२ है०) के शासन-काल में उसकी बहुत-सी चतियों की फिर से पूर्ति हो गई थी, और उसमें नवीन जीवन आ गया था। यद्यपि बलगेरियनों, स्कवनोनियनों और गोंबाडों ने कहूँ आक्रमण किए थे, पर फिर भी वे लोग किसी प्रकार कुस्तुनिया तक नहीं पहुँचने दिए गए थे; और जस्टीनियन के दो बड़े सेनापतियों ने, जिनमें से एक का नाम वेलिसेरियस और दूसरे का नारसेस था, आफ़िका में बैंडला-राज्य पर और हटकी में गौथि-कराज्य पर विजय प्राप्त कर ली थी। प्रायः दो सौ वर्षों तक हटकी का एक बहुत बड़ा भाग पूर्वी साम्राज्य का अधीनस्थ प्रांत बना रहा, जिसका शासन एक गवर्नर करता था, जो 'रेवज्ञा का प्रबलआक' कहलाता था।

जस्टोनियन के शासन-काल में ही समस्त रोमन-क्रान्तों का एक बहुत बड़ा संग्रह तैयार किया गया था। उसके शासन-काल में और उसके बाद भी कुछ ही वर्षों के अंदर बाह्येंटाइन वास्तु-कला की संवर्धने हुए इमारतें बनी थीं, जिनमें से कुस्तुंतुनिया का सेंट सोकिया का गिरजा सबसे बड़िया और अच्छा नमूना है। यह इमारत विकल्प रोमन ढंग की बनी हुई है। इसके बीच में एक बड़ा गुंबद है। इसकी दो ओरों पर पचीकारी और रंगसाज़ी का बहुत ही अच्छा काम किया हुआ है।

साम्राज्य पर एक और बहुत बड़ी विषयि मुसलमान अरबों के कारण आई थी (मुहम्मद साहब का जीवन-काल सन् ५७१-६३२ हूँ० था), जिन्होंने पारस पर विजय प्राप्त करके बगदाद में अरब-साम्राज्य की स्थापना की थी, आफिका और स्पेन को जीत लिया था, रोमन-साम्राज्य के एशियाई प्रांतों को उससे अलग कर दिया था, और स्वयं कुस्तुंतुनिया पर भी जाकर घेरा ढाल दिया था। पर इसके उपरांत अरबों में भी कहूँ विभाग हो गए थे, जिससे उनकी शक्ति चीख होने लगी, और रोमन-साम्राज्य ने अपने घोड़े-से खोए हुए एशियाई प्रांतों को फिर से अपने अधिकार में कर लिया था। पूर्वी साम्राज्य सन् ६१० से ११०० हूँ० तक बना रहा, पर इस बीच में उसका बल भी धीरे-धीरे कम ही होता जाता था। उस पर प्रायः बज्जरेरियनों, हंगेरियनों, रूसियों और नारमनों के आक्रमण होते रहते थे। यहाँ तक कि अंत में योरप में उसके पास कुस्तुंतुनिया और उसके आस-पास के घोड़े-से प्रदेश को छोड़कर भी कुछ भी बाकी नहीं बच रहा था। इस पूर्वी साम्राज्य में विकल्प एशियाई ढंग का एकतंत्री राज्य था। सम्राट् प्रायः अपने प्रिय पात्रों के हाथ में ही रहते थे, और उन प्रिय पात्रों का आपस में जो हृष्यां-द्वेष चलता था, उसके कारण

शासन बराबर निर्वक होता जाता था। पूर्वी साम्राज्य ने एक तो लस्टीनियनवाक्या कानूनों का संग्रह तैयार किया था, और दूसरे कुछ बहुत बड़ी और अच्छी हमारतें बनवाई थीं। हमके अतिरिक्त उसने और कोई बड़ा काम नहीं किया था। उसके सम्मान की वृद्धि करनेवाली एक और बात यह है कि उसके विद्वानों ने बड़े-बड़े यूनानी लेखकों के ग्रन्थों का यथेष्ट अध्ययन किया था, और उन्हें रचित रखा था। पर जब कुस्तुंतुनिया का पतन हो गया, तब पूर्व के बड़े-बड़े विद्वानों को परिचम की ओर आना पड़ा। वे अपने साथ अपने ग्रन्थ आदि भी लेते आए थे, जिसके कारण परिचमी योग्य में यूनानी विद्याओं का फिर से प्रचार आरंभ हुआ।

सन् १०५० है० के लगभग तुके लोग कैस्पियन समुद्र के दक्षिणी प्रदेशों से निकले थे, और उन्होंने पश्चिया का बहुत बड़ा भाग जीत किया था। उनका मुकाबला करने के लिये इसाईयों ने धर्म-युद्ध आरंभ किए। इन धर्म-युद्धों का एक फल यह भी हुआ कि इसाई धर्मयुद्धकारियों ने कुस्तुंतुनिया पर अधिकार कर किया, और वहाँ एक लैटिन राज्य स्थापित किया, जो सन् १२०४ से १२६१ है० तक रहा। उस समय पूर्वी साम्राज्य स्वर्तंत्र तो हो गया, पर उसे वह अपनी पुरानी शक्ति फिर से नहीं प्राप्त हुई। पूर्वी साम्राज्य में जो कुछ बच रहा था, उसे आक्रमंत करने के लिये सन् १३०० है० में तुकों की एक लड़ बाहर उठी। कुछ समय के लिये उनकी गति तैमूर ने रोकी थी, जो सन् १३७० है० में पूर्वी पश्चिया से अपने साथ बहुत-से मंगोलों वा तातारों को लेकर निकला था, और जिसने उस्मानी तुकों के सुजलान को सन् १४०२ में परास्त किया था। जब तैमूर की मृत्यु हो गई, और मंगोलों का कोई भव न रह गया, तब उस्मानी तुके लोग

फिर आक्रमण करने के लिये निकले, और सन् १४६३ ई० में उन्होंने कुस्तुनिया पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार पूर्वी साम्राज्य का सदा के लिये अंत कर दिया। यदि सच पृथिवी, तो पूर्वी साम्राज्य की और सब बातें तो बहुत पहले ही नष्ट हो चुकी थीं, और उस समय तक उसका केवल नाम बचा रह गया था, पर इस बार वह नाम भी मिट गया।

इस पूर्वी साम्राज्य का पूरा इतिहास बतलाने के लिये हमें आधुनिक काल तक आ पहुँचना पड़ा है। अब हम चाहते हैं, यहाँ संचेप में उस ईसाई-धर्म का भी कुछ इतिहास बतला दें, जिसने पुराने रोमन-साम्राज्य के पश्चिमी भाग का स्थान बदला किया था। प्रायः तीन सौ वर्षों तक चारों ओर से ईसाई-धर्म को नष्ट करने या अधिक-से-अधिक हानि पहुँचाने का ही प्रयत्न होता रहा था। रोमन-साम्राज्य के नगरों में कभी-कभी तो यहाँ तक होता था कि नगर की अशिक्षित जनता बलवा खड़ा कर देती थी, और वहाँ की किंवद्दन लोग पूँजी विपट में जंगलों शेरों के सामने छोड़ दिए जायें, और कभी-कभी सबंध सम्बन्ध ईसाईयों को कुचला बालने के अनेक प्रयत्न करते थे। जैसा कि हम पढ़ते बतला जुके हैं, रोम कभी अपनी प्रजा के धर्म में किसी प्रकार का हस्तचेप नहीं करता था, यहूदियों के धर्म में उतने कभी कोई बाधा नहीं ढाली थी। पर ईसाई-धर्म के संबंध में कठिनता यह थी कि वह किसी विशिष्ट जाति या राष्ट्र का धर्म नहीं था। ईसाई-धर्म साधारणतः एक सामान्य समाज के रूप में होता था, इसलिये सम्बन्ध उसकी ओर से सदा संशोधित रहा करते थे। ईसाई लोग भी जब गिरफ्तार किए जाते थे, तब राज्य के देवतों या सम्राट् की जीनियस की पूजा करने और उनके आगे वलिदान आदि चढ़ाने से साक्ष इनकार कर देते थे। इसलिये वे लोग राष्ट्रबोद्धी और देशबोद्धी ठहराए जाते थे, और

बनहें प्राण-दंड मिलता था। इसीलिये ईसाई-धर्म पर समय-समय पर बड़ी-बड़ी विपर्तियाँ आया करती थीं, और उसके अनुयायियों को अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते थे। लेकिन इतना सब कुछ होने पर भी ईसाई-धर्म के अनुयायियों की संख्या बराबर बढ़ती जाती थी, और उसका प्रभाव विस्तृत होता जाता था। ईसाई लोग कहा करते थे कि इमारे धर्म का केवल इसीलिये प्रचार हो रहा है कि उस पर अनेक प्रकार के प्रहार होते हैं, और शहीदों का घून ही ईसाई-धर्म का बीज है।

ईसाई-धर्म ने लोगों को वही चीज़ दी थी, जिसकी समार को सन् २०० ई० से सबसे अधिक आवश्यकता चली आ रही थी। अर्थात् (१) जीवन में आशा। उन दिनों ऐसा जान पड़ता था कि सभी जीज़ नष्ट-अष्ट होती चली जा रही हैं, और ईसाई-धर्म लोगों को यह यत्काता था कि प्रेममय ईश्वर भी कोई जीज़ है, और सृजु के उपरांत भी एक प्रकार का जीवन होता है। (२) जीवन-निर्वाह का एक ऐसा ढंग, जिसे सभी लोग काम में ला सकते थे। हटोहटक दर्शन तो केवल कुछ थोड़े-से नुने हुए और शिचित आदमियों के लिये ही होता था, पर ईसाई-धर्म सब लोगों को यह सिखलाता था कि चाहे वे किसी भी रूप के वर्ग के हों, ईसा के आदर्श पर चलकर आपस में एक दूसरे के साथ प्रेम करना चाहिए, और सबको सक दूसरे की सेवा करनी चाहिए, और ईसा की कृपा से सब लोग ऐसा कर भी सकते हैं। (३) एक ऐसा समाज, जिसमें सभी लोग सम्मिलित होकर सुख-पूर्वक जीवन-निर्वाह कर सकते थे। जो पुराना साम्राज्य इधर अनेक शताब्दियों से चला आ रहा था, वह अब फूटने लग गया था; पर ईसाई-धर्म देखने में ऐसा जान पड़ता था कि इत्ता-पूर्वक अपने स्थान पर चला रहेगा। नए युग में चारों ओर युद्ध और अव्यवस्था

ही दिखाई देती थी, एकता का कहीं नाम भी नहीं दिखाई देता था। यदि कहीं एकता थी, तो इंसाई-धर्म में जो किसी प्रकार का जातीय या राष्ट्रीय विमेद नहीं मानता था। इस प्रकार इंसाई-धर्म धीरे-धीरे एक देश से दूसरे देश में फैलने लगा, और एक वर्ग की देखादेखी दूसरे वर्ग भी उसे अपनाने चाहे। यहाँ तक कि अंत में सच्चाट् कांस्टेंटाइन ने उसे अपने सारे साम्राज्य का (जिसमें पूर्वी और पश्चिमी दोनों ही विभाग समिक्षित थे) राजकीय धर्म बना किया। वह सभी से इंसाई-धर्म की शक्ति बहुत अधिक बढ़ने लगी, और परिचम में रोम-सरीखे नगरों के पादरी और पूर्ख में कुसुंतुनिया, असकंदरिया, पंटियोक और प्रक्रिसस आदि नगरों के पादरी प्रत्येक व्यक्ति की इष्टि में विशेष रूप से आदरणीय हो गए, और उनका महस्त्र बहुत बढ़ गया।

इस्वी ग्यारहवीं शताब्दी में रोम और कुसुंतुनिया के पादरियों में आपस में कई झगड़े हो गए, जिनके कारण चर्च दो भागों में विभक्त हो गया। इनमें से एक विभाग पूर्वी या और दूसरा पश्चिमी। पूर्वी साम्राज्य में तो चर्च राज्य के अधिकार में चला गया, और वहाँ वह तब तक साम्राज्य का एक विभाग ही बना रहा, जब तक उस साम्राज्य का अंत नहीं हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि चर्च का जीवन तुर्बल होने और उसका कल्याणकारी प्रभाव बढ़ने लगा। यदि पूर्वी चर्च से आधुनिक योरप को कोई बड़ी चीज़ मिली थी, तो वह केवल साधुओं या मठों के जीवन की प्रणाली थी। पूर्व के एक बड़े पादरी ने, जिसका नाम बेसिल था (और जिसका मृत्यु सन् ३०३ ई० में हुई थी), कई ऐसे मठ या आश्रम स्थापित किए थे, जिनमें पुलप और छियाँ सब प्रकार के सांसारिक व्यवहारों का परित्याग करके निवास करती थीं, और केवल अध्ययन तथा ईश्वराराधन में अपना जीवन बिताती थीं। पूर्व में इस प्रणाली का महस्त्र

बहुत बढ़ गया था, और वेनेडिक्ट (ईस्टी लॉटी शताब्दी) ने इस प्रणाली का अनुकरण करके पश्चिम में भी इसका प्रचार किया था, और एक प्रकार के संस्कारण्यागी साधुओं का संप्रदाय जलाया था, जो वेनेडिक्टाइन कहलाता था । तब से पश्चिमी योरप में सभी स्थानों पर ईसाई साधुओं के मठ या आश्रम स्थापित होने लगे, जिन्होंने जनता का बहुत अधिक कल्याण किया ।

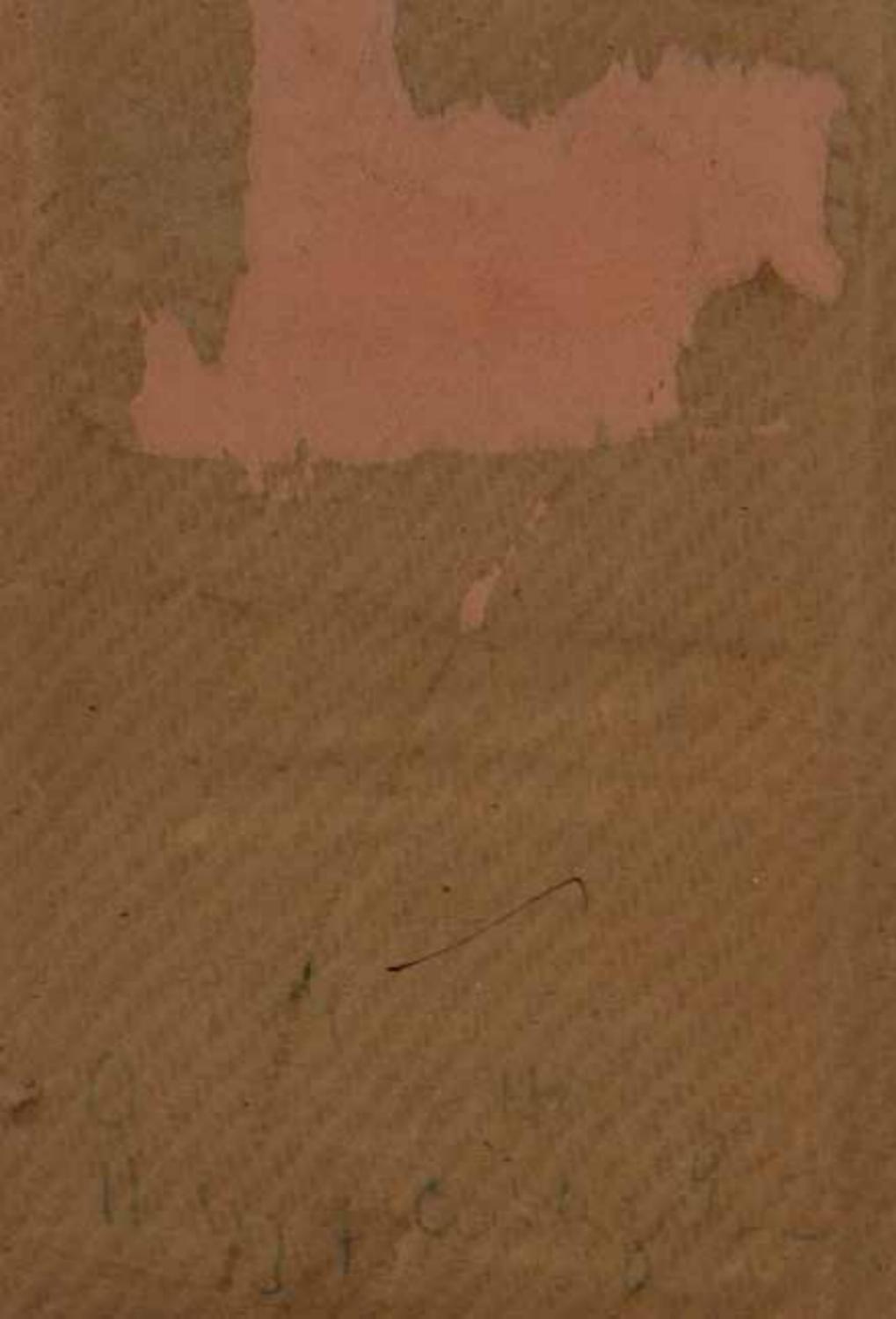
पश्चिम में साम्राज्य का बहुत जलवी पतन हो गया था, इसलिये वहाँ चर्च सदा अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने में समर्थ रहा, और चर्च तथा रोम के पादरियों की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई । बहुत दिनों तक उनकी यह शक्ति इतनी प्रबल रही कि और कोई शक्ति उसका मुकाबला नहीं कर सकती थी । योरप में सबसे अधिक प्रभाव उसी का था । पर धीरे-धीरे पोपों की उच्चाकांडा बहुत बढ़ती गई । अब वे और भी अधिक शक्ति अपने हाथ में करना चाहते थे, और धार्मिक विषयों के अतिरिक्त अन्यान्य विषयों पर भी अपना अधिकार जलजाना चाहते थे । पूर्व और पश्चिम के ईसाई-धर्म का इसीलिये विभाग हुआ था । पश्चिम में पोप जोग सदा राजों और बादशाहों से लड़ते-झगड़ते रहते थे, इसीलिये वहाँ धार्मिक भावों का जैसा चाहिए था, वैसा प्रचार नहीं हो सकता था । राजों और बादशाहों के साथ पोपों के बीच लड़ाई-झगड़े होते थे, वे आधुनिक काल के इतिहास से संबंध रखते हैं, इसलिये हम यहाँ उन लड़ाई-झगड़ों का कोई उल्लेख नहीं करते । पर रोम का इतिहास समाप्त करते समय हम यहाँ दो मुख्य बातें जलजा देना चाहते हैं—

(१) चर्च बहुत-सी बातों में रोमन-साम्राज्य का बहुत बड़ा अरणी था । ईसाई-धर्म का इतनी जलवी और इतना अधिक प्रचार के बल इसलिये हो सका था कि रोमनों ने अपने साम्राज्य में बहुत-सी और बड़ी-बड़ी सबके पहले से ही बना रखी थीं । रोमनों ने

यूनानी दर्शन बहुत दिनों से रचित रखा था, और चर्चे ने उसी दर्शन का उपयोग करके लोगों को यह बतलाया था कि यह दर्शन क्षोगों को क्या-क्या सिखाता है। रोमनों ने अपने राज्य में क्रान्ति और शासन की ओ प्रणाली छलाई थी, उसी को आदर्श मानकर चर्चे ने भी उसका अनुकरण किया था। किंतु जब रोमन-साम्राज्य की कृपा से लोगों में पृथक् साम्राज्य का भाव और धारणा अच्छी तरह फैल चुकी थी, और वे लोग पृथक् विश्वविद्यालय धर्म या 'कैथोलिक' चर्च की धारणा महज़ करने के लिये भी तैयार हो लुके थे।

(२) रोम ने यूनान से जिस सभ्यता की शिक्षा पाई थी, और जिसका उसने अपने ढंग से विकास किया था, उस सभ्यता-को सैकड़ों वर्षों तक चर्चे ने ही योरप के लिये रचित रखा था। सैकड़ों वर्षों तक योरप में उस शिक्षा को छोड़कर, जो चर्चे की ओर से लोगों को दी जाती थी, जनसाधारण के लिये और किसी प्रकार की शिक्षा का कुछ भी प्रबंध नहीं था। स्वयं इंसाई-धर्म को और द्याकरण, गणित, तक, दर्शन आदि सभी विषयों और शाखों की जो कुछ शिक्षा क्षोगों को दी जाती थी, वह सब चर्चे के ही हारा दी जाती थी। किसी व्यक्ति अथवा संस्था की ओर से किसी को और किसी प्रकार की शिक्षा नहीं दी जाती थी। सभी विद्यालयों और विश्वविद्यालयों की स्थापना तथा संचालन केवल चर्चे के ही हारा होता था। चर्चे की ओर से लोगों को इस प्रकार की जो शिक्षा दी जाती थी, वह बहुत-सी बातों में उसी संस्कृति के आधार पर होती थी, जो रोमन संसार में रोम के पतन से पहले बर्तमान थी। इस प्रकार इंसाई-धर्म ने पश्चिम में नदीन दुग आने पर ग्राचान सभ्यता का प्रचार किया था, और उस सभ्यता को नष्ट होने से बचाकर आधुनिक योरप को सौंप दिया था। पूर्व के प्रकरणों में जो कुछ कहा गया है, उससे पाठकों ने समझ लिया होगा कि आजकल

का पाश्चात्य जगत् उस सम्यता का कितना और कैसा अर्थी है। एक बहुत बड़े आधुनिक विद्वान् ने एक स्थान पर यह सारी बाँत हस प्रकार संचेप में कही है—“आजकल हम जोग जिसे सम्यता कहते हैं, उसका मूल तो यूनानी है पर तत्त्व लैटिन। हम जोग यूनानियों की तरह नहीं, विक रोमनों की तरह विचार और रचना करते और शब्दों तथा कार्यों में अपने भाव प्रकट करते हैं। हम जोग जहाँ जाते हैं, वही हमारे पैर रोमन हाथों से बनी हुई सदकों पर रहते हैं। अपने साहित्य-केन्द्र में, राजनीतिक तथा सामाजिक संस्थाओं में, अपने व्यापार, व्यवसाय और शिल्प की मशीनों में, अपने कानून और शासन-प्रणाली में, अपने नागरिक और जातीय जीवन में हम जोग उसी क्षेवर में वास करते हैं, जो रोम ने हम जोगों के लिये प्रस्तुत किया था, और अपनी आवश्यकताओं तथा व्यवहार में हम जोग उसी में जहाँ-तहाँ कुछ परिवर्तन कर देते हैं।”



D.G.A. 80.

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
NEW DELHI

Issue Record

Catalogue No. 930/Var-9923.

Author— Varma, A. C.

Title— Purani Duniya

Borrower No.	Date of Issue	Date of Return
S. R. Sharma	20/1/72	21/1/72

"A book that is shut is but a block"

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
GOVT. OF INDIA
Department of Archaeology
NEW DELHI.

Please help us to keep the book
clean and moving.